Agrawal Publications
Igniting Minds !

वाणिज्य शिक्षण

TEACHING OF COMMERCE

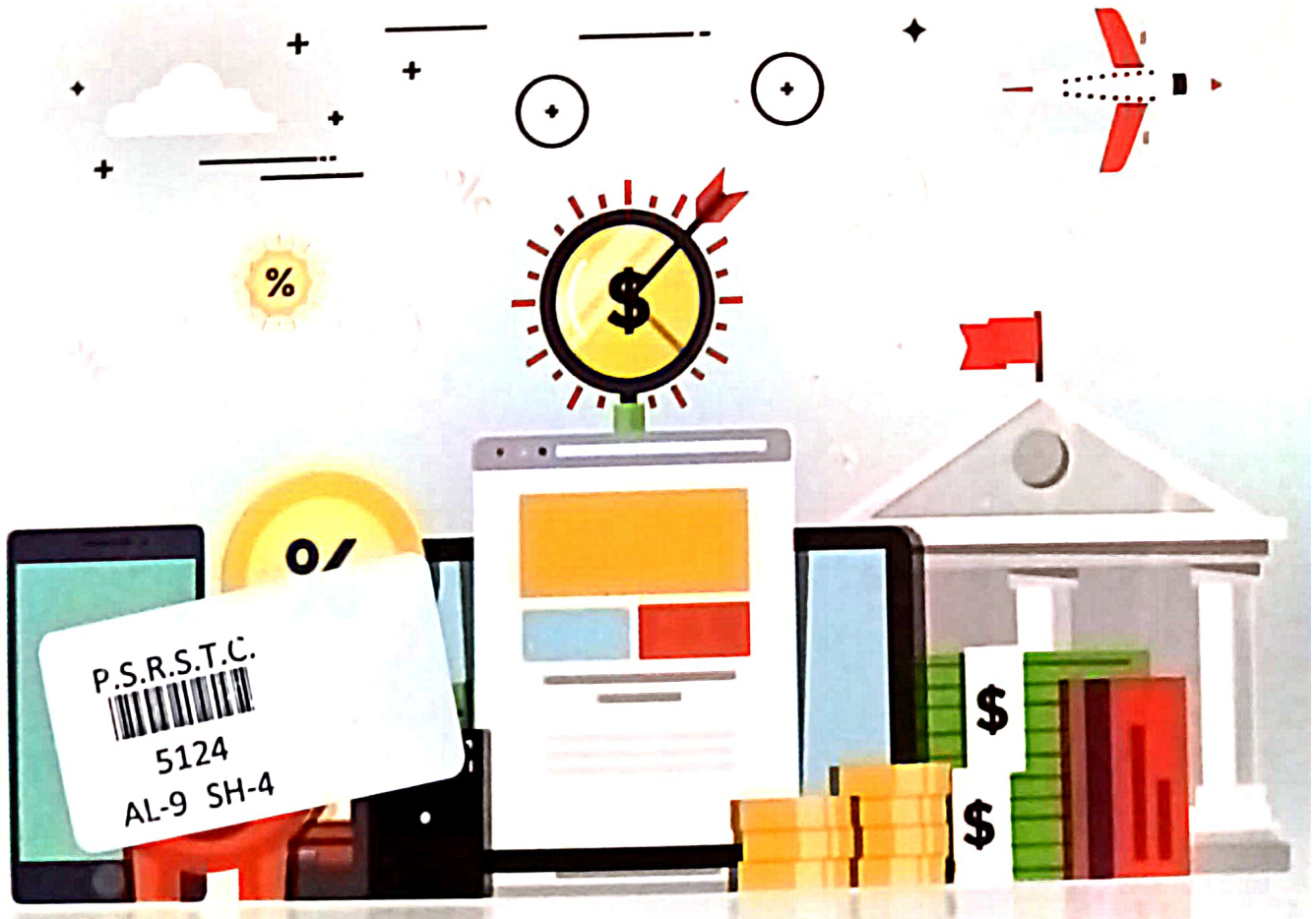

रामपाल सिंह

वाणिज्य शिक्षण

PT. SITARAM SHASTRI B.Ed. TRAINING COLLEGE
LIBRARY
5124
Book No. .....
BHIWANI

रामपाल सिंह
प्राचार्य
जियालाल शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान, अजमेर
एवं
पृथ्वीसिंह
प्राध्यापक
महेश टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज, जोधपुर

P.S.R.S.T.C.
5124
AL-9 SH-4

अग्रवाल पब्लिकेशन्स™
(ISO : 9001 : 2008 CERTIFIED COMPANY)

प्राक्कथन

'वाणिज्य-शिक्षण' विषय पर एक अच्छी पुस्तक की कमी वाणिज्य के छात्रों द्वारा एक लम्बे समय से अनुभव की जा रही थी। प्रस्तुत पुस्तक इस कमी को दूर करने की दिशा में एक प्रयास है। पुस्तक को वाणिज्य-शिक्षण की आधुनिकतम विधियों, उपागमों तथा आयामों से सुसज्जित किया गया है। भाषा तथा शैली को, जैसा कि पाठकगण पायेंगे, बड़े ही सरल तथा बोधगम्य रूप से प्रस्तुत किया गया है। पुस्तक लेखन में इस बात का भी विशेष ध्यान रखा गया है कि विषय-वस्तु को यथासम्भव सारगर्भित बनाया जाय, जिससे पुस्तक का कलेवर अनावश्यक रूप में न बढ़े किन्तु कोई भी बात अछूती न रह जाये। आशा है, पुस्तक प्रिय छात्रों को पसन्द आयेगी।

पुस्तक के लिखने के लिए प्रेरणा श्री विनोद कुमार जी ने प्रदान की। उन्हीं के प्रयासों से यह पुस्तक इस सजीले रूप में छात्रों के हाथों में आ पाई है। वे बधाई के पात्र हैं।

—सिंह एवं सिंह

अजमेर
मकर संक्रान्ति
14 जनवरी, 1986

अनुक्रमणिका

अध्याय पृष्ठ

1. **वाणिज्य एवं वाणिज्य-शिक्षा** 1-10
(Commerce and Commerce-Education)
वाणिज्य का अर्थ, वाणिज्य शिक्षा का अर्थ, वाणिज्य शिक्षा की प्रकृति, वाणिज्य शिक्षा का क्षेत्र, वाणिज्य का महत्त्व, वाणिज्य शिक्षा का विकास, वाणिज्य शिक्षा की आवश्यकता, अभ्यास-प्रश्न।

2. **वाणिज्य-शिक्षण के उद्देश्य** 11-22
(Aims of Teaching Commerce)
शिक्षा के उद्देश्यों की आवश्यकता, अच्छे शैक्षिक उद्देश्यों की विशेषता, उद्देश्यों के निर्धारक, उद्देश्यों के प्रकार, वाणिज्य शिक्षा के उद्देश्य, बहीखाता एवं लेखा विज्ञान, शिक्षण के उद्देश्य, वाणिज्य शिक्षण के अनुदेशनात्मक उद्देश्य, अभ्यास-प्रश्न।

3. **वाणिज्य शिक्षा का पाठ्यक्रम** 23-30
(Syllabus of Commerce Education)
पाठ्यक्रम का अर्थ, वाणिज्य का पाठ्यक्रम निर्माण करने के मूलभूत सिद्धान्त, वाणिज्य के वर्तमान पाठ्यक्रम के दोष, शिक्षा नीति (1986) में वाणिज्य शिक्षा, अभ्यास-प्रश्न।

4. **वाणिज्य-शिक्षण की परम्परागत पद्धतियाँ** 31-43
(Traditional Methods of Commerce Teaching)
उत्तम पद्धतियों की विशेषताएँ, पद्धतियों के प्रकार—(1) भाषण-पद्धति, भाषण-पद्धति का प्रयोग कब किया जाय, भाषण-पद्धति के गुण, भाषण-पद्धति के दोष, भाषण-पद्धति प्रयोग करने हेतु सुझाव, (2) पाठ्यपुस्तक पद्धति, पाठ्यपुस्तक के प्रयोग, पाठ्यपुस्तक पद्धति के गुण, पाठ्यपुस्तक पद्धति के दोष, सुझाव, अभ्यास-प्रश्न।

5. **वाणिज्य-शिक्षण की आधुनिक शिक्षण पद्धतियाँ** 44-77
(Modern Methods of Teaching Commerce)
(1) प्रयोगशाला पद्धति, प्रयोगशाला पद्धति के गुण, प्रयोगशाला पद्धति के दोष, (2) योजना पद्धति, वाणिज्य-शिक्षण एवं योजना पद्धति, अच्छी योजना की विशेषताएँ, योजना पद्धति के गुण, योजना पद्धति के दोष, कुछ सुझाव, (3) समस्या-समाधान पद्धति, समस्या के प्रकार, समस्या पद्धति के सोपान, अच्छी समस्या के आवश्यक तत्त्व, पद्धति के गुण, पद्धति के दोष, कुछ सुझाव, (4) विश्लेषणात्मक एवं संश्लेषणात्मक पद्धति, पद्धति के गुण, पद्धति के दोष, कुछ सुझाव, (5) समाजीकृत

अभिव्यक्ति पद्धति—समाजीकृत अभिव्यक्ति की परिभाषा, समाजीकृत अभिव्यक्ति का संगठन, पद्धति के गुण, पद्धति के दोष, कुछ सुझाव, (6) निरीक्षण अध्ययन पद्धति—(1) न्यूनतम कार्य, (2) सामान्य कार्य, (3) अधिकतम कार्य, कैसे पढ़ा जाये ? पद्धति के गुण, पद्धति के दोष कुछ सुझाव, (7) वाद-विवाद पद्धति, वाद-विवाद हेतु तैयारी, वाद-विवाद का संचालन, मूल्यांकन, पद्धति के गुण, पद्धति के दोष, कुछ सुझाव, (8) इकाई-पद्धति, इकाई के प्रकार : (1) साधनात्मक इकाई, (2) अध्यापनात्मक इकाई, इकाई की अध्ययन निर्देशिका, इकाई और पाठ-योजना, दैनिक पाठ-योजना, इकाई-संगठन, अच्छी इकाई की विशेषताएँ, पद्धति के गुण, अभ्यास-प्रश्न।

6. **पुस्तपालन शिक्षण** 78-86
(Teaching of Book-Keeping)
पुस्तपालन शिक्षण के उद्देश्य—(1) पुस्तपालन शिक्षण के सामान्य उद्देश्य, (2) वाणिज्य शिक्षण के विशिष्ट उद्देश्य, पुस्तपालन शिक्षण के अनुदेशनात्मक उद्देश्य—(1) ज्ञानात्मक उद्देश्य, (2) अवबोधात्मक उद्देश्य, (3) कौशलात्मक उद्देश्य, (4) रुच्यात्मक उद्देश्य, (5) ज्ञान-प्रयोग उद्देश्य, (6) अभिवृत्यात्मक उद्देश्य, पुस्तपालन शिक्षण के सोपान, पुस्तपालन शिक्षण की विधियाँ, पुस्तपालन शिक्षण के उपागम, संमीकरण उपागम, कौशल विकास, अभ्यास-प्रश्न।

7. **व्यापार-पद्धति शिक्षण** 87-95
(Teaching of Commercial Practice)
व्यापार पद्धति शिक्षण के उद्देश्य—(1) ज्ञानात्मक, (2) अवबोधात्मक उद्देश्य, (3) कौशलात्मक उद्देश्य, (4) अभिरुच्यात्मक उद्देश्य, व्यापार पद्धति शिक्षण-योजनाएँ—(1) घूर्णन योजना, घूर्णन योजना के लाभ, घूर्णन योजना की कमियाँ, (2) अनुबन्धित घूर्णन-योजना, (3) कार्यालय प्रारूप योजना, कार्यालय प्रारूप योजना के लाभ, कार्यालय-प्रारूप योजना के दोष, (4) बैटरी योजना—बैटरी योजना के लाभ, बैटरी योजना के दोष, (5) सहकारी योजना, सहकारी योजना के लाभ, सहकारी योजना के दोष; अभ्यास-प्रश्न।

8. **टंकण एवं आशुलिपि-शिक्षण** 96-102
(Teaching of Type-Writing and Short-Hand)
टंकण-शिक्षण के उद्देश्य, टंकण-शिक्षण के सोपान—(1) गृह पंक्ति उपागम, (2) अँगुली उपागम, (3) शब्द उपागम, (4) सम्पूर्ण उपागम, टंकण कार्य में दक्षता—(1) आघात अभ्यास चरण, (2) तकनीकी अभ्यास चरण, (3) गति अभ्यास चरण, (4) शुद्धता अभ्यास चरण, (5) एकाग्रता अभ्यास चरण, टंकण में गति एवं शुद्धता, आशुलिपि शिक्षण, आशुलिपि शिक्षण के उद्देश्य, आशुलिपि-शिक्षण की विधियाँ, आशुलिपि-शिक्षण हेतु सुझाव, अभ्यास-प्रश्न।

9. **वाणिज्य-शिक्षण के उपागम** 103-108
(Approaches of Commerce Teaching)
(1) जर्नल उपागम—जर्नल उपागम की विशेषताएँ, (2) लेजर उपागम, (3) रोकड़ बही उपागम, (4) समीकरण उपागम, गुण-दोष, अभ्यास-प्रश्न।

10. **वाणिज्य-शिक्षण की रीतियाँ या प्रविधियाँ** 109-119
(Techniques of Commerce Teaching)
शिक्षण रीतियों का अर्थ, शिक्षण रीति की परिभाषा—(1) प्रश्न रीति, प्रश्नों के कार्य, प्रश्नों के प्रकार, अच्छे प्रश्नों की विशेषताएँ, प्रश्न पूछने की कला, (2) कार्य निर्धारण रीति, अच्छे कार्य निर्धारण की विशेषताएँ, (3) कथन रीति, (4) उदाहरण रीति, उदाहरणों के प्रकार, (5) अभ्यास रीति, (6) प्रदर्शन, प्रदर्शन से लाभ, प्रदर्शन के सम्बन्ध में सुझाव, अभ्यास-प्रश्न।

11. **वाणिज्य-शिक्षण के नये आयाम** 120-147
(New Dimensions of Commerce Teaching)
(1) सूक्ष्म शिक्षण, सूक्ष्म शिक्षण की आधारभूत मान्यताएँ—सूक्ष्म शिक्षण के लाभ, सीमाएँ, (2) दल-शिक्षण—दल शिक्षण की विशेषताएँ, दल के सदस्य, लघु रूप, वृहत् रूप, दल-शिक्षण की सीमाएँ, (3) अभिक्रमित अनुदेशन—अभिक्रमित अधिगम की विशेषताएँ, अभिक्रमित अधिगम के सिद्धान्त, अभिक्रमित अधिगम के उद्देश्य, अभिक्रमित अधिगम वस्तु का निर्माण, फ्रेमों का लेखन, (4) दूरदर्शन पर शिक्षण, दूरदर्शन के उपयोग—(1) कार्यक्रमों का चयन, (2) कार्यक्रमों की तैयारी, (3) दूरदर्शन कार्यक्रमों का प्रस्तुतीकरण, (4) कार्यक्रमों का मूल्यांकन, दूरदर्शन शिक्षण से लाभ, (5) कम्प्यूटर द्वारा शिक्षण, कम्प्यूटर से तात्पर्य, कम्प्यूटर की उपयोगिता, अभ्यास-प्रश्न।

12. **वाणिज्य-शिक्षण की सहायक सामग्री** 148-158
(Aids of Teaching Commerce)
वाणिज्यशास्त्र शिक्षण की सहायक सामग्री, परम्परागत सहायक सामग्री, प्रदर्शनात्मक सामग्री, चित्रों से लाभ, श्रव्य साधन, कुछ सुझाव, श्रव्य-दृश्य सामग्री, चलचित्र-शिक्षण के सोपान, अन्य सहायक सामग्रियाँ, शिक्षा यात्राएँ, शिक्षा यात्राओं से लाभ, शिक्षा यात्राओं के संचालन, निरीक्षण, प्रदर्शनी, सामुदायिक संसाधन, वाणिज्य शिक्षण के लिए विशिष्ट सहायक सामग्री, अभ्यास-प्रश्न।

13. **वाणिज्य-शिक्षण की पाठ्य-पुस्तक** 159-166
(Text Book of Commerce)
पाठ्य-पुस्तक के उपयोग, अच्छी पाठ्य-पुस्तकों के गुण, कुछ सुझाव, वाणिज्य की पाठ्य-पुस्तक कैसी हो ?, सन्दर्भ पुस्तकें, सन्दर्भ पुस्तकों के चयन हेतु आवश्यक बातें, पत्र-पत्रिकायें, अभ्यास-प्रश्न।

14. वाणिज्य शिक्षण के छात्र
(Students of Commerce) 167-170
शैक्षिक निर्देशन—बुद्धि परीक्षण, रुचि परीक्षण, अभिरुचि परीक्षण, निष्पत्ति परीक्षण, अभ्यास-प्रश्न।

15. वाणिज्य-शिक्षण एवं निर्देशन
(Commerce Teaching and Guidance) 171-179
निर्देशन का अर्थ, वाणिज्य विषय के छात्र, शैक्षिक निर्देशन—(1) बुद्धि परीक्षण, (2) रुचि परीक्षण, (3) अभिरुचि परीक्षण, (4) निष्पत्ति-परीक्षण, (5) वाणिज्य विषय के लिये छात्र का चयन, अभ्यास-प्रश्न।

6. वाणिज्य-शिक्षण हेतु सहगामी क्रियायें
(Co-curricular Activities for Commerce Teaching) 180-185
सहगामी क्रियाओं का महत्व, सहगामी क्रियाओं के प्रकार, वाणिज्य-शिक्षण हेतु पाठ्यक्रम सहगामी क्रियायें, सहगामी क्रियाओं की व्यवस्था एवं प्रशासन, अभ्यास-प्रश्न।

17. वाणिज्य का अध्यापक
(Teacher of Commerce) 186-191
(1) शिक्षण व्यवसाय के प्रति निष्ठा भाव, (2) विषय का ज्ञान, (3) व्यावसायिक प्रशिक्षण, (4) सामयिक घटनाओं का ज्ञान, (5) आर्थिक समस्याओं का ज्ञान, (6) प्रयोगात्मक ज्ञान, (7) मनोविज्ञान का ज्ञान, (8) प्रभावशाली व्यक्तित्व, (9) अनुशासनप्रिय, (10) जनतन्त्रात्मक दृष्टिकोण, (11) शिक्षण कला में प्रवीण, (12) नेतृत्व, अभ्यास-प्रश्न।

18. वाणिज्य-कक्ष
(Commerce-Room) 192-196
वाणिज्य कक्ष कैसा हो—(1) वाणिज्य का प्रमुख कक्ष, (2) टंकण एवं आशुलिपि कक्ष, (3) यन्त्र कक्ष, (4) बहीखाता एवं व्यापार पद्धति कक्ष, (5) कम्प्यूटर कक्ष, अभ्यास-प्रश्न।

19. वाणिज्य का अन्य विषयों से सह-सम्बन्ध
(Correlation of Commerce with Other Subjects) 197-203
समन्वय के प्रकार, समन्वय के उद्देश्य, समन्वय से लाभ, वाणिज्य का अन्य विषयों से सह-सम्बन्ध, अभ्यास-प्रश्न।

20. वाणिज्य-शिक्षण में मूल्यांकन
(Evaluation in Commerce Teaching) 204-212
(1) मूल्यांकन का अर्थ, (2) मूल्यांकन एवं मापन, (3) मूल्यांकन के उद्देश्य, (4) वाणिज्यशास्त्र में मूल्यांकन की आवश्यकता, (5) वाणिज्य शिक्षण में मूल्यांकन के क्षेत्र, (6) वाणिज्यशास्त्र में मूल्यांकन के

साधन, निबन्धात्मक परीक्षायें, निबन्धात्मक परीक्षा के गुण, निबन्धात्मक परीक्षा के दोष, दोष दूर करने के उपाय, वस्तुनिष्ठ परीक्षा के गुण, वस्तुनिष्ठ परीक्षा के दोष, वस्तुनिष्ठ परीक्षा के प्रकार, उत्तम मूल्यांकन के लक्षण, वाणिज्य-विषय के कार्यक्रमों का मूल्यांकन, मूल्यांकन का निष्कर्ष, वाणिज्यशास्त्र के मूल्यांकन के निष्कर्ष, अभ्यास-प्रश्न। 213-224

21. वाणिज्य-शिक्षण का नियोजन
(Planning for Commerce Teaching)
शिक्षण-योजना एवं अन्य सामान्य योजना, आधारभूत प्रशिक्षण प्रायोजनायें, शिक्षण कार्य हेतु योजना, शिक्षण योजना के प्रकार इकाई योजना, इकाई योजना के प्रकार, इकाई योजना के सोपान, इकाई योजना के लाभ, इकाई योजना के दोष, वार्षिक योजना, निर्माण योजना, दैनिक पाठ योजना, अभ्यास-प्रश्न।

• पुस्तपालन 225
पाठ-योजना—1 225
पाठ-योजना—2 229

वाणिज्य एवं वाणिज्य-शिक्षा
(COMMERCE AND COMMERCE-EDUCATION)

मानव-सभ्यता के उदय से भी बहुत पहले मनुष्य के जीवन में वाणिज्य का प्रवेश हो चुका था। मनुष्य की सभ्यता ज्यों-ज्यों बढ़ती गई, वाणिज्य का सम्बन्ध मानव जीवन से त्यों-त्यों प्रगाढ़ होता चला गया और आज स्थिति यह है कि विश्व का प्रत्येक व्यक्ति वर्तमान में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में वाणिज्य से जुड़ा हुआ है। मुद्रा के प्रचलन, व्यापार के बढ़ते हुये क्षेत्र तथा मनुष्य की विविध आवश्यकताओं ने मनुष्य को वाणिज्य के और निकट ला खड़ा किया है। हमारी बढ़ती हुई आवश्यकतायें, रहन-सहन का स्तर, फैशन जीवन-यापन की शैली, यातायात के साधन, मनोरंजन के साधन, अन्तर्राष्ट्रीय बाजार, संचार के साधन तथा ऐसी ही अन्य हजारों सुविधाओं ने मानव का सम्बन्ध वाणिज्य से और भी अधिक घनिष्ठ कर दिया है। मुद्रा के आविष्कार तथा प्रसार ने भी मनुष्य तथा वाणिज्य की सम्बन्धबद्धता को और अधिक दृढ़ किया है क्योंकि वाणिज्य का वर्तमान में मुख्य सम्बन्ध व्यापार, धन तथा आर्थिक क्रिया-कलापों से होता है और आज के इस भौतिक युग में धन तथा आर्थिक क्रिया-कलाप ही वाणिज्य के मूलाधार हैं। मनुष्य अपनी भौतिक उन्नति के लिए किसी न किसी प्रकार की आर्थिक क्रियायें सम्पन्न करता ही है अतः वह इन आर्थिक क्रियाओं के माध्यम से वाणिज्य के निकट आ जाता है। आज के इस युग में, यदि कहा जाये तो अतिशयोक्ति नहीं होगी कि कोई भी मानव बिना वाणिज्य के जीवित नहीं रह सकता है।

वाणिज्य का अर्थ
(MEANING OF COMMERCE)

वाणिज्य शब्द का निर्माण 'व्यस्त' शब्द से हुआ माना जाता है। अंग्रेजी भाषा में वाणिज्य के लिये 'बिजनेस' (Business) शब्द का प्रयोग होता है। अंग्रेजी भाषा 'बिजनेस' शब्द भी अंग्रेजी भाषा के 'बिजी' (Busy) शब्द से बना है जिसका अर्थ भी 'व्यस्त' से होता है। यह वाणिज्य का अत्यन्त ही संकीर्ण अर्थ है। अपने व्यापक भर्थ में वाणिज्य के अन्तर्गत हम उन सभी क्रियाओं को सम्मिलित करते हैं जो व्यक्ति की आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति से सम्बन्धित हैं। वाणिज्य का वह अत्यन्त ही व्यापक अर्थ है। यह इतना व्यापक अर्थ है कि वाणिज्य के सम्बन्ध में अनेक प्रकार के भ्रम उत्पन्न करता है। इस अर्थ में एक चिकित्सक, अध्यापक, वकील आदि जो आर्थिक क्रियायें

करते हैं वे सभी वाणिज्य के क्षेत्र में आती हैं जबकि एक वेतनभोगी अध्यापक के शिक्षण-कार्य को हम वाणिज्य के क्षेत्र में कदापि नहीं रख सकते। इसी प्रकार एक चिकित्सक तथा वकील आदि के कार्य आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति तो करते हैं किन्तु उन्हें हम वाणिज्य में नहीं लाते हैं। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुये हमें वाणिज्य के अर्थ की उक्त व्यापकता को कम करके इसे वास्तविकता के निकट लाना होगा। वास्तविक अर्थ में वाणिज्य उन क्रियाओं का पुंज है जो किसी वस्तु या सेवाओं के निर्माण, वितरण, विपणन तथा उपभोक्ताओं के हाथों में पहुँचाने से सम्बन्धित है। जेम्स स्टीफेन्सन (James Stephenson) ने वाणिज्य की परिभाषा देते हुये लिखा है—"वाणिज्य से तात्पर्य उन समस्त साधनों के योग से है जो वस्तुओं के विनिमय में व्यक्तियों (व्यापार), स्थान (यातायात एवं बीमा) तथा समय (भण्डारण) से सम्बन्धित बाधाओं को दूर करने में संलग्न हैं।"

["Commerce means the sum total of the processes which are engaged in the removal of hindraces of persons (trade), place (transport and insurance) and time (ware housing), in the exchange (banking), of commodities."]

वाणिज्य, वास्तव में व्यवसाय तथा औद्योगिक उत्पादन के प्रबन्धन, विपणन तथा वितरण से सम्बन्धित क्रियाकलापों का क्षेत्र है। इसमें उत्पादन, वितरण, यातायात, विपणन (Marketing), बैंकिंग, क्रय-विक्रय, सन्देशवाहन, भण्डारण, वित्तीय व्यवस्था, आर्थिक लाभ, कर्मचारी-नियुक्ति, आर्थिक नियोजन, आर्थिक संगठन, विज्ञापन, विनिमय, राजस्व आदि का अध्ययन किया जाता है। वाणिज्य किसी समाज तथा राष्ट्र के आर्थिक ढाँचे का आधार होता है तथा उसके आर्थिक ढाँचे को समन्वय प्रदान करता है। तभी तो हार्बर्ट ने कहा है—

"Bdsiness is that phase of economic systems which is devoted to the management and destribution of products of industry and profession, as such it is essential integrating element in the whole economic structure."

वाणिज्य-शिक्षा का अर्थ
(MEANING OF COMMERCE-EDUCATION)

वाणिज्य का अर्थ जान लेने के बाद वाणिज्य-शिक्षा का अर्थ जान लेना सरल हो जाता है। बड़े सरल शब्दों में शिक्षा की वह शाखा जो व्यक्ति या बालक में वाणिज्य के लिये आवश्यक क्षमताओं, दक्षताओं तथा कार्यों का विकास करे, वाणिज्य शिक्षा कहलाती है। यह व्यावसायिक तैयारी की शिक्षा है। हैरिक (Harrick) में वाणिज्य-शिक्षा को इसी अर्थ में परिभाषित किया है—

"That form of education that both directly or indirectly prepares the businessman for his calling is commerce education."

वाणिज्य शिक्षा की यह अत्यन्त ही संकीर्ण परिभाषा है। ऐसी ही एक और संकीर्ण परिभाषा वाणिज्य शिक्षा के सम्बन्ध में दी जाती है कि वाणिज्य शिक्षा कुछ नहीं केवल मात्र लिपिकों का उत्पादन करने वाली शिक्षा है।

"Commerce-education is nothing but the production of clerks."

किन्तु ऐसा नहीं है। वाणिज्य-शिक्षा केवल लिपिकों के निर्माण तक ही सीमित नहीं है, यह किसी भी व्यवसाय तथा औद्योगिक प्रतिष्ठान से जुड़े, छोटे तथा बड़े कर्मचारी

तथा प्रबन्धक के लिये अत्यन्त ही उपयोगी है। संयुक्त राज्य अमेरिका (U.S.A.) के वाणिज्य-शिक्षा से सम्बन्धित राष्ट्रीय समिति ने वाणिज्य-शिक्षा की व्यापक तथा सटीक परिभाषा देते हुये लिखा है—"सम्पूर्ण शिक्षा-प्रक्रिया का वह पक्ष जो एक ओर तो व्यापारिक संस्थाओं, संघों व व्यक्तियों की व्यावसायिक तैयारी से सम्बन्धित है या उन्हें वाणिज्य तथा उद्योग-धन्धों के लिये तैयार करता है, वाणिज्य से सम्बन्धित विविध प्रकार की सूचनायें उपलब्ध कराता है तथा उत्पादकों एवं उपभोक्ताओं को वाणिज्यिक वातावरण का बोध कराने में सहायक होता है, वाणिज्य-शिक्षा कहलाता है।"

"Business-education refers to the area of educational process which concerns itself with vocational preparation for a business carrier or vocational or professional preparation for a carrier teaching business and also with business information-important for very citizen and consumer in order that he may better understand and use his business and economic surroundings."

वाणिज्य शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य व्यक्ति में आर्थिक नागरिकता का विकास करना है जिससे वह एक अच्छा उपभोक्ता, उत्पादक, व्यापारी या उद्योगकर्त्ता बन सके। इसका सीधा सम्बन्ध आर्थिक क्रियाओं तथा आर्थिक कल्याण से है। यह उन समस्त व्यवस्थाओं से सम्बन्धित है जो धनोपार्जन तथा धन के व्यय करने से सम्बन्धित हैं। इसी दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुये सन् 1928 ई० में लामेक्स (Lamex) ने कहा था कि "वाणिज्य-शिक्षा मुख्य रूप से आर्थिक शिक्षा का वह कार्यक्रम है जो धन की प्राप्ति संचयन तथा व्यय से सम्बन्धित होता है।"

"Commercial education is fundamentally a programme of economic education that has to do with the acquirement, conservation and spending of wealth."

वाणिज्य-शिक्षा की प्रकृति
(NATURE OF COMMERCE EDUCATION)

ऊपर वाणिज्य-शिक्षा के अर्थ के सम्बन्ध में जो विवेचना की गई है तथा जो परिभाषायें दी गई हैं, उन्हीं से वाणिज्य-शिक्षा की प्रकृति बहुत कुछ स्पष्ट हो जाती है। फिर भी वाणिज्य-शिक्षा की प्रकृति को और अधिक स्पष्ट करने के लिये इसकी प्रकृति की कुछ प्रमुख विशेषताओं का बिन्दुवार नीचे उल्लेख किया गया है—

1. वाणिज्य-शिक्षा कला तथा विज्ञान दोनों ही है।
2. वाणिज्य-शिक्षा का कार्य व्यक्ति, समाज व राष्ट्र का आर्थिक उन्नयन व कल्याण करना है।
3. वाणिज्य-शिक्षा व्यक्ति को विभिन्न व्यावसायिक तथा आर्थिक क्रियाकलापों का ज्ञान तथा बोध कराकर उसमें आवश्यक दक्षताओं का विकास करती है।
4. वाणिज्य-शिक्षा में उन मानवीय सम्बन्धों का अध्ययन होता है जो आर्थिक तत्त्वों से सम्बन्धित होते हैं।
5. वाणिज्य-शिक्षा मनुष्य को व्यावसायिक तथा आर्थिक रूप से समायोजन स्थापित करने में सहायता करती है।

6. वाणिज्य-शिक्षा व्यक्तियों में आर्थिक नागरिकता के गुणों का विकास करती है।
7. वाणिज्य-शिक्षा व्यावसायिक तथा आर्थिक क्रियाकलापों तक ही सीमित रहती है।
8. वाणिज्य-शिक्षा धनोपार्जन तथा संचयन करने के साथ ही साथ उसे समुचित रूप से व्यय करने से सम्बन्ध रखती है।
9. वाणिज्य-शिक्षा अच्छा उत्पादन तथा उपभोक्ता बनने में सहायता करती है।
10. यह राष्ट्रीयता तथा अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना का विकास भी करती है।
11. वाणिज्य-शिक्षा में हम पुस्तपालन, टंकण, कम्प्यूटर, बैंकिंग, बीमा, यातायात, संदेशवाहन, विज्ञापन, लेखाशास्त्र, प्रबन्धन, आर्थिक क्रियाओं, उत्पादन, विपणन, वितरण आदि का क्रमबद्ध अध्ययन करते हैं।

वाणिज्य-शिक्षा का क्षेत्र
(SCOPE OF COMMERCE EDUCATION)

वाणिज्य-शिक्षा के क्षेत्र में हम उन सभी तत्त्वों को सम्मिलित करते हैं जो व्यक्ति, समाज तथा राष्ट्र के आर्थिक तथा व्यावसायिक जगत से सम्बन्धित हैं। आर्थिक तथा व्यावसायिक जगत से सम्बन्धित क्रियाओं को हम सामान्यतः नीचे लिखे चार वर्गों में विभक्त कर सकते हैं—

(1) व्यापार, (2) उद्योग, (3) वाणिज्य तथा (4) इन तीनों से सम्बन्धित क्रियायें।

(1) व्यापार (Trade)—वाणिज्य-शिक्षा के क्षेत्र में हम सभी प्रकार के तथा स्तरों के व्यापार, उसके नियमों, सिद्धान्तों तथा व्यवहारों का अध्ययन करते हैं। व्यापार में हम स्थानीय, राज्य-स्तरीय, राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के उस सभी प्रकार के व्यापार को शामिल करते हैं जो सामाजिक मान्यता प्राप्त है तथा जो व्यक्ति, समाज व राष्ट्र के आर्थिक कल्याण व उन्नयन से सम्बन्धित है। इतना ही नहीं, वाणिज्य-शिक्षा में हम व्यापार से सम्बन्धित विविध सहायक क्रियाओं का भी अध्ययन करते हैं।

(2) उद्योग (Industry)—वाणिज्य-शिक्षा के अन्तर्गत हम उद्योग तथा उससे सम्बन्धित विभिन्न तत्त्वों का भी अध्ययन करते हैं। इस प्रकार हम वाणिज्य-शिक्षा में उत्पादन तथा उससे सम्बन्धित क्रियाओं, विपणन, वितरण, विनिमय आदि का अध्ययन क हैं। भूमि, श्रम, पूँजी, संगठन तथा साहस का भी हम इसमें अध्ययन करते हैं। ाग छोटा हो, कुटीर तथा गृह-उद्योग हो या वृहत् उद्योग हो, सभी का हम ाणिज्य-शिक्षा में अध्ययन करते हैं।

(3) वाणिज्य (Commerce)—वाणिज्य-शिक्षा में ही हम वाणिज्य से सम्बन्धित क्रियाकलापों का अध्ययन करते हैं।

(4) सम्बन्धित क्रियायें (Related Activities)—वाणिज्य-शिक्षा के अन्तर्गत हम व्यापार, उद्योग तथा वाणिज्य से सम्बन्धित विविध क्रियाओं का भी अध्ययन करते हैं। इन सम्बन्धित क्रियाओं में हम क्रय-विक्रय, विज्ञापन, पुस्तकालय, बीमा, बैंकिंग, यातायात, संदेशवाहन के साधन, विपणन, नियोजन, नियुक्तियाँ, श्रम-विभाजन, वित्तीय-व्यवस्थापन, श्रम-कल्याण, श्रम-सुरक्षा, खनिज, प्राकृतिक सम्प्रदाओं आदि का अध्ययन करते हैं।

उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि वाणिज्य-शिक्षा का क्षेत्र अत्यन्त ही व्यापक तथा उपयोगी है।

वाणिज्य का महत्व
(IMPORTANCE OF COMMERCE)

आज के उन्नत एवं सभ्य समाज में वाणिज्य का विभिन्न दृष्टिकोणों से बहुत ही अधिक महत्व है। यह महत्व संक्षेप में क्रमानुसार नीचे स्पष्ट करने की चेष्टा की गई है—

(1) आर्थिक क्रिया-कलापों के लिए—आज के युग में सम्पूर्ण मानव सभ्यता समाज की आर्थिक उन्नति पर निर्भर करती है। वाणिज्य हमें अपनी आर्थिक क्रियाओं के संचालन नियोजन तथा नियन्त्रण के उपायों से अवगत कराती है इससे मानव की आर्थिक उन्नति एवं समृद्धि को गति एवं दिशा प्राप्त होती है। वाणिज्य से ही मनुष्य की आर्थिक क्रियाओं में वृद्धि होती है, इस वृद्धि से ही आर्थिक सम्पन्नता आती है। हम यह भी कह सकते हैं कि समाज की आर्थिक सम्पन्नता के लिए वाणिज्य आवश्यक है।

(2) उत्पादकों के लिए उपयोगी—वाणिज्य किसी भी राज्य के उत्पादकों के लिए ही बड़ा महत्वपूर्ण एवं उपयोगी है। वास्तव में वाणिज्य के अभाव में कोई भी उत्पादक अतिरिक्त उत्पादन कर ही नहीं सकता है और आज व्यापार के लिए अतिरिक्त उत्पादन अनिवार्य है। वाणिज्य उत्पादकों को उत्पादन हेतु प्रेरणा प्रदान करता है, उत्पादन के उपाय, साधन तथा क्षेत्र बताता है। वाणिज्य ही उत्पादकों को अपने अतिरिक्त उत्पाद (Product) को बाजार में लाने की सुविधा तथा तरीके प्रदान करता है। वास्तव में आधुनिक युग में बिना वाणिज्य के कोई भी उत्पादक उत्पादन नहीं कर सकता है।

(3) उपभोक्ताओं के लिए उपयोगी—वाणिज्य उपभोक्ताओं के लिए भी बड़ा महत्वपूर्ण तथा उपयोगी है। उपभोक्ताओं को अपने दैनिक जीवन की हजारों उपयोगी तथा अनिवार्य वस्तुयें केवल वाणिज्य के सहारे ही प्राप्त होती हैं। वाणिज्य से उपभोक्ताओं को दैनिक जीवन के लिए आवश्यक वस्तुओं के अलावा विशिष्ट आवश्यकताओं की वस्तुयें भी प्राप्त होती हैं। वाणिज्य उपभोक्ताओं को उनकी आवश्यकताओं के अनुरूप वस्तुयें प्रदान कर उनके जीवन को सरल तथा सुविधाजनक बनाता है। वाणिज्य ही उन्हें उपभोग को विभिन्न वस्तुओं से अवगत कराता है।

(4) व्यापारी वर्ग के लिए महत्व—व्यापारियों का समस्त कारोबार भी वाणिज्य पर ही निर्भर करता है। वस्तुओं तथा विभिन्न उत्पादों को उत्पादक से क्रय करके खुदरा विक्रेताओं तथा उपभोक्ताओं तक पहुँचाने का कार्य व्यापारी वर्ग करता है। यदि वाणिज्य न हो तो, न तो किसी प्रकार का व्यापार ही हो और न उपभोक्ताओं तथा आवश्यक वस्तुयें ही पहुँच पायें। व्यापारी-वर्ग की क्रियाओं के लिए वाणिज्य आवश्यक एवं महत्वपूर्ण है।

(5) श्रमिक वर्ग के लिए—श्रमिक वर्ग के लिए भी वाणिज्य बड़ा ही महत्वपूर्ण है। वाणिज्य से ही उद्योगों तथा कारखानों की स्थापना होती है जहाँ श्रमिकों को रोजगार प्राप्त होता है। वाणिज्य ही श्रमिकों की कार्य-कुशलता तथा कल्याण की बात सोचता है। श्रम-विभाजन के द्वारा श्रमिकों की कार्य-कुशलता तथा कल्याण की बात सोचता है। श्रम-विभाजन के द्वारा श्रमिकों की दक्षता बढ़ती है, उनकी उत्पादन क्षमता में वृद्धि होती है तथा उत्पादन बढ़ता है। श्रम विभाजन वाणिज्य का ही एक महत्त्वपूर्ण आयाम है। संक्षेप में, वाणिज्य ही श्रमिकों को रोजगार देता है तथा वही इनकी कार्य-दक्षता बढ़ाता है।

(6) राष्ट्र व समाज की समृद्धि के लिए—प्रत्येक राष्ट्र तथा समाज की आर्थिक प्रगति तथा समृद्धि उस राष्ट्र तथा समाज में चलने वाली वाणिज्यिक क्रियाकलापों पर निर्भर करती है। किसी राज्य तथा समाज की वाणिज्यिक स्थिति जितनी अच्छी होगी उस समाज तथा राष्ट्र के लोग उतने ही अधिक सम्पन्न तथा खुशहाल होंगे। समाज की आर्थिक उन्नति पर ही समाज के अन्य पक्षों का विकास निर्भर करता है।

(7) आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु—प्रारम्भिक अवस्था मे मनुष्य की आवश्यकताएँ बडी ही सीमित थीं। जिनकी पूर्ति वह स्वयं ही स्थानीय साधनो की सहायता से कर लिया करता था किन्तु मनुष्य ज्यो-ज्यों उन्नति करता गया उसकी आवश्यकताओं की संख्या, मात्रा तथा गम्भीरता, विविधता एवं जटिलता बढ़ती गई। आज कोई भी व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति केवल अपने ही साधनों से जुटाए साधनों से नहीं कर सकता है। आवश्यकताओं की बढ़ती हुई संख्या, जटिलता तथा विविधता के कारण इनकी पूर्ति केवल वाणिज्य से ही सम्भव है।

(8) अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के विकास के लिए—आज सम्पूर्ण विश्व प्रलयंकारी विश्वयुद्ध के कगार पर खडा है। इतना सुनिश्चित है इस युद्ध के बाद सम्पूर्ण मानव सभ्यता लुप्त हो जायेगी। युद्ध की विभीषिका से बचने के लिए यह आवश्यक है कि अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों को मधुर बनाये रखने के लिए अन्य कार्यक्रमों के अलावा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार भी बड़ा सहायक है। वाणिज्य तथा व्यापार से हमें न केवल विदेशों से निर्मित उपयोगी तथा महत्त्वपूर्ण वस्तुयें ही प्राप्त होती हैं वरन् अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में भी मधुरता आती है।

(9) समुचित वितरण के लिए—वस्तुओं के समुचित वितरण के लिए भी वाणिज्य आवश्यक है। जिन राष्ट्रों अथवा प्रदेशों में जो वस्तु अधिक मात्रा में उत्पन्न या निर्मित होती है वे अपने अतिरिक्त उत्पादन को उस वस्तु की कमी वाले क्षेत्रों में भेजकर अपनी आवश्यकता की अन्य वस्तु मँगा लेते हैं जैसे उत्तर-प्रदेश, हरियाणा तथा पंजाब गेहूँ अन्य राज्यों को भेजकर अपनी आवश्यकता के अनुसार अन्य राज्यों से कोयला, कपड़ा आदि मँगा लेते हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि वस्तुओं के समुचित वितरण के लिए भी वाणिज्य आवश्यक है।

भारत में वाणिज्य शिक्षा का विकास

भारतवर्ष में वाणिज्य शिक्षा का इतिहास बहुत अधिक पुराना नहीं है। भारत में आधुनिक शिक्षा का सूत्रपात कोलकाता, चेन्नई तथा मुम्बई के तीन विश्वविद्यालय स्थापित करके सन् 1857 ई० में अंग्रेज शासकों द्वारा किया गया। इस समय अंग्रेजों को भारत में शिक्षा के प्रसार का मुख्य उद्देश्य ऐसे भारतीय लिपिकों का निर्माण करना था जो अंग्रेजी शासन को चला सकें। अतः इन तीनों ही विश्वविद्यालयों में किसी भी प्रकार की व्यावहारिक तथा उपयोगी शिक्षा की व्यवस्था नहीं की गई। अतः उस समय तत्कालीन शिक्षा की कटु आलोचनायें हुईं, परिणामस्वरूप अंग्रेजी सरकार को कृषि तथा वाणिज्य जैसे उपयोगी तथा व्यावहारिक विषयों को शिक्षण की भी व्यवस्था करनी पडी। इसी व्यवस्था के अन्तर्गत सबसे पहले सन् 1903 ई० कलकत्ता के प्रेसीडेन्सी कॉलेज में वाणिज्य-शिक्षा की व्यवस्था प्रयोगात्मक रूप में प्रारम्भ की गई। यहाँ वाणिज्य-शिक्षा की सफलता को देखकर कलकत्ता में ही राजकीय वाणिज्य संस्थान की संस्थापना हुई जिनमे वाणिज्य शिक्षा के लिए व्यापक तथा उच्च स्तरीय पाठ्यक्रम किये गये।

कलकत्ता में वाणिज्य शिक्षा की सफलता से प्रेरित होकर बम्बई में भी वाणिज्य शिक्षा की व्यवस्था की गई और यहाँ सर्वप्रथम सर सैयदन कॉलेज में वाणिज्य की शिक्षा दी जाने लगी। सर सैयदन कॉलेज की स्थापना सन् 1914 में हुई थी। इसके बाद मद्रास विश्वविद्यालय में भी वाणिज्य विषयों से सम्बन्धित कार्यक्रम प्रारम्भ हुये। कालान्तर में वाणिज्य विषय के प्रति भारतीयों में रुचि उत्पन्न हुई और वाणिज्य शिक्षा की माँग बढ़ने लगी। इसी समय भारत में नये-नये विश्वविद्यालय स्थापित हुये। इनमें प्रारम्भिक स्थापना से ही वाणिज्य विषयों की शिक्षा की व्यवस्था की गई। धीरे-धीरे वाणिज्य विषयों की शिक्षा के प्रसार में गति और स्कूली शिक्षा-स्तर पर भी वाणिज्य विषयों के शिक्षण की व्यवस्था की गई।

कालान्तर में कोलकाता, मुम्बई तथा दिल्ली विश्वविद्यालयों में वाणिज्य विषयों में उच्च स्तरीय पाठ्यक्रमों की भी व्यवस्था की गई और इस प्रकार की शिक्षा के लिए यहाँ राष्ट्रीय स्तर की संस्थायें स्थापित की गईं। स्वतन्त्रतोपरांत अमरीका सरकार की आर्थिक सहायता से इसी प्रकार की एक राष्ट्रीय स्तर की संस्था अहमदाबाद में स्थापित की गई।

उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि भारत में वाणिज्य शिक्षा का प्रारम्भ 1903 ई. से हुआ किन्तु अपने जीवन के प्रारम्भिक दिनों में आरम्भ में अंग्रेजी शासन होने के कारण भारत में वाणिज्य शिक्षा का यथेष्ठ प्रसार न हो सका। स्वतन्त्रता के बाद इस दिशा में काफी अच्छी प्रगति हुई है किन्तु भारत की जनसंख्या तथा आवश्यकताओं को देखते हुये यह कहा जा सकता है कि आज भी भारत में वाणिज्य शिक्षा की पर्याप्त व्यवस्था नहीं है और जब हम उच्च स्तरीय शिक्षा की बात करते हैं तो पाते हैं कि इतने विशाल क्षेत्र तथा जनसंख्या वाले राष्ट्र में वाणिज्य शिक्षा की व्यवस्था करने वाली सस्थाओं की सख्या बहुत ही कम है। आज आवश्यकता इस बात की है कि राष्ट्र में ऐसी उच्च एवं राष्ट्रीय स्तर की संस्थायें स्थापित की जायें जो देश को योग्य एवं कुशल वाणिज्य प्रशासक एवं संगठनकर्त्ता प्रदान कर सकें।

वाणिज्य शिक्षा की आवश्यकता

आधुनिक युग में सभी विकसित, विकासशील तथा अविकसित राष्ट्रों में वाणिज्य शिक्षा की नितान्त आवश्यकता है। वाणिज्य शिक्षा के द्वारा ही विकसित राष्ट्र अपने विकास को और अधिक सुदृढ़ बनाकर आगे बढ़ा सकते हैं, इसी की सहायता से विकासशील राष्ट्र अपने विकास को आगे बढ़ा सकते हैं तथा वाणिज्य शिक्षा की सहायता से ही अविकसित राष्ट्र विकासोन्मुखी दिशा में कदम बढा सकते हैं। वाणिज्य-शिक्षा की सहायता से समाज तथा व्यक्ति भी अपनी आर्थिक तथा भौतिक उन्नति कर सकते हैं। संक्षेप में यदि हम क्रमानुसार उल्लेख करें तो कह सकते हैं कि वाणिज्य शिक्षा की नीचे लिखे कारणों से आवश्यकता है—

(1) आर्थिक एवं भौतिक उन्नति हेतु—राष्ट्र, समाज तथा व्यक्ति स्वयं की आर्थिक एवं भौतिक उन्नति के लिए वाणिज्य शिक्षा अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण तथा उपयोगी है। वाणिज्य की शिक्षा, वाणिज्य की स्थापना, संचालन, संगठन तथा ऐसे ही अन्य अनेक महत्त्वपूर्ण पहलुओं का ज्ञान प्रदान करती है। इस ज्ञान की सहायता से व्यापार तथा उद्योग की स्थापना, संचालन आदि में सफलता प्राप्त होती है। इससे नये-नये उद्योग

स्थापित होते है, उन्नत होते है तथा भौतिक और आर्थिक उन्नति मे सहायक होते
इसकी सहायता से मनुष्य व्यापार करके धन कमाना सीखता है। वह इस प्रकार के
से आर्थिक उन्नति के नये-नये क्षेत्रो की खोज करता है, उनमे प्रविष्ट करता है
उन्नति करता है। इससे राष्ट्र तथा समाज की आर्थिक उन्नति होती है।

(2) प्राकृतिक सम्पदाओं का शोषण—प्रकृति ने हमे विविध तथा प्रचुर सम्पद
प्रदान की है। इन प्रकृति-प्रदत्त विविध सम्पदाओ की खोज कर उनका उपयोगी दो
एव शोषण करने पर ही आर्थिक एवं नैतिक उन्नति निर्भर करती है। इसी से नये-न
उद्योगो की स्थापना को बल मिलता है तथा राष्ट्र विकास की ओर अग्रसर होता
वाणिज्य शिक्षा हमें बताती है कि प्रकृति ने हमें कौन-कौन प्राकृतिक सम्पदायें दी है त
उनका किस प्रकार दोहन तथा शोषण किया जा सकता है। जिस व्यक्ति या समाज
पास इन सम्पदाओं के दोहन के साधन प्राप्त हैं तथा जो दोहन कर भी रहे हैं वे
आर्थिक उन्नति कर सके हैं। वाणिज्य शिक्षा के ज्ञान से प्राकृतिक सम्पदाओं का प
लगाकर नये-नये उद्योग स्थापित किये जा सकते हैं। इससे आर्थिक विकास सम्भ
होता है।

(3) सुनियोजित विकास—वाणिज्य-शिक्षा वास्तव में किसी वाणिज्य के विभि
पहलुओ की शिक्षा है। इस शिक्षा की सहायता से सुनियोजित विकास सम्भव है। वाणिज
शिक्षा से हम राष्ट्र तथा समाज की विभिन्न वाणिज्यिक गतिविधियों का सुनियोजि
विकास कर सकते हैं। इस प्रकार की शिक्षा से किसी व्यक्ति विशेष के व्यावसायि
क्रियाकलाप तथा किसी एक उद्योग तथा व्यवसाय के कार्यकलापों का सुनियोजि
विकास कर सकते हैं। वाणिज्य शिक्षा हमें बताती है कि व्यवसाय के किस पहलू प
क्या जोर तथा महत्व देना है। व्यवसाय के विकास पक्ष कर कब तथा कितना विकास
करना है, यह हमें वाणिज्य-शिक्षा ही बताती है और यही सुनियोजित विकास है।

(4) श्रम-व्यवस्था तथा कल्याण—वाणिज्य केवल मात्र आर्थिक तथा भौतिक
उन्नति का ही विज्ञान नहीं है, इसके अपने कुछ विशिष्ट मानवीय मूल्य भी हैं। इन मूल्य
का बहुत कुछ मात्रा में वाणिज्य में श्रमिकों पर उपयोग किया जाता है। वाणिज्य शिक्ष
हमें सिखाती है कि किस प्रकार श्रमिकों की व्यवस्था की जाये, किस प्रकार उन
अधिकाधिक मात्रा में काम लिया जाय तथा इसके साथ ही हम किस प्रकार अपने श्रमिक
का कल्याण कर सकें। जिस उद्योग के श्रमिक अपने उद्योग से जितने अधिक सन्तुष्ट
होगे, श्रमिक उतना ही अधिक तथा अच्छा एवं लगन से वहाँ कार्य करेंगे। श्रम-सम्बन्ध
को कैसे मधुर बनाया जाय, जिससे श्रम-समस्यायें कम से कम हो, यह हमें वाणिज्य
शिक्षा से ही ज्ञात होता है।

(5) आर्थिक एवं अन्य साधन जुटाने में सहायता—प्रत्येक व्यावसायिक उपक्रम क
लिए कतिपय आर्थिक तथा दूसरे अन्य प्रकार के संसाधन जुटाने की आवश्यकता पड़
है। बिना इन संसाधनों के जुटाये किसी भी प्रकार वाणिज्यिक उपक्रम चालू नहीं कि
जा सकता है। वाणिज्य शिक्षा हमें बताती है कि किसी भी वाणिज्यिक उपक्रम क
स्थापना के लिए आवश्यक संसाधनों को कैसे, कहाँ से तथा किस-किस मात्रा में जुटाय
जाय, इन सबका ज्ञान कराती है। किसी भी आर्थिक तथा व्यावसायिक उपक्रम क
स्थापना के लिए भूमि, श्रम, पूँजी, साहस तथा संगठन की आवश्यकता होती है। उपक्र

की विशालता को ध्यान में रखकर ही इन पाँच तत्वों की व्यवस्था करनी पड़ती है।
वाणिज्य शिक्षा हमें बताती है कि उत्पादन के किस तत्त्व की कितनी मात्रा में व्यवस्था
की जाय। यदि इन तत्त्वों की मात्रा में समन्वय नहीं होगा तो अधिकतम प्रतिफल भी नहीं
मिलेगा।

(6) कार्यालय-व्यवस्था का ज्ञान—प्रत्येक व्यावसायिक उपक्रम का कार्यालय
उसका हृदय होता है। शरीर में जो स्थान हृदय का है, व्यवसाय में वही स्थान कार्यालय
का है। यदि कार्यालय की व्यवस्था ठीक है तो सम्पूर्ण व्यवसाय भी ठीक चलेगा।
वाणिज्य शिक्षा हमें ज्ञान देती है कि किसी कार्यालय की व्यवस्था तथा संगठन व
सचालन किस प्रकार से करना चाहिए। कार्यालय-व्यवस्था के लिए भी वाणिज्य-शिक्षा
आवश्यक है। वाणिज्य-शिक्षा कार्यालय में दिन-प्रतिदिन कार्य आने वाले श्रम एव समय
बचाने वाले विविध यन्त्रों का भी ज्ञान देती है। इन यन्त्रों का क्या उपयोग है, इनका
कैसे प्रयोग किया जाय तथा इनका रख-रखाव कैसे किया जाय आदि सभी बातों की
जानकारी हमें वाणिज्य-शिक्षा से प्राप्त होती है।

(7) देशी एवं विदेशी व्यापार का ज्ञान—वाणिज्य-शिक्षा हमें देशी तथा विदेशी
(अन्तर्राष्ट्रीय) व्यापार का ज्ञान प्रदान करती है। वाणिज्य में हम देशी तथा तटीय
व्यापार का अध्ययन करते हैं कि देश की व्यापारिक स्थिति क्या है ? देश किन-किन
वस्तुओं का निर्माण करता है, किनका निर्यात तथा आयात करता है। इस प्रकार के
ज्ञान से व्यक्ति को अपना व्यापार तथा वाणिज्यिक उपक्रम करने में सुविधा होती है।

(8) व्यापारिक कुशलता का विकास—किसी भी व्यापार की सफलता बहुत कुछ
व्यापारी की कुशलता पर निर्भर करती है। वाणिज्य शिक्षा एक व्यक्ति में उन मानवीय
तथा व्यावसायिक गुणों का सहजता के साथ विकास करती है जो एक सफल व्यापारी
में होने चाहिए। वाणिज्य-शिक्षा व्यक्ति में व्यावसायिक दक्षता का विकास करती है। किसी
व्यापार का किस प्रकार संचालन किया जाए, किस प्रकार निर्णय लिये जायें, किस
प्रकार तथ्यों का संगठन किया जाए, श्रम से किस प्रकार कार्य लिया जाए, किस प्रकार
उत्पाद को बाजार में भेजा जाए आदि सभी बातें वाणिज्य शिक्षा से ही विकसित हो पाती
हैं। वाणिज्य-शिक्षा से ही कोई व्यक्ति कुशल व्यापारी बन पाता है।

(9) अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में सुधार—वाणिज्य द्वारा विशेषतौर से अन्तर्राष्ट्रीय
व्यापार से अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में सुधार होता है। वाणिज्य-शिक्षा हमें यह ज्ञान कराती है
किस प्रकार किन वस्तुओं में तथा किन देशों के साथ व्यापार किया जा सकता है।
अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में कुशलता के लिए वाणिज्य-शिक्षा परमावश्यक है।

(10) आर्थिक समस्याओं का समाधान—प्रत्येक व्यक्ति तथा समाज के सामने
समय-समय पर आर्थिक समस्यायें उत्पन्न हो जाती हैं। वाणिज्य शिक्षा हमें इतनी
कुशलता प्रदान करती है जिससे व्यक्ति इस प्रकार की विविध आर्थिक समस्याओं तथा
कठिनाइयों का सरलता से समाधान कर लेता है। वाणिज्य शिक्षा व्यक्ति में समस्या-
समाधान की योग्यता का विकास करने के लिए बड़ी उपयोगी है।

(11) व्यवसाय के चयन में सहायक--वाणिज्य-शिक्षा व्यवसाय के चयन में भी
हमारी सहायता करती है। वाणिज्य के क्षेत्र में अनेक प्रकार के व्यवसाय उपलब्ध हैं।
वाणिज्य-शिक्षा इन उपलब्ध व्यवसायों का ज्ञान हमें देती है और इनमें कोई उपयुक्त
व्यवसाय का चयन करने में हमारी सहायता करती है।

उक्त विवरण से स्पष्ट है कि आज के युग में वाणिज्य-शिक्षा बड़ी ही उपयोगी तथा महत्त्वपूर्ण है। इसका महत्व न केवल व्यक्तिगत स्तर पर ही है, वरन् यह राष्ट्र तथा समाज की समृद्धि के लिए बड़ी महत्वपूर्ण है।

अभ्यास-प्रश्न

निबन्धात्मक-प्रश्न

1. वाणिज्य का अर्थ स्पष्ट करते हुये वाणिज्य के महत्व पर प्रकाश डालिये।
2. वाणिज्य-शिक्षा से आप क्या समझते हैं ? वाणिज्य-शिक्षा के क्षेत्र की विवेचना कीजिये।
3. वाणिज्य-शिक्षा के कार्य को स्पष्ट कीजिये तथा इसकी प्रकृति पर अपने विचार लिखिये।
4. वाणिज्य तथा वाणिज्य-शिक्षा में क्या सम्बन्ध है ? वाणिज्य के महत्व पर प्रकाश डालिये।

लघु उत्तरात्मक प्रश्न

1. वाणिज्य शिक्षा के क्षेत्र का परिचय दीजिये।
2. वाणिज्य शिक्षा की प्रकृति बताइये।
3. उद्योग तथा व्यापार में अन्तर स्पष्ट कीजिये।
4. समाज के लिए वाणिज्य का क्या महत्व है ?
5. कार्यालय व्यवस्था के ज्ञान से आप क्या समझते हैं ?
6. वाणिज्य शिक्षा की कोई परिभाषा दीजिये तथा संक्षेप में उसकी व्याख्या कीजिये।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. वाणिज्य-शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य व्यक्ति में आर्थिक नागरिकता का ..... करना है।
2. सर सैयदन कॉलेज की स्थापना कब हुई ?
   (अ) सन् 1914 (ब) सन् 1924
   (स) सन् 1941 (द) सन् 1944
3. वाणिज्य द्वारा विशेषतौर से अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में सुधार होता है।
   (अ) सत्य (ब) असत्य

उत्तर—1. विकास, 2. (अ) सन् 1914, 3. (अ) सत्य।

वाणिज्य शिक्षण के उद्देश्य

(AIMS OF TEACHING COMMERCE)

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। उसकी क्रियायें निरुद्देश्य नहीं होती हैं। मानव की समस्त क्रियाओं की पृष्ठभूमि में कोई लक्ष्य या उद्देश्य अवश्य होता है जो व्यक्ति को क्रिया करने की प्रेरणा देता है तथा उसका मार्गदर्शन भी करता है। इस तथ्य को स्पष्ट करते हुए महान शिक्षाशास्त्री ड्यूवी ने कहा है कि उद्देश्य पूर्व योजित लक्ष्य है जो किसी क्रिया को संचालित करता है या क्रिया करने को प्रेरित करता है। चूँकि मानव और शिक्षा के मध्य घनिष्ठ सम्बन्ध है तथा शिक्षा व्यक्ति एवं समाज के विकास का एक साधन भी है अतएव उद्देश्यहीन शिक्षा से न तो व्यक्ति का विकास होता है न समाज का ही कोई भला होता है। रिवलिन ने लिखा है कि "शिक्षा अर्थपूर्ण और नैतिक क्रिया है। अतः उद्देश्यहीन शिक्षा के बारे में सोचा भी नहीं जा सकता है। मनुष्य चिन्तनशील होता है। वह किसी कार्य को करने से पूर्व मस्तिष्क में उसकी पूर्व योजना का निर्माण करता है तथा कार्य को निश्चित करता है तत्पश्चात् निश्चित उद्देश्यों से प्रेरणा लेकर कार्य की ओर अग्रसर होता है। प्रत्येक मानवीय क्रिया सोद्देश्य होती है। अतः जैसे उद्देश्य होंगे वैसी ही क्रियायें होंगी। शिक्षण को सुचारु व व्यवस्थित ढंग से चलाने के लिए उद्देश्यों को निश्चित करना आवश्यक है। उद्देश्य शिक्षार्थी को अपने उद्देश्य तक पहुँचने के लिए अभिप्रेरित करते हैं तथा लक्ष्य प्राप्ति तक सक्रिय रखते हैं। आज की शिक्षा उद्देश्यनिष्ठ शिक्षा है जिसमें शिक्षण से पूर्व उद्देश्यों का निर्धारण किया जाता है। वाणिज्य शिक्षा के उद्देश्य आर्थिक स्रोत, आर्थिक स्थिति, भौगोलिक वातावरण व परिस्थितियों सामाजिक विचारधाराओं द्वारा प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित होते हैं।

एन० सी० ई० आर० टी० के एक प्रकाशन में उद्देश्यों की परिभाषा देते हुए लिखा गया है कि—"उद्देश्य वह बिन्दु अथवा साध्य है जिसकी दिशा में कार्य को अग्रसर किया जाता है तथा जिसके अनुसार किसी क्रिया के माध्यम से कोई पूर्व नियोजित परिवर्तन लाया जाता है।"

उद्देश्यों का अर्थ अधिक स्पष्ट करने के लिए उद्देश्य एवं लक्ष्य में अन्तर समझना भी आवश्यक है। उद्देश्य अपने स्वभाव एवं प्रकृति में सीमित होते हैं और इनका सम्बन्ध केवल शिक्षक से ही होता है जबकि लक्ष्य व्यापक होते हैं और इनका सम्बन्ध सम्पूर्ण राष्ट्र तथा समाज से होता है। शिक्षण उद्देश्यों का निर्माण शिक्षक स्वयं शिक्षा

उद्देश्यो के आधार पर करता है जबकि लक्ष्यो का निर्धारण सम्पूर्ण समाज, समाज की परम्पराये तथा राष्ट्र एव उसका चिन्तन करता है। शिक्षण उद्देश्यों का निर्माण शिक्षक अपने कार्यक्रमो, उपलब्ध साधनो तथा समय के अनुसार करता है जबकि लक्ष्यो का निर्माण रीति नीति, आवश्यकता एव सत्तारूढ दल की विचारधारायें करती है। स्वभाव एव प्रकृति की संकीर्णता के कारण उद्देश्य अपेक्षाकृत सुनिश्चित होते है। जबकि लक्ष्य अधिक व्यापक तथा उदार होते हैं, इसलिए इनमें निश्चितता कम होती है। उद्देश्यों का मापन व मूल्यांकन करना सुनिश्चितता के कारण सरल होता है जबकि लक्ष्यों का मापन कठिन होता है।

शिक्षा के उद्देश्यों की आवश्यकता

उद्देश्यो की आवश्यकता निम्नलिखित तथ्यों से स्पष्ट की जा सकती है—

(अ) औपचारिक शिक्षा का संगठन—समाज द्वारा औपचारिक शिक्षा का गठन कुछ उद्देश्यों को लेकर किया जाता है। समाज के व्यक्तियों को किस प्रकार की शिक्षा दी जाय यह उस समाज के लोगों के जीवन के प्रति दृष्टिकोण द्वारा तय किया जाता है। प्रत्येक समाज मानव जीवन के कुछ उद्देश्य निर्धारित करता है। शिक्षा व्यवस्था उन उद्देश्यों पर निर्भर करती है।

(आ) पाठ्यक्रम एवं शिक्षण विधियों का चयन—शिक्षा के उद्देश्य ही पाठ्यक्रम के कलेवर का चयन करने में सहायक होते हैं। उद्देश्य ही पाठ्यवस्तु को छाँटने में सहायता करते हैं। इसी प्रकार उद्देश्यों को देखकर अध्यापकगण जब यह निश्चित करते है कि कक्षा में उनको किन शिक्षण विधियों का प्रयोग करना चाहिये।

(इ) शिक्षण प्रक्रिया का संचालन—शिक्षा के उद्देश्य शिक्षण प्रक्रिया को ठीक से संचालित करने में सहायक होते हैं। उद्देश्यों का ज्ञान होने पर शिक्षक व छात्रों को यह ज्ञान होता है कि उसे क्या सीखना है। शिक्षक व छात्रों के मध्य चलने वाली प्रक्रिया ही शिक्षण प्रक्रिया कहलाती है। उद्देश्यों के अभाव में यह प्रक्रिया ठीक प्रकार नहीं चल सकती है।

(ई) उत्साह एवं लगन में वृद्धि—उद्देश्य का ज्ञान होने पर शिक्षक एवं छात्र बड़े लगन से कम करते हैं तथा उनमें उत्साह बढ़ता है।

(उ) समाज का उचित विकास—उद्देश्यविहीन शिक्षा समाज का विकास नहीं कर सकती है। उद्देश्य ही शिक्षा का मार्ग प्रशस्त करते हैं और समाज को विकास की ओर अग्रसर करते हैं।

अच्छे शैक्षिक उद्देश्यों की विशेषता

रॉबर्ट मैगर ने उद्देश्यों की विशेषताओं में निम्न 3 बातों को बतलाया है—

(अ) परिवर्त्य व्यवहार—अपनी दक्षता को प्रकट करते समय अधिगमकर्ता छात्र कौन सा व्यवहार करेगा। इस बात का स्पष्ट निरूपण उद्देश्य में होना चाहिए इससे छात्रों मे होने वाले व्यावहारिक परिवर्तन का स्पष्टीकरण होता है।

(ब) परिवर्त्य व्यवहार की शर्तें—वह शर्तें जिसके आधार पर व्यवहारगत परिवर्तन सम्भव है, इसमें उन परिस्थितियों का उल्लेख हो, जिसमें छात्र अपनी दक्षता दिखायेगा।

(स) परिवर्त्य व्यवहार की अभिव्यक्ति—स्वीकरण स्तर—शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति किस स्तर तक हुई, उसे ज्ञात करने की एक कसौटी है। इसी आधार पर अधिगमकर्त्ता छात्र के व्यवहार को उचित व अनुचित तय करता है।

उद्देश्यों के निर्धारक

शिक्षा के उद्देश्यों को न तो कोई एक व्यक्ति या व्यक्तियों का कोई समूह विशिष्ट ही निर्धारित करता है। वास्तविक रूप से शिक्षा के उद्देश्यों का निर्धारण तो अनेक विद्वानों के सम्मिलित प्रयासों का परिणाम होता है। लेखक, सम्पादक, अध्यापक, दार्शनिक, राजनीतिज्ञ, विज्ञापनदाता, जनसम्पर्क अधिकारी, शिक्षा अधिकारी, शिक्षा विभाग, सरकारी, गैर सरकारी सस्थायें, आयोग, समितियाँ आदि सभी के मिले-जुले प्रयासों के परिणामस्वरूप शिक्षा के विभिन्न उद्देश्यों का निर्माण किया जाता है।

उद्देश्यों के प्रकार

शिक्षा के उद्देश्यों को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। प्रथम प्रकार निम्न से है—

(अ) सामान्य उद्देश्य

(ब) विशिष्ट उद्देश्य

सामान्य उद्देश्य—शिक्षा के सामान्य उद्देश्यों से तात्पर्य उन उद्देश्यों से है जो सभी पर लागू होते हैं। ये देश काल से प्रभावित नहीं होते हैं, इनकी उपयोगिता सभी देशों में सदैव बनी रहती है। इन उद्देश्यो को ही सामान्य उद्देश्य कहा जाता है।

विशिष्ट उद्देश्य—ये उद्देश्य देश व काल से प्रभावित होते हैं और इनका आधार किसी देश की सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियाँ होती हैं, इनका क्षेत्र सीमित होता है। उदाहरणार्थ कोई विकासशील देश आर्थिक विकास के लिए प्रौद्योगिक शिक्षा का प्रसार करना उद्देश्य निर्धारित कर सकता है।

शिक्षा के उद्देश्यों का द्वितीय भेद निम्न प्रकार से है—

(अ) व्यक्तिगत उद्देश्य

(ब) सामाजिक उद्देश्य

वाणिज्य शिक्षा के उद्देश्य

संयुक्त राज्य अमेरिका के वाणिज्य अध्यापकों की राष्ट्रीय समिति ने वाणिज्य शिक्षा की परिभाषा बतलाते हुए कहा कि "वाणिज्य शिक्षा, शिक्षा प्रक्रिया का वह पक्ष है जो एक ओर व्यापारिक धन्धों की व्यावसायिक तैयारी से सम्बन्धित है या वाणिज्य शिक्षण से सम्बन्धित कार्यों के लिए तैयार करता है तथा दूसरी ओर ऐसी वाणिज्य सम्बन्धी सूचनाओं से सम्बन्धित है जो प्रत्येक व्यक्ति व उपभोक्ता के लिए आर्थिक व वाणिज्यिक वातावरण को ठीक प्रकार से समझने हेतु महत्वपूर्ण है।"

उपरोक्त परिभाषा वाणिज्य शिक्षा के दो प्रमुख उद्देश्यों की ओर संकेत करती है। एक तो यह व्यावसायिक प्रवृत्ति की ओर इशारा करती है दूसरी ओर यह वाणिज्यिक कुशलता व क्षमता की प्रवृत्ति को बतलाती है।

वाणिज्य शिक्षा को सामान्य लक्ष्यों की दृष्टि से दो भागों में बाँटा जा सकता है जो निम्न प्रकार हैं—

(1) व्यावसायिक शिक्षा
(2) अव्यावसायिक शिक्षा

अमेरिका के एक व्यावसायिक संगठन ने व्यावसायिक वाणिज्य शिक्षा व अव्यावसायिक वाणिज्य शिक्षा की परिभाषा निम्न प्रकार से प्रस्तुत की है—

"व्यावसायिक वाणिज्य शिक्षा, शिक्षा का एक ऐसा कार्यक्रम है जो छात्रों को वाणिज्यिक धन्धो के लिए ऐसी आवश्यक कुशलता, ज्ञान व अभिवृत्ति से युक्त कर सके जो कि प्रारम्भिक रोजगार प्राप्त करने और उनमे उन्नति करने हेतु आवश्यक है।" दूसरी ओर अव्यावसायिक वाणिज्य शिक्षा से तात्पर्य है, "वह शिक्षा जो छात्रों को ऐसी सूचनाओं व क्षमताओं से सुसज्जित कर सके जो वाणिज्य के क्षेत्र मे व्यक्तिगत कार्यों और सेवाओं से सम्बन्धित है और जिनकी हर व्यक्ति को आवश्यकता होती है।"

Vocational business education has been defined as "a programme of education which equips the student with the marketable skills, knowledges and attitudes needed for initial employment and advancement the business occupations." "General business education on the other hand provides the student with information and competencies which are needed by all, in managing personal business affairs and in using the services of the business world." Definitions of terms in Vocational and Practical Arts Education, American Vocational Association. 100 Vermont Avenue, Washington 5 D. C., 1954, Page 7.

(1) व्यावहारिक उपयोगिता का उद्देश्य—विभिन्न शिक्षा स्तरों पर छात्र जो भी क्षमताएँ, कुशलतायें व आवश्यक ज्ञान अर्जित करते हैं उसे व्यावहारिक जीवन में उपयोगी बना सके। छात्रों को बैंकों, बीमा कम्पनियों व कार्यालयों, व्यापारिक संगठनों व मिलों, कारखानों आदि में ले जाकर उनके क्रियाकलापों के व्यावहारिक पक्ष की आवश्यक जानकारियाँ दी जाती हैं। इनके साथ-साथ उन्हें अनेकानेक वाणिज्यिक प्रतिष्ठानो में कच्चे माल के स्रोत क्या-क्या हैं और कहाँ-कहाँ हैं उनकी प्राप्ति के तरीके, प्रशासनिक तरीके, पूँजी में सन्तुलन पक्ष की उचित जानकारियाँ दी जाती हैं। इससे छात्रों में उत्तरदायित्व की भावना व सहयोग की प्रवृत्ति भी विकसित होती है। इस प्रकार वाणिज्य शिक्षा द्वारा विभिन्न स्रोतों बीमा कम्पनियों, बैंकों, सहकारी समितियों से छात्र जो प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं, बाद में उन्हें जीवन में उनका व्यावहारिक उपयोग व्यावहारिक उपयोगिता को अर्जित करने में सक्षम बनाते हैं।

(2) साधारण चातुर्य का विकास—वाणिज्य शिक्षा छात्रों में साधारण चातुर्य का विकास करती है। कुछ विशेष वर्ग के बालक जीवन के प्रारम्भिक चरणों से ही व्यापार कार्यों में संलग्न हो जाते हैं, ऐसे बालक शीघ्र व्यापारिक कार्यों व वाणिज्यिक सिद्धान्तों में आवश्यक कौशल अर्जित कर लेते हैं, आय-व्यय का हिसाब रखना, पूँजी का उचित व अधिकतम उपयोग करना, बाजार की स्थिति, आवाक को सही ढंग से जानना, बैंक कार्यों, बीमा कार्यों, सहकारी समितियों से परिचय, रेल विभाग व डाक तार विभाग से सामान भेजने व सामान व पत्र आदि शीघ्र व उचित ढंग से प्राप्त करने में निपुणता प्राप्त कर लेते हैं। वाणिज्य शिक्षा द्वारा छात्र माँग व पूर्ति के सिद्धान्त को ध्यान में रख बाजार से सम्पर्क जोड़ते हैं। वह धन का उचित सन्तुलन बनाने में सफल रहते हैं। इस प्रकार वाणिज्य शिक्षा के द्वारा छात्रों में आवश्यक साधारण चातुर्य का विकास किया जा सकता है।

(3) जीविकोपार्जन का उद्देश्य—वाणिज्य शिक्षा भावी जीवन के लिए सुदृढ आधार प्रस्तुत करती है। वाणिज्य शिक्षा का एक उद्देश्य जीविकोपार्जन है। जीविकोपार्जन के लिए धन की अहम् भूमिका होती है। वाणिज्य शिक्षा बतलाती है कि धन किन-किन कार्यों व व्यवसायों से अर्जित किया जा सकता है। वाणिज्य शिक्षा विभिन्न व्यवसायों, उनके क्रियाकलापों की जानकारी देकर व्यावहारिक व यथार्थवादी दृष्टिकोण विकसित करती है जिससे वे जीविकोपार्जन के लिए व आत्मनिर्भर बनने के लिए प्रेरित होते हैं। फलस्वरूप वे एक निश्चित व्यवसाय का चयन करते हैं तथा लगन व परिश्रम के द्वारा जीविकोपार्जन में अपने को संलग्न करते हैं। जीविकोपार्जन के उद्देश्य को सफल बनाने के लिए वाणिज्य शिक्षा के अन्तर्गत अनेकानेक व्यवसायों से परिचित कराया जाए इससे छात्रों में आवश्यक ज्ञान, कुशलताओं व क्षमताओं का विकास होगा। व्यवसाय बढ़ेंगे तो स्रोत भी बढ़ेंगे, उत्पादन भी बढ़ेगा। फलस्वरूप न केवल नागरिक अपितु राष्ट्र भी आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न बनेगा।

(4) व्यवसाय परिवर्तन में अनुकूलता—वाणिज्य शिक्षा एक उद्देश्य छात्रों को इस योग्य बनाना है कि वे भविष्य में अर्जित ज्ञान का जीवन में उपयोग कर सके तथा आवश्यकता पड़ने पर व्यवसाय परिवर्तन भी आसानी से कर सके। वाणिज्य शिक्षा द्वारा छात्रों को जीवनोपयोगी शिक्षा प्रदान करना मुख्य कार्य है। विज्ञान के इस चमत्कारिक युग ने अनेकानेक नवीन मशीनों का आविष्कार किया है। अतः तत्सम्बन्धी व्यक्तियों को व्यवसाय परिवर्तन के लिए तत्पर रहना चाहिए। आर्थिक स्तर में परिवर्तन तथा सरकारी नीति में बदलाव भी कई पुराने व्यवसायों व उद्योगों को बन्द कर नये व्यवसाय व उद्योग स्रोत प्रस्तुत करते हैं अतः व्यवसाय परिवर्तन के लिए तत्पर रहना चाहिए। वाणिज्य शिक्षा द्वारा छात्रों को यथार्थवादी दृष्टिकोण विकसित करना चाहिए ताकि वे समय-कुसमय कठिनाइयों का मुकाबला कर सके व साहस व परिश्रम से युक्त मानव बना समय व परिस्थिति के अनुसार आवश्यकतानुसार व्यवसाय परिवर्तन के लिए सक्षम बना सके।

(5) वाणिज्यिक कुशलताओं का विकास—वाणिज्यिक क्रिया-कलापों व गतिविधियों की सामान्य जानकारी कराना भी वाणिज्य शिक्षा का एक प्रमुख उद्देश्य है। किसी भी देश की शक्ति सम्पन्नता व आर्थिक सम्पन्नता में वित्त सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व होता है। व्यापार व वाणिज्य वित्तीय व्यवस्था के सारे, ताने-बाने निर्धारित करता है। बैंक व्यवस्था से चेक, ड्राफ्ट, चालू खाते, बचत पत्र आदि व डाक विभाग से रजिस्ट्री, पत्र-विनिमय, सहकारी समितियों की कार्य प्रणालियों द्वारा बाजार से सम्पर्क स्थापित करा माल का उत्पादन किस प्रकार कैसे साधनों से अधिकाधिक उत्पादित हो सकता है यह कुशलताएँ विकसित की जा सकती हैं। वाणिज्य शिक्षा द्वारा वाणिज्य सेवाओं की जानकारी के साथ-साथ राष्ट्र की आर्थिक नीतियों, कार्यक्रमों व समस्याओं की भी जानकारियाँ कराना आवश्यक है। इस प्रकार वाणिज्य शिक्षा प्रभावपूर्ण ढंग से छात्रों में वाणिज्यिक क्षमताओं व कुशलताओं का विकास कर छात्रों की पैनी व्यापारिक दृष्टि प्रदान करती है। वाणिज्य शिक्षा द्वारा प्रदत्त इस पैनी दृष्टि से आर्थिक कुशलता व आर्थिक जागरूकता विकसित होती है।

(6) लोकतान्त्रिक उद्देश्य—माध्यमिक शिक्षा आयोग के अनुसार, "लोकतंत्र में नागरिकता एक चुनौतीपूर्ण दायित्व है जिसके लिए प्रत्येक नागरिक को प्रशिक्षित किया जाता है। इसमे बहुत से बौद्धिक, सामाजिक तथा नैतिक गुण निहित है जिनके अपने आप विकसित होने की अपेक्षा नही की जा सकती है।"

भारत ने अपने को लोकतन्त्रात्मक गणराज्य घोषित किया है। लोकतन्त्र को शासन के स्वरूप के साथ-साथ जीवन के एक तरीके के रूप में भी स्वीकार किया है अतः हमारी कार्यप्रणाली भी उसी के अनुरूप तय करनी होगी। इसके लिए प्रत्येक नागरिक में प्रजातान्त्रिक गुणों का विकास करना आवश्यक है। वाणिज्य शिक्षा द्वारा हम इस उद्देश्य की प्राप्ति कर सकते हैं। वाणिज्य शिक्षा द्वारा हम आर्थिक स्वतन्त्रता व आर्थिक लोकतन्त्र के ऊँचे लक्ष्य की प्राप्ति कर सकते हैं। लोकतन्त्र को एक दिशा, गति व शक्ति प्रदान की जा सकती है। प्रजातांत्रिक नागरिकों के लिए आवश्यक सूझ, दक्षता, अभिवृत्तियों का विकास वाणिज्य शिक्षा के द्वारा आसानी से किया जा सकता है। वाणिज्य शिक्षा आर्थिक सिद्धान्तों को जीवन में उतारने की कला सीखना व्यावहारिक नागरिकों का निर्माण करती है।

(7) राष्ट्र की आर्थिक स्थिति व समस्याओं की जानकारी कराना—यदि राष्ट्र का लक्ष्य ऊँचा है और वह राजनैतिक स्वतन्त्रता व समानता के साथ-साथ आर्थिक स्वतन्त्रता व समानता तथा आर्थिक लोकतन्त्र को सही अर्थों में प्राप्त करना चाहते हैं तो यह आवश्यक है कि प्रत्येक नागरिक राष्ट्र की वास्तविक आर्थिक स्थिति व राष्ट्र की आर्थिक समस्याओं से अवगत हो तभी वे इन समस्याओं के समाधान हेतु तत्पर हो सकते हैं। वाणिज्य शिक्षा छात्रों को उचित दृष्टि व उचित जागरूकता प्रदान कर सकती है। प्रजातन्त्रात्मक देश में प्रत्येक नागरिक को उसकी सरकार की वाणिज्य नीतियों की सही जानकारी होनी भी आवश्यक है। उद्योग, उत्पादन, व्यापार आयात-निर्यात, श्रम व पूँजी आदि नीतियों व उनकी समस्याओं से अवगत कराने में वाणिज्य शिक्षा महत्त्वपूर्ण योगदान प्रदान करती है। राष्ट्र के कौन-कौन से स्रोत, साधन व व्यवसाय ऐसे हैं जिनके विकास की सम्भावनाएँ हैं। इनका वाणिज्य शिक्षा द्वारा ज्ञान करा कर अनेक उद्योग, व्यापार के विकास की सम्भावनायें विकसित की जा सकती हैं। राष्ट्र को शक्तिशाली व समृद्धशाली राष्ट्र के रूप में विकसित किया जा सकता है।

(8) तर्क एवं निर्णय शक्ति का विकास—वाणिज्य शिक्षा का एक प्रमुख उद्देश्य छात्रों में उचित तर्क व निर्णय शक्ति का विकास करना है। अनेकानेक समस्याओं के समाधान के लिए यह जरूरी है कि छात्रों को इन बातों की जानकारी हो कि क्या उचित है क्या अनुचित, क्या सत्य है और क्या असत्य, उपरोक्त का सही ज्ञान होने पर ही वे समस्याओं के उचित समाधान निकालने में सफल हो सकते हैं। इस प्रकार की विभेदीकरण की शक्ति मानसिक शक्तियों के विकास द्वारा ही सम्भव हो सकती है। वाणिज्य शिक्षा छात्रों के सम्मुख अनेकानेक ठोस तथ्य प्रस्तुत करती है। इन तथ्यों से प्रेरित होकर छात्र उन तथ्यों के सम्बन्ध में चिन्तन तथा मनन करते हैं। इस प्रकार वाणिज्य शिक्षा छात्रों को चिन्तन तथा मनन करने के अनेकानेक अवसर प्रदान करती है। आज आलोचनात्मक चिन्तन की महत्ता को सर्वत्र स्वीकारा गया है। वाणिज्य शिक्षा अपने छात्रों की आलोचनात्मक चिन्तन के लिए व्यापक धरातल प्रस्तुत करती है। इस प्रकार वाणिज्य शिक्षा के द्वारा छात्रों में उचित तर्क, चिन्तन व निर्णय शक्ति का विकास किया जाता है।

(9) अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण का विकास—विश्व में युद्ध के भय को कम करने के लिए, आर्थिक, परस्पर निर्भरता को उपयोगी व व्यावहारिक बनाने के लिए तथा मानव जाति के उत्थान व कल्याण के लिए विश्व के समस्त देशवासियों के हृदय में अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना का विकास करना आवश्यक है। राजनैतिक कारणों के अतिरिक्त आर्थिक कारण भी अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना को आवश्यक बना देते हैं। यातायात के तीव्रगामी व मितव्ययी साधनों ने विश्व को अत्यन्त लघु रूप प्रदान कर दिया है। आज विश्व के देश विशिष्टीकरण के सिद्धान्त के अनुसार उत्पादन करने लगे हैं। जिस देश में किसी एक उत्पादन विशेष की सुविधायें अधिक होती हैं या जो देश किसी एक उत्पादक को कम लागत में तैयार कर सकता है वह देश उसी उत्पादन को अधिक मात्रा में करता है और उसका अन्य देशों को निर्यात कर अपनी आवश्यकता की अन्य वस्तुयें अन्य देशों से आयात करता है। इस प्रकार विश्व के समस्त देश परस्पर अन्तर्निर्भर हो गये हैं। आर्थिक परस्पर अन्तर्निर्भरता ने अन्तर्राष्ट्रीय भावना के महत्व को और अधिक बढ़ा दिया है। आज का युग प्रतिस्पर्धा का युग है अतः विश्व बाजार में अपनी साख स्थापित करने का भी हर देश प्रयत्न करता है, यह भावना व दृष्टिकोण भी अन्तर्राष्ट्रीय भावना को विकसित करता है। वाणिज्य शिक्षा द्वारा राष्ट्रीय वाणिज्य के साथ-साथ अन्तर्राष्ट्रीय वाणिज्य का भी ज्ञान कराया जाता है। वाणिज्य शिक्षा द्वारा राष्ट्रों के पारस्परिक सहयोग के लिए आधार प्रस्तुत किया जाता है तथा परस्पर अन्तर्निर्भरता व विश्व कल्याण की भावना वाणिज्य शिक्षा के द्वारा विकसित कर अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण विकसित करने में उचित धरातल प्रदान किया जाता है।

(10) सेवा भाव, धैर्य, नम्रता व ईमानदारी की भावना का विकास—वाणिज्य शिक्षा द्वारा छात्रों में सेवा व नम्रता के गुणों को बड़े मनोवेग से विकसित किये जाते हैं। व्यापार से सम्बन्ध रखने वाले व्यक्तियों में नम्रता व सेवा के गुण प्रथम आवश्यक शर्त होती है क्योंकि अगर वह सेवा भावी व नम्र नहीं होगा तो अपने व्यापार को आसानी से विकसित नहीं कर पायेगा, क्योंकि वह दूसरों को अपने व्यवसाय क्षेत्र में आकर्षित नहीं कर पायेगा। नम्रता का गुण व्यापारी को साख जमाने में सर्वाधिक सहयोग प्रदान करता है। उसके साथ-साथ व्यापारी को धैर्यवान भी होना चाहिए। कोई ग्राहक कभी अगर अनावश्यक व अनुचित बात भी करे तो उसे धैर्य से सुनने की क्षमता होनी चाहिए। कुशल व्यापारी कभी धैर्य नहीं खोता है, वह हर बात लाभ-हानि मुस्कराते हुए सह जाता है। वाणिज्य शिक्षा छात्रों को ईमानदारी की भी शिक्षा प्रदान करती है। वाणिज्य शिक्षा बतलाती है कि जो व्यापारी अपने व्यवसाय या व्यापार में ईमानदारी रखता है वही अन्ततः लाभ प्राप्त करता है। वास्तव में एक व्यापारी की सफलता का रहस्य उसकी ईमानदारी की भावना में निहित होता है। इस प्रकार वाणिज्य शिक्षा छात्रों में सेवाभाव, धैर्य, नम्रता व ईमानदारी के गुणों को उचित रूप से विकसित करने में सहायता प्रदान करती है।

बहीखाता एवं लेखा विज्ञान शिक्षण के उद्देश्य (Aims of Teaching Book Keeping and Accounting)

(1) वाणिज्य के छात्रों को बहीखाता एवं लेखा विज्ञान बुनियादी सिद्धान्त नियमों को जानने व समझने में सहायता करना।

(2) छात्रों में द्वितीय प्रारूप, रिकार्ड्स व प्रतिवेदन तैयार करने की कुशलता विकसित करना तथा उनका उचित विश्लेषण करने की क्षमता का विकास करना।

(3) छात्रों में स्पष्टवादिता, उत्तरदायित्व, समय की पाबन्दी तथा उचित आदतों का विकास करना व उनमें तार्किक व गणितज्ञ दृष्टिकोण विकसित करना।

(4) नवीन परिस्थितियों में वास्तविक सिद्धान्तों को अपनाने की योग्यता का विकास करना।

1. वाणिज्य के छात्रों को बहीखाता एवं लेखा विज्ञान के बुनियादी सिद्धान्तों व नियमों को जानने व समझने में सहायता करना।

A. छात्रों को बहीखाता एवं लेखा विज्ञान के सामान्य सिद्धान्तों व नियमों के सामान्य अर्थों व उनकी विशेषताओं से परिचित करना जो कि आज के व्यापार जगत में प्रचलित हैं तथा प्रचलित नियमों (Terms) में आवश्यक विभेद करने की क्षमता को विकसित करना। जैसे—

नामपक्ष	Debit
जमापक्ष	Credit
पूँजी	Capital
राजस्व	Revenue
सकल लाभ	Gross Profit
शुद्ध लाभ	Net Profit

B. छात्रों को नियमों, सिद्धान्तों व प्रणालियों में आवश्यक विभेद करने में सहायता प्रदान करना।

C. छात्रों को उन कारणों व तत्वों की खोज में सहायता प्रदान करना जो कि प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से लाभ व धन में बाधक बनते हैं।

D. छात्रों को विभिन्न प्रकार के रिकार्ड्स रखने की युक्तियों व उपयोगी से परिचित कराना जैसे केस बुक, जर्नल, लेजर आदि।

E. पुस्तपालन प्रणालियों के प्रत्येक चरण की उपयोगिता को समझना तथा उनको अग्रिम चरणों से सम्बन्धित करना।

2. छात्रों में द्वितीय प्रारूप, रिकार्ड्स व प्रतिवेदन तैयार करने की कुशलता व उचित विश्लेषण की क्षमता का विकास।

A. विस्तृत विवरण प्रस्तुत करने हेतु वास्तविक लेखा प्रविष्टियों से पुस्तिका तैयार करना। हिसाब व बकाया विवरण हेतु लेजर बुक तैयार करना।

B. जर्नल तैयार करना।

C. पास बुक व केस बुक में अन्तर ज्ञात करना।

D. ठोस लाभ व वास्तविक लाभ का T/B से पता लगाना।

E. एकाउण्ट्स की कमियों का पता लगाने की योग्यता का विकास करना।

F. वर्ष के अन्त में चालू हिसाब खाता बन्द करना व नवीन द्वितीय वर्ष से पुन: प्रारम्भ करना।

G. विभिन्न वित्तीय विवरणों के फार्मों व प्रतिवेदनों को भरने की कुशलता विकसित करना।

H. व्यापारिक पत्रों को व्यवस्थित ढंग से रखना सिखाना।

3. छात्रों में स्पष्टवादिता, उत्तरदायित्व व समय की पाबन्दी आदि उचित आदतों का विकास करना।

A. छात्रों में स्पष्टवादिता, समय की पाबन्दी, निश्चितता व उत्तरदायित्व आदि गुणों का विकास करना।

B. छात्रों को समझाना कि व्यापार की सफलता का रहस्य सेवाभाव व कार्य के उचित ढंग से सम्पादन करने की दक्षता में निहित है।

4. नवीन परिस्थितियों में वास्तविक सिद्धान्तों को अपनाने की योग्यता का विकास करना।

A. छात्रों को बुक कीपिंग के क्षेत्र में आने वाली विभिन्न समस्याओं के समाधान हेतु तत्पर करना।

B. छात्रों को व्यक्तिगत व पारिवारिक हिसाब को व्यवस्थित रखने हेतु तैयार करना।

C. विषयान्तर्गत आने वाले दोषों को जानना व दूर करने में सहायता करना।

वाणिज्य-शिक्षण के अनुदेशनात्मक उद्देश्य (Instructional Objective of Commerce Teaching)

आज का युग शैक्षिक तकनीकी का युग है। शैक्षिक तकनीकी का प्रभाव शिक्षण उद्देश्यों पर भी पड़ा है। इसलिए आज हम शिक्षण उद्देश्यों के स्थान पर अनुदेशक के उद्देश्यों को अधिक महत्व देते हैं। अनुदेशनात्मक उद्देश्यों पर सबसे पूर्व प्रो० बी० एस० ब्लूम ने व्यवस्थित विचार व्यक्त किये तथा संज्ञानात्मक पक्ष के उद्देश्यों की विशिष्टीकरण (Specification) के साथ विस्तृत व्याख्या की। यह व्याख्या सभी शिक्षण विषयों पर समान रूप से लागू होती है। इस व्याख्या के अनुसार वाणिज्य शिक्षण के नीचे लिखे अनुदेशनात्मक उद्देश्य हो सकते हैं—

(1) ज्ञान (Knowledge)—वाणिज्य अनुदेशन का प्रथम उद्देश्य है छात्रों को वाणिज्य से सम्बन्धित विविध तत्वों, सिद्धान्तों, नियमों तथा प्रत्ययों का ज्ञान प्रदान करना। शिक्षक अपने शिक्षण के द्वारा छात्रों को पुस्तपालन, बैंकिंग, बीमा, समय, श्रम बचाने के साधनों, यातायात के साधनों, बाजार आदि से सम्बन्धित तथ्यों का ज्ञान प्रदान कराना है। साधारण पुनर्स्मरण (Simple Recall), पुनर्पहचान (Recognition) तथा पुनर्उत्पादन (Reproduction) इस उद्देश्य के तीन विशिष्टीकरण हैं।

(2) बोध (Understanding)—वाणिज्य अनुदेशन का दूसरा उद्देश्य है छात्रों को वाणिज्य से सम्बन्धित तथ्यों का जो ज्ञान प्राप्त हुआ है, उस ज्ञान का अवबोध कराना। सरल शब्दों में वाणिज्य के विभिन्न तत्वों का ज्ञान प्राप्त होने पर शिक्षक के लिए

आवश्यक है कि प्राप्त ज्ञान में से आवश्यक तत्वों का बोध कराये या उनके सम्बन्ध समझ का विकास करे। यह सत्य है कि व्यक्ति जितना जानता है इस सभी का उ बोध नहीं होता है। ज्ञान की अपेक्षा बोध कम ही होता है किन्तु जिसका व्यक्ति व बोध नहीं होता है उसका ज्ञान उसे अवश्य होता है। बोध होने पर बालक अन्तर करना तुलना करना, वर्गीकरण करना, श्रेणी विभाजन, सारणीयन व्याख्या करना, अनुवा करना तथा बोधवेशन (Extrapolation) आदि करना सीख जाता है। बोधात्मक उद्देश का यही विशिष्टीकरण है।

(3) ज्ञानोपयोग (Application)—वाणिज्य शिक्षण का आगामी अनुदेशनात्मक उद्देश्य छात्रो में ऐसी योग्यताओं का विकास करना है कि वह प्राप्त ज्ञान का बोध करने के बाद उसका वास्तविक परिस्थितियों में प्रयोग कर सके। बालक वाणिज्य से सम्बन्धित उन्हीं तथ्यों, नियमों, सिद्धान्तों आदि का प्रयोग कर मनाता है। जिनका उसे ज्ञान है तथा जिनका उसे बोध है। ज्ञान तथा बोध के अभाव में अनुप्रयोग सम्भव नहीं है। वह अनुदेशन का व्यावहारिक पक्ष है। बालक जितना जानता है उससे कम का उसे बोध होता है और जितना बोध होता है उससे कम का वह अनुप्रयोग कर पाता है।

(4) कौशल (Skill)—कम समय व श्रम के साथ अधिक तथा सुन्दर व शुद्ध उत्पादन कौशल है। वाणिज्य में अनुदेशन का ज्ञान, बोध व अनुप्रयोग के उपरान्त आगामी उद्देश्य है। छात्रों में वाणिज्य सम्बन्धी कौशलों का विकास करना इस उद्देश्य की प्राप्ति में बालक पुस्तपालन के विभिन्न नियमों का प्रयोग करते हुये कुशलता के साथ शुद्ध प्रविष्टियाँ कर सकता है तथा वह बैंक, बीमा, डाकघर आदि से सम्बन्धित कार्य कुशलतापूर्वक कर सकता है।

(5) अभिवृत्ति (Attitude)—वाणिज्य शिक्षक का एक कार्य यह भी है कि वह छात्रों में वाणिज्य के प्रति सकारात्मक अभिवृत्ति का विकास करे। वाणिज्य विषय के प्रति सकारात्मक अभिवृत्ति का विकास करना भी वाणिज्य शिक्षण का एक प्राप्य या अनुदेशात्मक उद्देश्य है। सकारात्मक अभिवृत्ति का विकास होने से विषय में रुचि उत्पन्न होती है, लगन व प्रेरणा विकसित होती है, समस्याओं को समझने तथा उनका समाधान करने की योग्यता का विकास होता है, चिन्तन में वस्तुनिष्ठता आती है, संवेगों पर नियन्त्रण रखने की अलग से वृद्धि होती है तथा दूसरों के विचारों को समझने की योग्यता बढ़ती है। अभिवृद्धि का विकास होने पर छात्र वाणिज्य को अपना प्रिय तथा रोचक विषय मानने लगता है।

(6) सौन्दर्यानुभूति (Application)—प्राप्त ज्ञान को नवीन परिस्थितियों में स्वतन्त्र एवं मौलिक रूप से प्रयुक्त करने की क्षमता ही सौन्दर्यानुभूति का सराहनात्मक प्राप्त उद्देश्य है। वाणिज्य शिक्षण का चरण एवं शीर्ष उद्देश्य है। इस उद्देश्य की प्राप्ति पर छात्र वाणिज्य के विभिन्न सिद्धान्तों, नियमों, प्रत्ययों आदि का स्वतन्त्र एवं मौलिक रूप से नवीन परिस्थितियों में प्रयोग करने लगता है। उसे वाणिज्य के कार्यों में आनन्द की अनुभूति होती है तथा वह वाणिज्य से सम्बन्धित नियमों, सिद्धान्तों व कार्यों की अच्छाइयों की सराहना करने लगता है।

यहाँ पर उल्लेखनीय है कि वाणिज्य के सम्बन्ध में हम जितना ज्ञान रखते हैं, उसमे कम का बोध होता है, उससे कम का ज्ञानोपयोग, उससे कम का कौशल, उससे कम की अभिवृत्तियाँ तथा उससे कम की सौन्दर्यानुभूति होती है किन्तु ज्ञान से श्रेष्ट है बोध, बोध से उत्तम है ज्ञानोपयोग, उससे अधिक उपयोगी है कौशल, कौशल से अधिक श्रेष्ठ है अभिवृत्तियाँ तथा सर्वोत्तम है सौन्दर्यानुभूति। इसे एक शंकु (Cone) के माध्यम से प्रदर्शित कर सकते हैं।

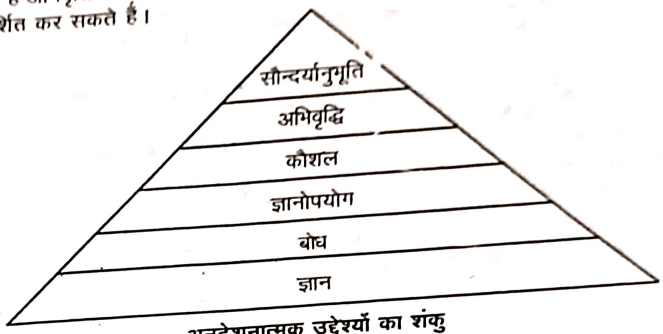

अनुदेशनात्मक उद्देश्यों का शंकु

इसमें ज्ञान आधार है तथा सर्वाधिक है जबकि सौन्दर्यानुभूति शीर्ष पर है, सर्वोत्तम है किन्तु सबसे कम मात्रा में है।

अभ्यास-प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न

1. शिक्षण उद्देश्यों से आप क्या समझते हैं ? उद्देश्य निर्धारण की आवश्यकता पर अपने विचार स्पष्ट कीजिये।
2. वाणिज्य शिक्षण के विभिन्न उद्देश्यों का विस्तार से वर्णन कीजिये।
3. स्पष्ट कीजिये कि स्वतन्त्र भारत में वाणिज्य शिक्षण के क्या उद्देश्य होने चाहिये ? अपने तर्क के पक्ष में समुचित उदाहरण भी दीजिये।
4. बहीखाता तथा लेखा विज्ञान शिक्षण के उद्देश्य बताइये।
5. अनुदेशनात्मक उद्देश्य किन्हें कहते हैं, वाणिज्य शिक्षण के संज्ञान पक्ष के अनुदेशनात्मक उद्देश्यों का वर्णन कीजिये।

लघु उत्तरात्मक प्रश्न

1. अनुदेशनात्मक उद्देश्यों के शंकु का परिचय दीजिये।
2. ज्ञान उद्देश्य के विशिष्टीकरण कौन-कौन से हैं ? उदाहरण देकर स्पष्ट कीजिये।
3. वाणिज्य शिक्षण के सामान्य व विशिष्ट उद्देश्यों में अन्तर कीजिये।

4. उद्देश्यों के निर्धारण तत्वों का उल्लेख कीजिये।
5. शिक्षण के लिए उद्देश्यों का निर्धारण क्यों आवश्यक है ?

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. "उद्देश्य वह बिन्दु अथवा साध्य है, जिसकी दिशा में कार्य को अग्रसर किया जाता तथा जिसके अनुसार किसी क्रिया के माध्यम से कोई पूर्व नियोजित परिवर्तन लाया जाता है।" किसकी परिभाषा है ?
   (अ) एन० टी० सी०　　(ब) एन० सी० ई० आर० टी०
   (स) ड्यूवी　　(द) राबर्ट मैगर
2. जो उद्देश्य सभी पर लागू हों तथा देशकाल से प्रभावित नहीं होते, कौन से उद्देश्य कहलाते हैं ?
   (अ) सामान्य उद्देश्य　　(ब) विशिष्ट उद्देश्य
3. वाणिज्य शिक्षा का एक उद्देश्य ..... है।
4. दो अनुदेशनात्मक उद्देश्यों के नाम लिखिये।

उत्तर—1. (ब) एन० सी० ई० आर० टी०, 2. (अ) सामान्य उद्देश्य, 3. जीविकोपार्जन, 4. (i) ज्ञान, (ii) बोध।

वाणिज्य शिक्षा का पाठ्यक्रम

(SYLLABUS OF COMMERCE EDUCATION)

पाठ्यक्रम का अर्थ

वाणिज्य एक सामाजिक शास्त्र है। सभी सामाजिक शास्त्र उद्देश्यपूर्ण होते हैं। इस कारण वाणिज्य के भी कुछ उद्देश्य हैं। वाणिज्य-शिक्षण का ध्येय इन उद्देश्यों या लक्ष्यों को ही प्राप्त करना है। इन लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए सुनियोजित व्यवस्था की आवश्यकता पड़ती है। यह सुनियोजित व्यवस्था ही पाठ्यक्रम कहलाती है। निश्चित पाठ्यक्रम के अभाव में लक्ष्यों की प्राप्ति असम्भव है। एक प्रकार से पाठ्यक्रम लक्ष्यों को प्राप्त करने का एक साधन (Means) है।

पाठ्यक्रम आंग्ल-भाषा के करीकूलम (Curriculum) शब्द का अनुवाद है। 'करीकूलम' शब्द लैटिन भाषा से आंग्ल-भाषा में आया। लैटिन भाषा में करीकूलम का अर्थ है, 'दौड़ का मैदान' (Race Course)। इस अर्थ से शिक्षा में पाठ्यक्रम का अर्थ हुआ 'शैक्षिक उद्देश्यों' की प्राप्ति करने का साधन, एक मार्ग। हॉर्न (Horne) महोदय ने शिक्षा प्रक्रिया के चार अंगों—शिक्षार्थी, पाठ्यक्रम, शैक्षिक वातावरण तथा शिक्षक का उल्लेख किया है। यदि पाठ्यक्रम को शैक्षिक दौड़ (Educational Race) के मैदान के रूप में लें तो कह सकते हैं कि शिक्षार्थी दौड़ने वाला व्यक्ति है। पाठ्यक्रम वह मार्ग जिसके अनुसार उसे दौड़ना है। शैक्षिक पथ-प्रदर्शक है। वास्तव में 'पाठ्यक्रम कलाकार' (शिक्षक) के हाथ में एक साधन है जिससे वह अपने पदार्थ (शिक्षार्थी) को अपने आदर्श (उद्देश्य) के अनुसार अपने कलागृह (शिक्षालय) में चित्रित करता है।

क्रो तथा क्रो (Crow and Crow) ने पाठ्यक्रम की परिभाषा देते समय लिखा है—"पाठ्यक्रम शिक्षार्थी के समस्त अनुभवों को जो उसे विद्यालय में या विद्यालय से बाहर प्राप्त होते हैं और जो एक ऐसे प्रोग्राम में होते हैं जिसका निर्माण उसके मानसिक, शारीरिक, संवेगात्मक, सामाजिक, आध्यात्मिक तथा नैतिक विकास में सहायता देने हेतु होता है, कहते हैं।"

मुदालियर कमीशन सन् 1952 ने अपनी रिपोर्ट में पाठ्यक्रम की परिभाषा अत्यन्त स्पष्ट तथा व्यापक रूप से की है। लिखा है—"पाठ्यक्रम से तात्पर्य परम्परागत ढंग से विभिन्न विषयों का व्यवस्थित ज्ञान कराना ही नहीं है वरन् यह तो अनुभवों की योग्यता (Totality) है। इस योग्यता को छात्र विद्यालय, कक्षा, पुस्तकालय, प्रयोगशाला,

क्रियालय क्रीडांगन इत्यादि मे चलने वाली अनेक क्रियाओं तथा शिक्षक के साथ स्थापित अनेक अनौपचारिक सम्पर्कों से प्राप्त करता है। इस प्रकार सम्पूर्ण विद्यालय का वातावरण ही पाठ्यक्रम बन जाता है और वह पाठ्यक्रम छात्रो के जीवन के प्रत्येक पहलू को स्पर्श करता है एवं उनके व्यक्तित्व को सन्तुलित करता है।

पाठ्यक्रम के उद्देश्य (Aims of Curriculum)—वाणिज्य के पाठ्यक्रम का उद्देश्य वाणिज्य मे छात्रो को प्रशिक्षण प्रदान करना है। इसके लिए विद्यालय की विभिन्न कक्षाओं के लिए एक ही स्तर का पाठ्यक्रम निर्धारित करना अनुचित एव अमनोवैज्ञानिक है। विद्यालय मे विभिन्न स्तरो के लिए पृथक्-पृथक् पाठ्यक्रम होना अत्यन्त आवश्यक है। इन विभिन्न स्तरो के लिए भी पृथक्-पृथक् पाठ्यक्रम निर्धारित करते समय हमे उन विभिन्न उद्देश्यो को सदैव ध्यान में रखना चाहिए जो हमें प्राप्त करने हैं। एक अच्छा पाठ्यक्रम सदैव इन उद्देश्यो को ध्यान मे लिये रहता है। एक अच्छे पाठ्यक्रम में निम्नांकित उद्देश्य निहित रहते है—

(1) पाठ्यक्रम का उद्देश्य छात्रों का चतुर्मुखी विकास करना होता है।

(2) पाठ्यक्रम का उद्देश्य छात्रो की रुचि, योग्यता तथा क्षमताओं का विकास करना होता है।

(3) पाठ्यक्रम का उद्देश्य धर्म-निरपेक्षता एवं प्रजातन्त्र की भावना का विकास करना होता है।

(4) पाठ्यक्रम का उद्देश्य कतिपय सामाजिक गुणों तथा ईमानदारी, सत्यता, सद्भाव आदि का विकास करना होता है।

(5) पाठ्यक्रम ऐसा होना चाहिए जिसके द्वारा छात्र अपने जीवन के मूल्यो का निर्माण करना स्वयं सीख जाये।

(6) पाठ्यक्रम को छात्रों की अन्तर्निहित शक्तियों का विकास करना चाहिए।

(7) पाठ्यक्रम का उद्देश्य सुनागरिकों का निर्माण करना होना चाहिए।

वाणिज्य का पाठ्यक्रम निर्माण करने के मूलभूत सिद्धान्त

वाणिज्य के पाठ्यक्रम का निर्माण करते समय निम्नांकित सिद्धान्तों को ध्यान मे रखना चाहिए—

(1) प्रेरणा का सिद्धान्त (Principle of Motivation)—पाठ्यक्रम प्रेरणात्मक होना चाहिए। यदि पाठ्यक्रम स्वयं ही छात्रों को कुछ सीखने के लिए प्रेरित नहीं करता है तो वह कभी भी अपने वांछित उद्देश्यों की प्राप्ति नहीं कर सकता है। पाठ्यक्रम उस समय तक छात्रो को प्रेरणा प्रदान नहीं कर सकता है, जब तक वह छात्रों की रुचि, योग्यता एवं क्षमताओं पर आधारित न हो। इसके अतिरिक्त पाठ्यक्रम को मनोवैज्ञानिक भी होना आवश्यक है। ऐसे पाठ्यक्रम की रचना केवल बाल-मनोवैज्ञानिक (Child Psychologist) ही कर सकता है। यदि पाठ्यक्रम इन सिद्धान्तों की अवहेलना करता है तो छात्र पाठ मे कोई रुचि नहीं लेगे। कक्षा में छात्र शिक्षक के भय से शान्त बैठा रहेगा, परन्तु वह कभी भी कक्षा शिक्षण में सक्रिय भाग नहीं लेगा। वह एक श्रोतामात्र ही रह जाएगा। वह कक्षा कार्य से ऊब अनुभव करेगा और इस प्रकार छात्र तथा विद्यालय के मध्य एक गहरी दरार पड जाएगी जो कभी भी पूरी नहीं हो सकती है।

(2) व्यापकता का सिद्धान्त (Principle of Broadness)—पाठ्यक्रम व्यापक होना चाहिए। पाठ्यक्रम पुस्तकों, कक्षा तथा पुस्तकालयों तक ही सीमित नहीं रहना चाहिए। वाणिज्य विषय के ज्ञान का अर्जन करना केवल पुस्तकों तथा कक्षा-शिक्षण तक ही सीमित नहीं रहना चाहिए, जैसा परिभाषा में पहले ही व्यक्त कर दिया गया है कि वाणिज्य विषय का ज्ञान सम्पूर्ण शैक्षणिक वातावरण से अर्जित कराने की व्यवस्था होनी चाहिए।

व्यापकता को हम यहाँ दूसरे दृष्टिकोण से भी विवेचित कर सकते हैं। पाठ्यक्रम संकुचित विचारधाराओं पर कभी भी आधारित नहीं होना चाहिए। पाठ्यक्रम इस प्रकार निर्मित करना चाहिए कि उससे किसी की भावनाओं तथा धर्म पर आघात न लगे एव उसके द्वारा किसी पर कटाक्ष न हो। इस प्रकार के पाठ्यक्रम द्वारा छात्रों का दृष्टिकोण भी व्यापक बनेगा।

(3) क्रिया का सिद्धान्त (Principle of Activity)—पाठ्यक्रम क्रियाप्रधान (Activity Centred) होना चाहिए। बच्चे करके सीखते हैं। 'करके सीखना' (Learning by Doing) आज अपनी श्रेष्ठता प्राप्त कर चुका है। जिस ज्ञान को छात्र हाथ द्वारा क्रिया सम्पादित करके सीखता है, वह ज्ञान अधिक स्थायी तथा प्रभावशाली होता है। इसके अलावा मनोविज्ञान हमें बतलाता है कि बच्चे स्वभावतः ही क्रियाशील होते हैं। यदि बालको की इस क्रियाशीलता को सामाजिक दृष्टिकोण से उपयोगी कार्यों में प्रयोग न किया गया तो हो सकता है, अपनी क्रियाशीलता के कारण अबोध बालक असामाजिक कार्य कर बैठे। यदि पाठ्यक्रम बालकों की सक्रियता को उचित कार्यों में व्यय कराने में सफल हो जाता है तो पाठ्यक्रम सार्थक समझा जाएगा। इस दृष्टिकोण से हम कह सकते हैं कि पाठ्यक्रम में क्रियाशीलता को पूरा-पूरा स्थान मिलना चाहिए।

(4) जीवन से सम्बन्धित होने का सिद्धान्त (Principle of Linking with Life)—छात्रों में किसी विषय के प्रति रुचि उत्पन्न करने के लिए तथा किसी विषय को अधिक आकर्षक बनाने के लिए यह आवश्यक है कि पाठ्यक्रम द्वारा विषय-वस्तु को जीवन से सम्बन्धित कर दिया जाए। छात्र पाठ्यक्रम में उसी समय अधिक रुचि लेंगे जब वह उनके जीवन से सम्बन्धित कर दी जाये, क्योंकि यह एक प्रामाणिक सत्य है कि जो वस्तु हमारे जीवन से सम्बन्धित होती है, उसके बारे में हम अधिक से अधिक जानने की चेष्टा करते हैं तथा उसमें हमारी अधिक रुचि हो जाती है। इस दृष्टिकोण से यदि हम पाठ्यक्रम में ऐसे तथ्य सम्मिलित करते हैं जो छात्रों के जीवन से सम्बन्धित है, तो अच्छा रहेगा। वाणिज्य के पाठ्यक्रम का निर्माण करते समय इस सिद्धान्त को सदैव ध्यान में रखना चाहिए।

(5) उपयोगिता का सिद्धान्त (Principle of Utility)—ऐसा ज्ञान जो हमारे जीवन के लिए उपयोगी नहीं है व्यर्थ होता है। ठीक इसी तरह वह अध्ययन सामग्री जिससे हम कोई लाभ न उठा सके, व्यर्थ होती है। व्यर्थ चीज के लिए परिश्रम करना भी बेकार होता है। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए हम कह सकते हैं कि पाठ्यक्रम ऐसा बनाया जाए जो छात्रों को जीवनोपयोगी ज्ञान प्रदान करे। छात्रों को ऐसा ज्ञान प्राप्त होना चाहिए जिसको वे अपने व्यावहारिक जीवन में लाभकारी रूप से प्रयोग कर सके। इसके अतिरिक्त जब छात्र किसी विषय की उपयोगिता जान लेते हैं तो उसके प्रति उनकी रुचि

एवं प्रेरणा स्वतः ही जागृत हो जाती है। अतः पाठ्यक्रम बनाते समय सदैव ध्यान रखना चाहिए कि पाठ्यक्रम उपयोगी हो।

(6) जनतान्त्रिक सम्बन्धों का सिद्धान्त (Principle of Democratic Concepts)—पाठ्यक्रम प्रजातन्त्र के सिद्धान्त पर आधारित होना चाहिए, क्योंकि वर्तमान युग जनतन्त्र का युग है। जनतन्त्र की सफलता देश के सुनागरिकों पर ही निर्भर है। छात्र ही भावी नागरिक है। अतः पाठ्यक्रम ऐसा बनाना चाहिए जो छात्रों को एक जनतन्त्र देश के सुनागरिकों के लिए आवश्यक गुणों से अवगत कराये और उनमें कुछ आवश्यक सद्गुणों जैसे सहयोग, सहानुभूति, सहिष्णुता, ईमानदारी, समानता और भातृत्व की भावना का विकास करें।

(7) संरक्षणता व हस्तान्तरण का सिद्धान्त (Principle of Preservation and Transmission)—प्रत्येक समाज की अपनी स्वयं की एक संस्कृति होती है। प्रत्येक समाज की अपनी-अपनी परम्परायें, रीति-रिवाज तथा चाल-चलन एवं मान्यतायें होती हैं। इन्ही के कारण समाज का अपना पृथक् अस्तित्व होता है। यदि समाज से समाज की परम्परायें आदि विलीन हो जायें तो समाज भी समाप्त हो जायेगा। इसलिए समाज को अपना अस्तित्व बनाये रखने के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वह अपनी संस्कृति, परम्पराओं तथा मान्यताओं को बनाये रखे। इसके लिए समाज शिक्षा की व्यवस्था कर उसे यह कार्य सौंप देता है। समाज शिक्षा से यह आशा करता है कि वह समाज की संस्कृति व सभ्यता को बनाये रखेगी। यदि शिक्षा ऐसा नहीं कर पाती है तो समाज इस शिक्षा को सहन न करे सकेगा। अतः यह आवश्यक हो जाता है कि शिक्षा स्वयं अपने अस्तित्व के लिए छात्रों को समाज की प्राचीन सभ्यता, संस्कृति व गौरव का पाठ पढ़ाये। पाठ्यक्रम निर्माण करते समय हमें ध्यान रखना चाहिए कि पाठ्यक्रम में सभ्यता व संस्कृति के पाठ की पूरी-पूरी व्यवस्था हो।

(8) समन्वय का सिद्धान्त (Principle of Correlation)—हम अपने इस छोटे से जीवन में अनेक प्रकार के ज्ञान प्राप्त करते हैं और ये ज्ञान एक-दूसरे से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित होते हैं। यह सब शारीरिक एवं मानसिक रचना के कारण होता है। पाठ्यक्रम का निर्माण भी इसी शारीरिक व मानसिक रचना के आधार पर होना चाहिए। पाठ्यक्रम इस प्रकार बनाना चाहिए कि वह विभिन्न ज्ञानों को सम्बन्धित कराने में सहायक हो। इससे ज्ञान सरल, सुगम तथा स्पष्ट हो जायेगा। एक विषय का सीधा सम्पर्क दूसरे विषय से स्थापित करने की चेष्टा पाठ्यक्रम में होनी चाहिए।

इन सिद्धान्तों के अतिरिक्त भी अनेक विद्वानों ने पाठ्यक्रम निर्माण के विभिन्न सिद्धान्तों की विवेचना करते हुए अपने अलग कुछ सिद्धान्तों का उल्लेख किया है, केवल सिद्धान्तों के नाम की संख्या ही बढ़ायी गयी है। इन सिद्धान्तों में चयन का सिद्धान्त, आधुनिकता का सिद्धान्त, विवेचन शक्ति का सिद्धान्त, अवकाश के समय का सदुपयोग का सिद्धान्त आदि प्रमुख हैं।

वाणिज्य के वर्तमान पाठ्यक्रम के दोष

भारत में प्रचलित वाणिज्य के वर्तमान पाठ्यक्रम का विश्लेषण यदि हम उपरोक्त वर्णित के अनुसार करें तो पाठ्यक्रम निर्माण के विभिन्न सिद्धान्तों की पूर्णरूपेण अवहेलना

की गयी है। इस कारण वाणिज्य के वर्तमान पाठ्यक्रम में अनेक दोषों का समावेश हो गया है।

ऐतिहासिक दृष्टिकोण से यदि हम दोषों का अध्ययन करें तो पायेंगे कि ये दोष केवल आधुनिक पाठ्यक्रम में ही व्याप्त हैं, ऐसी बात नहीं है। ये दोष तो वास्तव में तभी से चले आ रहे हैं जब से वर्तमान शिक्षा का प्रारम्भ हुआ। भारत में शिक्षा-सुधार के दृष्टिकोण से गठित प्रायः सभी कमीशनों तथा कमेटियों ने पाठ्यक्रम की तीव्र आलोचनायें की हैं और पाठ्यक्रम के सुधार हेतु सुझाव प्रस्तुत किये हैं, किन्तु बड़े खेद के साथ लिखना पडता है कि इस ओर कोई ठोस कदम अभी तक नहीं उठाये गये हैं। सन् 1952 में मुदालियर कमीशन ने भी पाठ्यक्रम के अनेक दोषों का उल्लेख किया। इन दोषों में से केवल वह दोष नीचे दिये जाते हैं जो वाणिज्य के पाठ्यक्रम पर लागू होते हैं—

(1) वर्तमान-पाठ्यक्रम संकुचित विचारधारा पर आधारित है—पाठ्यक्रम में केवल कक्षा तथा पुस्तक से प्राप्त ज्ञान का ही समावेश किया गया है। समस्त विद्यालय-वातावरण को वाणिज्य में शामिल नहीं किया गया है। दूसरे, वाणिज्य का वर्तमान पाठ्यक्रम हमारे दृष्टिकोण को भी व्यापक बनाने में असफल रहता है। वाणिज्य का अध्ययन करने के बावजूद भी छात्रों का दृष्टिकोण संकुचित ही रहता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि वाणिज्य का वर्तमान पाठ्यक्रम संकुचित विचारधाराओं पर आधारित है।

(2) वर्तमान पाठ्यक्रम अत्यन्त सैद्धान्तिक तथा पुस्तकीय है—मुदालियर कमीशन ने अपनी रिपोर्ट में कहा कि वर्तमान पाठ्यक्रम अत्यन्त ही सैद्धान्तिक है। इसमें वास्तविकता तथा व्यावहारिकता का पूर्ण अभाव है। वर्तमान पाठ्यक्रम हमें वाणिज्य के कतिपय सिद्धान्तों का ज्ञान प्रदान करना ही अपना उद्देश्य समझता है। दूसरे, इससे जो ज्ञान प्राप्त होता है, उसमें व्यावहारिकता भी नहीं होती है। इसके अतिरिक्त पाठ्यक्रम केवल पुस्तकीय ही है। पुस्तकों को काफी महत्व दिया जाता है एवं पुस्तकों को ही ज्ञानार्जन का एकमात्र साधन समझा जाता है। इस प्रकार के ज्ञान को छात्र अपने वास्तविक जीवन में प्रयोग करने में असफल रहता है।

(3) इसमें विषय वस्तु का बाहुल्य (Over-Crowdedness)—वर्तमान पाठ्यक्रम में छात्रों के सम्मुख विभिन्न विधियों से बहुत सी विषय-वस्तु करने की व्यवस्था है। छात्रों के सम्मुख पर्याप्त मात्रा में विषय-वस्तु प्रस्तुत कर दी जाती है, चाहे छात्र उस योग्य है या नहीं। इतनी विषय-वस्तु को छात्र में ग्रहण करने की क्षमता है या नहीं, इस बात को वर्तमान पाठ्यक्रम ध्यान में नहीं रखता है।

(4) इसका निर्माण व्यक्तिगत विभिन्नताओं के नियम पर आधारित नहीं है—वाणिज्य के वर्तमान पाठ्यक्रम का निर्माण करते समय इसके निर्माताओं ने व्यक्तिगत विभिन्नताओं को सिद्धान्त तथा उसके महत्व को ध्यान में नहीं रखा है। पाठ्यक्रम विभिन्न व्यक्तियों की आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं करता और न व्यक्तिगत विभिन्नताओं को ही ध्यान में रखता है। वास्तव में, आवश्यकता इस बात की है कि पाठ्यक्रम को बहुमुखी बनाकर विद्यार्थियों की विभि गवश्यकताओं की पूर्ति की जाये।

(5) पाठ्यक्रम में जीवन के साथ सम्बन्धों का अभाव है—वर्तमान पाठ्यक्रम विद्यालय जीवन को छात्रों के वास्तविक तथा सामाजिक जीवन से पृथक कर दिया क्योकि विद्यालय जीवन एवं पाठ्यक्रम स्वयं भी सामाजिक परिवर्तनो के साथ-साथ स्व को परिवर्तित करने मे असफल रहे है। पाठ्यक्रम मे इस गति से परिवर्तन नही हो र हैं जिस गति से व्यक्तियो के वास्तविक एवं सामाजिक जीवन में परिवर्तन हो रहे है पाठ्यक्रम परिवर्तनो की इस दौड मे पिछड गया है। पाठ्यक्रम नवीन सामाजिक मूल्य एवं आदर्शो को अपनाने मे असफल रहा है। इससे विद्यालय जीवन एवं सामाजि जीवन के मध्य एक बडी दरार पड गयी है। शिक्षा समाज की वास्तविक समस्याओं क समझने तथा उन्हे हल करने मे अपने को असफल पा रही है।

(6) इसमें परीक्षाओं को अत्यधिक महत्त्व दिया गया है—वर्तमान पाठ्यक्रम क एकमात्र उद्देश्य छात्रों को विभिन्न परीक्षाओं हेतु तैयार करना है। परीक्षाओं में उत्तीर्ण होन ही वर्तमान पाठ्यक्रम को पूरा करने का एकमात्र माप है। वास्तविक रूप से हम य पाते हैं कि वर्तमान पाठ्यक्रम ने परीक्षाओं की शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति का एव साधन न रहने देकर, परीक्षाओं को ही साध्य (end) बना दिया है। विद्यालय की समस्त शैक्षणिक प्रक्रियायें परीक्षाओं पर ही केन्द्रित कर दी जाती हैं। इससे शिक्षा के उद्देश तथा आदर्श प्राप्त नहीं हो पाते हैं, क्योंकि ये परीक्षायें शिक्षा के क्षेत्र में सुधार की दृष्टि से लागू की गयी सभी योजनाओं को बेकार कर देती हैं।

(7) वर्तमान पाठ्यक्रम में कोई पूर्व-निर्धारित उद्देश्य नहीं है—वाणिज्य क पाठ्यक्रम ही क्या सम्पूर्ण शिक्षा-व्यवस्था ही उद्देश्यहीन है। वर्तमान शिक्षा का कोई भी उद्देश्य नही है। यदि हम किसी शिक्षाशास्त्री से वर्तमान शिक्षा के उद्देश्य का नाम बताने को कहें तो शायद वह निश्चित रूप से कोई भी उद्देश्य न बता पायेगा। पाठ्यक्रम किन्हीं विशिष्ट उद्देश्यों को ध्यान में रखकर नहीं बनाया गया है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि वाणिज्य का वर्तमान पाठ्यक्रम बिना किसी उद्देश्य के है।

(8) पाठ्यक्रम में समन्वय की सम्भावनाओं का अभाव है—वाणिज्य का वर्तमान पाठ्यक्रम पूर्ण एकांकी है। पाठ्यक्रम में ऐसी सम्भावनायें नहीं रखी गयी हैं जिनके माध्यम से वाणिज्य के अध्ययन के फलस्वरूप प्राप्त ज्ञान का समन्वय अन्य विषयों से प्राप्त ज्ञान से स्थापित किया जा सके। ऐसा प्रायः सभी विषयों के सम्बन्ध में दृष्टिगोचर होता है। समन्वय स्थापित करने के लिए अध्यापक को बहुत ही कम अवसर उपलब्ध होते हैं। फिर पाठ्यक्रम को जो बोझिल स्वरूप है उसमें समन्वय स्थापित करने की दश में कभी भी पूरा नहीं किया जा सकता है।

मुदालियर कमीशन रिपोर्ट में वर्णित इन दोषों के अतिरिक्त भी कुछ अन्य उल्लेखनीय दोष वाणिज्य के वर्तमान पाठ्यक्रम में देखे जाते हैं।

(9) वर्तमान पाठ्यक्रम का निर्माण करते समय रुचि, विविधता तथा प्रेरणा के सिद्धान्तों को ध्यान में नहीं रखा गया है।

(10) पाठ्यक्रम क्रियाप्रधान नहीं है—पाठ्यक्रम छात्रों को कोई भी शारीरिक क्रिया करने के अवसर प्रदान नहीं करता है। इस प्रकार पाठ्यक्रम 'करके सीखना' (Learning by Doing) के महान् सिद्धान्त की अवहेलना करता है।

(11) पाठ्यक्रम जनतन्त्र के सिद्धान्तों के अनुरूप नहीं है—वर्तमान पाठ्यक्रम के ~ गदि वे कुछ भी हैं जनतन्त्रीय ढंग से ... त नहीं किये जाते हैं। साथ ही साथ

पाठ्यक्रम बालकों को आवश्यकताओं का ध्यान नहीं रखता है। बालक की अपनी प्राकृतिक शक्तियों के विकास का पूरा-पूरा अवसर प्रदान नहीं करता है। इसके शिक्षण हेतु प्रजातन्त्रीय शिक्षण-विधियाँ नहीं अपनायी जा सकती है तथा पाठ्यक्रम समाज की आवश्यकताओं को पूरा नही करता है और न छात्रों को सामाजिक समस्याओं के समाधान योग्य ही बनाता है।

शिक्षा-नीति (1986) में वाणिज्य शिक्षा

(COMMERCE-EDUCATION IN EDUCATION POLICY 1986)

भारतीय संविधान में मूलत: शिक्षा को राजस्व सूची में रखा गया था तब शिक्षा की व्यवस्था, प्रबन्ध तथा नियंत्रण पर राज्य सरकारों का अधिकार था। राज्य सरकारें अपनी-अपनी नीतियों के अनुसार शिक्षा की व्यवस्था करती थीं। इस व्यवस्था का सबसे बडा दोष था कि प्रत्येक राज्य में शिक्षा-प्रणाली पृथक्-पृथक् थी। कहीं 10+2+3, कहीं 10+2+2, कही 10+1+3 आदि आदि के रूप में शिक्षा प्रणालियाँ प्रचलित थीं। राजस्थान राज्य मे एक प्रकार से 10+1+3 प्रणाली प्रचलित थी। इस प्रणाली में राजस्थान राज्य में कक्षा VIII से भी वाणिज्य शिक्षा प्रदान करने की व्यवस्था थी। कक्षा VIII में पढने के बाद छात्र कक्षा IX तथा X मे भी वाणिज्य विषय का अध्ययन कर सकता था। केन्द्र सरकार के हस्तक्षेप से तथा शिक्षा-नीति (1986) के लागू होने पर देश के समस्त राज्यों मे शिक्षा की 10+2+3 प्रणाली अपनाई गई। राजस्थान में भी अब शिक्षा की 10+2+3 प्रणाली प्रचलित है।

शिक्षा की 10+2+3 प्रणाली जैसे कि राजस्थान राज्य मे लागू की गई है, वाणिज्य विषय की विधिवत् शिक्षा कक्षा XI से प्रारम्भ होती है। इस प्रकार कक्षा XI तथा XII मे वाणिज्य एक पृथक् एवं स्वतन्त्र रूप से पढाया जाता है। कक्षा XI से नीचे वाणिज्य विषय की सामान्य जानकारी या तो समाजोपयोगी उत्पादन कार्य (54 p.w.) मे की जाती है या फिर सामाजिक अध्ययन (Social Studies) के अन्तर्गत कुछ वाणिज्य विषयक सामग्री की जानकारी देने हेतु सामाजिक अध्ययन की पुस्तकों में वाणिज्य से सम्बन्धित कुछ अध्याय जोडे गये हैं। आध्यात्मिक स्तर (कक्षा IX तथा X) में सामाजिक अध्ययन के दो समूह रखे हैं—(i) इतिहास तथा नागरिकशास्त्र, तथा (ii) अर्थशास्त्र तथा भूगोल। इसी द्वितीय समूह में कुछ सामग्री वाणिज्य से सम्बन्धित हैं। कक्षा VII तथा VIII की सामाजिक अध्ययन विषयों की पुस्तक में बचत, डाकघर, बैंक, बीमा, संचार साधन, यातायात साधन जैसे वाणिज्यिक विषयों की जानकारी दी जाती है।

कक्षा XI तथा XII से ही वाणिज्य शिक्षा की विधिवत् तथा व्यवस्थित शिक्षा प्रारम्भ होती है। यहाँ के छात्र पुस्तपालन तथा व्यापार पद्धति का विस्तृत तथा व्यवस्थित अध्ययन करता है तथा आध्यात्मिक शिक्षा कोई दो प्रश्न-पत्रों के माध्यम से पुस्तपालन तथा व्यापार पद्धति की पृथक्-पृथक् परीक्षा लेता है। इस स्तर पर टंकण (Type writing) विकल्प भी उपलब्ध है।

अभ्यास-प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न

1. पाठ्यक्रम का अर्थ स्पष्ट कीजिये तथा पाठ्यक्रम निर्माण के सिद्धान्तों की चर्चा कीजिये।

2. "भारत मे वाणिज्य-विषय का पाठ्यक्रम दूषित है" इस कथन की सोदाहरण व्याख्
कीजिये।
3. शिक्षा-नीति (1986) में वाणिज्य शिक्षा की स्थिति पर अपने विचार प्रकट कीजिये।

लघु उत्तरात्मक प्रश्न

1. पाठ्यक्रम का अर्थ संक्षेप में लिखिये।
2. पाठ्यक्रम निर्माण के किन्हीं दो सिद्धान्तों की व्याख्या कीजिये।
3. वाणिज्य शिक्षण मे क्रिया के सिद्धान्त के महत्व को स्पष्ट कीजिये।
4. राजस्थान राज्य मे कक्षा XI से नीचे वाणिज्य शिक्षा की व्यवस्था का परिच
दीजिये।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. मुदालियर कमीशन ने अपनी रिपोर्ट में पाठ्यक्रम की परिभाषा अत्यन्त स्पष्ट त
व्यापक रूप से कब दी थी ?
(अ) सन् 1857 (ब) सन् 1975
(स) सन् 1925 (द) सन् 1952
2. संकुचित विचारधाराओं पर कभी भी आधारित नहीं होना चाहिए।
3. वर्तमान पाठ्यक्रम हमारे दृष्टिकोण को.....बनाने में असफल रहता है

उत्तर– 1. (द) सन् (1952), 2. पाठ्यक्रम, 3. व्यापक।

4

वाणिज्य शिक्षण की परम्परागत पद्धतियाँ

(TRADITIONAL METHODS OF COMMERCE TEACHING)

शिक्षण पद्धति के सम्बन्ध में दो विचारधारायें हैं। एक विचारधारा के अनुसार प्रत्येक शिक्षा को विभिन्न शिक्षण-विधियों का विस्तृत ज्ञान होना चाहिए। दूसरी विचारधारा के अनुसार यदि शिक्षक को विषय-वस्तु का पूरा ज्ञान है तो उसे किसी भी शिक्षण पद्धति के जानने तथा प्रयोग करने की आवश्यकता नहीं है। यहाँ प्रथम विचारधारा शिक्षण-पद्धति को अत्यधिक महत्त्व देती है जबकि दूसरी विचारधारा उसकी पूरी तरह उपेक्षा करती है। वास्तविक रूप से देखा जाये तो पाते हैं कि दोनों ही विचारधारायें त्रुटिपूर्ण हैं। अध्यापक को सफल शिक्षण हेतु विषय-वस्तु तथा शिक्षण-पद्धति दोनों का ही पर्याप्त ज्ञान होना चाहिए। दोनों के समन्वय से ही सफल शिक्षण सम्भव है।

If teaching is to reach its highest degree of efficiency, in the evident that teachers must be thoroughly trained in materials instruction in their fields and must also possess a broad understanding of all phases of method—including psychology—as a part of that philosophy of education which is essential to good teaching.—**Bining & Bining,** Teaching the Social Studies in Secondary Schools, p. 46.

अध्यापक को उचित शिक्षण-पद्धतियों का ज्ञान होना अत्यन्त आवश्यक है। शिक्षण-पद्धति के महत्त्व के सम्बन्ध में मुदालियर कमीशन ने अपनी रिपोर्ट में लिखा है : "यहाँ तक सर्वोत्तम पाठ्यक्रम एवं सर्वांगपूर्ण सिलेबस भी मृततुल्य है जब तक कि उसके लिए उचित शिक्षण-पद्धति तथा उचित शिक्षकों की व्यवस्था न हो।"

"Even the best curriculum and the most perfect syllabus remains dead unless quickened into life by the right methods of teaching and the right kind of teachers." —**Secondary Education Report,** p. 46.

श्रीमती एस० के० कोछर (Smt. S. K. Kochhar) ने अपनी पुस्तक मेथड्स एण्ड टेकनीक्स ऑफ टीचिंग में शिक्षण-पद्धतियों के महत्व की अत्यन्त सुन्दर व्याख्या की है। वे लिखती हैं : "जिस प्रकार एक सैनिक को लड़ने के विभिन्न हथियारों का ज्ञान आवश्यक है, उसी प्रकार शिक्षक को भी शिक्षण की विभिन्न पद्धतियों का ज्ञान आवश्यक है। किस समय कौन-सी पद्धति अपनायी जाय, यह उसकी निर्णय-शक्ति पर निर्भर है।"

"A teacher must be fully conversant with the different methods of teaching in the same way as a soldier is to be conversant with the various weapons of fighting. Which method he should use at a particular time depends upon his judgement."

—**S. K. Kochhar** : Methods and Techniques of Teaching, p. 24

इस प्रकार शिक्षा-जगत में शिक्षण-पद्धतियों का बड़ा महत्व है। शिक्षण-पद्धति शिक्षण-कला को सुन्दर तथा सरल बनाती है। शिक्षण पद्धतियों का ज्ञान सभी शिक्षकों को होना आवश्यक है। शिक्षण-पद्धतियाँ शिक्षा के उद्देश्यों तथा मूल्यों से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित हैं और उन्हें प्राप्त करने में सहायक होती हैं।

शिक्षण-पद्धति का शिक्षण-कार्य में महत्वपूर्ण स्थान है किन्तु इसका प्रयोग अध्यापक को बड़ी सावधानी से करना चाहिए। एक ही डण्डे से सभी को हाँकना अनुपयुक्त है ठीक इसी प्रकार एक ही पद्धति से सभी विषय-वस्तु तथा छात्रों की व्यक्तिगत आवश्यकताओं तथा क्षमताओं के अनुसार पद्धतियों को बदलते रहना चाहिए। शिक्षा शिक्षण-पद्धति कोई एक निश्चित तथा स्थिर पहलू पर नहीं होनी चाहिए। शिक्षण-पद्धति को एक गतिशील तथा गत्यात्मक रूप में प्रयोग करना चाहिए।

"Methodology should be conceived as a dynamic function of education and not as a static aspect of the process of teaching."

—**Bining & Bining**, p. 4

इसके साथ ही साथ शिक्षण-पद्धतियों का प्रयोग करते समय अध्यापक को स्व अपनी क्षमताओं एवं योग्यताओं को भी ध्यान में रखना चाहिए। उसे देखना चाहिए कि क्या वास्तव में उसमें इतनी क्षमतायें एवं योग्यतायें हैं कि वह आधुनिक पद्धतियों का प्रयोग कर सकता है। वास्तव में, अध्यापक को चाहिए कि वह किस पद्धति को अप सेवक बनाये, स्वयं पद्धतियों का सेवक न बने। यदि कोई पद्धति विशेष कारणों सफलता प्राप्त नहीं कर पा रही है तो इस प्रकार की पद्धति को त्यागकर अध्यापक अन्य कोई दूसरी उपयुक्त पद्धति अपना लेनी चाहिए। इसके लिए अध्यापक को प्रा सभी शिक्षण-पद्धतियों का ज्ञान होना आवश्यक है।

"The successful teacher is he who is a familiar with all the metho and who then, with his aims clearly in view, selects the methods that w best aid him in attaining them."

—**Bining & Bining**, p. 6

फिर, इस ज्ञान से उत्तम पद्धति अपनानी चाहिए।

उत्तम पद्धतियों की विशेषतायें (Characteristics of Good Methods)

शिक्षण-कला में प्रयोग की जाने वाली उत्तम पद्धतियों में निम्नांकित विशेषत होती हैं–

(i) वही उत्तम पद्धति है जो पूर्व-निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायक हो।

(ii) पद्धति सुनिश्चित एवं प्रयोग करने योग्य हो।

(iii) उत्तम पद्धति कलात्मक (Artistic) होती है। अध्यापक को यह वांछित अवांछित का ज्ञान कराती है।

"A good method must be artistic. The teacher should have a su sense of the relevant and the irrelevant. As artist, the teacher must be awa of prop n and perspective."

—**Wesley & Wronsk**

(iv) उत्तम पद्धति व्यक्तिगत होती है।

(v) उत्तम पद्धति छात्रों में वांछित परिवर्तन लाती है एवं उनमें अच्छी आदतों का निर्माण करती है।

(vi) पद्धति ऐसी हो जो छात्रों की विषय-वस्तु के प्रति प्रेरित करें।

(vii) पद्धति ऐसी हो जो छात्रों की शिक्षा का सक्रिय सदस्य बनाये। पद्धति में आवश्यकीय स्थलों पर छात्रों द्वारा सम्पादित करने के लिए पर्याप्त क्रियाओं का होना आवश्यक है।

(viii) पद्धति ऐसी हो जो छात्रों को स्वाध्याय हेतु प्रेरित करे।

(ix) उत्तम पद्धति छात्रों की तर्क, निर्णय तथा विश्लेषण-शक्ति का विकास करती है तथा व्यक्तिगत विभिन्नताओं को पूर्ण मान्यता प्रदान करती है।

पद्धतियों के प्रकार (Types of Methods)

वेस्ले (Wesley) तथा रॉन्स्की (Wronskey) ने निम्नांकित पद्धतियों का उल्लेख किया है :

Method	**Points of Emphasis**
Topical	Synthesized Content
Unit	Understanding of Significant Unit Contents
Text-Book	Classification and Drill
Question and Answer	Authoritative Presentation
Lecture	Differentiated Achievement
Contract	Differentiated Assignment
Block	Achievement Through Equipment
Laboratory	Experience in Solving Problem
Problem	Experimental Learning
Project	Facilitation of Learning
Directed Study	Social Co-operation
Socialised	Pupil Growth
Developmental	Development of Critical Faculties
Source	

वाणिज्य-शिक्षण के लिए उपरोक्त सभी पद्धतियाँ समान रूप से महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। प्रस्तुत पुस्तक में वाणिज्य-शिक्षण में प्रयोग की जाने वाली केवल महत्त्वपूर्ण पद्धतियों का अध्ययन किया गया है। वाणिज्य शिक्षण में प्रायः निम्नांकित पद्धतियों का प्रयोग किया जाता है :

1. भाषण-पद्धति (Lecture Method)
2. पाठ्य-पुस्तक-पद्धति (Text-Book Method)
3. प्रयोगशाला-पद्धति (Laboratory Method)
4. योजना-पद्धति (Project Method)
5. समस्या-पद्धति (Problem Method)
6. विश्लेषणात्मक-पद्धति (Analytic and Synthetic Method)

7. समाजीकृत अभिव्यक्ति-पद्धति (Socialised Recitation Method)
8. निरीक्षित अध्ययन-पद्धति (Supervise Study Method)
9. वादविवाद-पद्धति (Discussion Method)
10. इकाई-पद्धति (Unit Method)

इन पद्धतियों में प्रथम दो पद्धतियाँ—भाषण-पद्धति और पाठ्यपुस्तक-पद्धति परम्परागत पद्धति (Traditional Method) के नाम से पुकारा जाता है और अ पद्धतियों को आधुनिक पद्धतियाँ (Modern Method)। प्रस्तुत अध्याय में हम के परम्परागत पद्धतियों का ही अध्ययन करेंगे।

1. भाषण-पद्धति
(LECTURE METHOD)

शिक्षा-जगत में भाषण-पद्धति अत्यन्त खुले रूप में प्रयोग की जाती है। उ स्तरीय कक्षाओं में तो न केवल भारत में वरन् विश्व के समस्त विकसित देशों में इ पद्धति का ही प्रयोग किया जाता है। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से यदि हम देखें तो पाते कि भाषण-पद्धति अत्यन्त पुरानी है। भारत में जब आश्रम-प्रणाली प्रचलित थी, तब गु अपने प्रवचनों द्वारा छात्रों को विषय-वस्तु सुना-सुनाकर कंठस्थ कराते थे। वास्तवि रूप से यह पद्धति भी भाषण-पद्धति का एक रूप थी। आज के भाषणों एवं तब भाषणों में अन्तर केवल इतना है कि तब भाषण व्यक्तिगत शिक्षण (Individualis Instructions) पर आधारित थे। आज भाषण-पद्धति कक्षा-शिक्षण (Class Instructio पर आधारित है। यूरोप में इस पद्धति का प्रयोग आधुनिक प्रकार के विश्वविद्यालयों मध्य युग में प्रारम्भ हुआ। जर्मनी के विश्वविद्यालयों में भी इस पद्धति का प्रयोग मध्य यु में ही शुरू हुआ। यूरोपीय देशों में इस पद्धति का काफी प्रसार एवं प्रचार हुआ। भारत किसी प्रणाली से जब शिक्षा प्रारम्भ हुई, तभी से भाषण-पद्धति का श्रीगणेश भी हुआ अ इस पद्धति का आज भी सर्वाधिक प्रयोग किया जा रहा है। इसके विपरीत अमेरिका विभिन्न संस्थानों ने इस पद्धति की तीव्र आलोचना की एवं उच्चतर माध्यमिक स्तर प इस पद्धति का प्रयोग अत्यन्त घातक बतलाया, किन्तु अभी भी यह पद्धति अमेरिका उच्च स्तर पर प्रयोग की जाती है। जर्मनी, फ्रान्स तथा इंग्लैण्ड में इस पद्धति के सुध हेतु अनेक प्रयोग किये गये और इनके आधार पर इसे सर्वगुणसम्पन्न बनाने की पर्या मात्रा में सफल चेष्टा की गयी। इन देशों में अभी भी उच्च स्तर तथा माध्यमिक स्तर प इसी पद्धति का प्रयोग किया जाता है। इसका प्रमुख कारण यह है कि इसका प्रयो कक्षा-शिक्षण में सफलतापूर्वक किया जा सकता है।

"It is the only practical procedure that can be followed in larg classes; and this, no doubt, is the chief reason why it is so widely used the present time." —**Bining & Bining**, p. 6

अमेरिका में ऐसा सम्भव नहीं है, क्योंकि वहाँ की परिस्थितियाँ यूरोपीय देशों मित्र हैं। जहाँ तक भारत का प्रश्न है, कुछ शैक्षिक तथा आर्थिक परिस्थितियों के कार भारत को उच्च स्तर एवं माध्यमिक स्तर पर भी इस पद्धति का प्रयोग करना पड रहा और जिस अवस्था में भाषण-पद्धति का प्रयोग करना पड रहा है, वह भी अत्यन्त दयनी है निकट भविष्य में इसमें अभी कोई भी सु पने की आशा नहीं है। फिर भी य

अध्यापक चाहें तो अपने स्वयं के प्रयत्न से इस दिशा में पर्याप्त सुधार कर सकते हैं। इसके लिए उन्हें कुछ विशेष बातों को ध्यान में रखना होगा।

भाषण-पद्धति का प्रयोग कब किया जाये ? (When to Use the Lecture Method ?)

वाणिज्य-अध्यापक को भाषण-पद्धति का प्रयोग निम्नांकित कार्यों हेतु कर लेना चाहिए :

(1) संक्षिप्तीकरण हेतु (To Summarize)—कुछ छात्र विषय-वस्तु की व्यापकता को देखकर घबरा जाते हैं। वे इतनी विशाल विषय-वस्तु के जाल से निकल सकने में अपने को असफल पाते हैं। इस हालत में वे अपनी विशाल विषय-वस्तु को पढ़ने की भी इच्छा प्रकट नहीं करते हैं। अतः यह आवश्यक है कि इतनी विशाल विषय-वस्तु को किसी ऐसी विधि से प्रस्तुत किया जाये कि सम्पूर्ण विषय-वस्तु एक छोटे से रूप में छात्रों के सम्मुख उपस्थित हो जाये। यह कार्य भाषण-विधि द्वारा सरलतापूर्वक सम्पन्न किया जा सकता है। इसके अलावा भाषण के द्वारा छात्रों के सम्मुख विशाल विषय-वस्तु संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत करके छात्रों को विषय-वस्तु का एक मोटा सा ज्ञान दिया जा सकता है। इससे छात्र जब पुस्तकें पढ़ते हैं तो उनका अध्ययन अधिक अर्थपूर्ण हो जाता है। अतः भाषण पद्धति का प्रयोग विशाल विषय-वस्तु का संक्षिप्तीकरण करने हेतु किया जाना चाहिए।

(2) प्रेरणा प्रदान करने हेतु (To Motivate)—किसी विषय के पाठ या इकाई को प्रस्तुत करने से पूर्व भाषण-पद्धति द्वारा उसे नये विषय, पाठ या इकाई के प्रमुख बिन्दुओं (Points) का ज्ञान कराकर छात्रों को उस विषय, पाठ या इकाई से सीखने हेतु प्रेरित किया जा सकता है। इससे छात्रों को जब विषय-वस्तु प्रस्तुत की जायेगी तो उन्हें समझने में भी सुविधा होगी।

(3) समय बचाने हेतु (To Save Time)—पाठ्य-पुस्तक पढ़ने तथा समझने में समय लगता है। इसी प्रकार शिक्षण की आधुनिक पद्धतियाँ भी अधिक समय चाहती हैं। इससे छात्रों को कभी-कभी समय बचाने की आवश्यकता पड़ जाती है। भाषण-पद्धति के द्वारा छात्रों का समय सरलता से बचाया जा सकता है। भाषण द्वारा थोड़े से समय में पर्याप्त विषय-वस्तु प्रस्तुत की जा सकती है। अतः भाषण का प्रयोग छात्रों का समय बचाने हेतु भी किया जा सकता है।

(4) स्पष्ट करने हेतु (To Clarify)—भाषण-पद्धति का प्रयोग विषय के तकनीकी शब्द, सम्बोध, प्रत्यय तथा सिद्धान्तों को स्पष्ट करने के लिए भी किया जा सकता है। तकनीकी शब्दों, सम्बन्धों आदि की व्याख्या केवल भाषण-पद्धति द्वारा ही सम्भव है। वाणिज्य विषय में अनेक स्थलों पर तकनीकी शब्द सम्बन्ध तथा सिद्धान्त आते हैं। उनका स्पष्टीकरण सरल तथा स्पष्ट शब्दों में करना आवश्यक है। अतः वहाँ भाषण-पद्धति अपना लेनी चाहिए।

(5) गृह-कार्य देने हेतु (To Give Assignment)—"आज आपने जो कुछ कक्षा में पढ़ा है, उस पर एक लेख लिखकर लाइए।" इस प्रकार का गृह-कार्य देना अत्यन्त अमनोवैज्ञानिक है। वास्तव में, जो कुछ भी गृह-कार्य दिया जाये उसकी उपयोगिता,

वर्तमान विषय-वस्तु से उसका सम्बन्ध, किस प्रकार उसे किया जाये आदि पर ए छोटा-सा भाषण दे देना अच्छा रहता है। अध्यापक को गृह-कार्य देते समय भाषण प्रयोग कर लेना चाहिए।

(6) अतिरिक्त विषय-वस्तु प्रस्तुत करने हेतु (To Present Additional Material) कभी-कभी पुस्तकों में किसी विषय से सम्बन्धित विषय-वस्तु अत्यन्त संक्षिप्त, अपर्याप्त गलत होती है। छात्रों के स्तर को देखते हुए अध्यापक को अतिरिक्त विषय-वस्तु दे आवश्यक हो जाती है। अध्यापक भाषण-पद्धति द्वारा छात्रों को अतिरिक्त विषय-वस्तु प्रदा कर सकता है।

इस प्रकार भाषण-पद्धति का प्रयोग अध्यापक अनेक स्थलों पर सफलतापूर्वक क सकता है।

भाषण-पद्धति के गुण (Merits of Lecture Method)

भाषण-पद्धति में निम्नांकित गुण हैं :

(1) भाषण-पद्धति व्यक्तिगत शिक्षण (Individualised Instructions) पर आधारि है। पुस्तकों में छपे हुए अक्षर कुछ कह नहीं सकते हैं। वे न हमारी कमजोरियों को समझते हैं और न व्यक्तिगत विभिन्नताओं पर ही ध्यान देते हैं, किन्तु भाषण-पद्धति शिक्षक तथा छात्र आमने-सामने (Face to Face) बैठकर ज्ञान का आदान-प्रदान करत हैं। इस आदान-प्रदान में वाद-विवाद, बातचीत, तर्क तथा आलोचनाओं के माध्यम से विषय-वस्तु को यथासम्भव स्पष्ट बनाया जा सकता है, छात्रों की कठिनाइयाँ मालूम की जा सकती हैं तथा व्यक्तिगत विभिन्नताओं का पूरा-पूरा ध्यान रखा जा सकता है।

(2) भाषण-पद्धति छात्रों में तर्क-शक्ति का विकास करती है। भाषणकर्ता से छात्र तर्क करते हैं, उसके द्वारा प्रस्तुत सिद्धान्तों का विश्लेषण तथा विवेचन करते हैं और वाद-विवाद के द्वारा अपने संशयों को दूर करते हैं। इस प्रकार उनकी तर्क-शक्ति का विकास होता है।

(3) इस पद्धति में विषय-वस्तु को अधिकतम रूप से स्पष्ट किया जा सकता है। पाठ्य-वस्तु में अनेक ऐसे स्थल आते हैं जो अत्यन्त दुरूह तथा जटिल होते हैं। सामान्य रूप से वे छात्रों की समझ में नहीं आते हैं। एक बार के पढ़ाने से विषय-वस्तु अस्पष्ट रह जाती है। भाषण-पद्धति के द्वारा अस्पष्ट विषय को उस समय तक बार-बार दुहराया जा सकता है तथा दूसरे शब्दों में व्यक्त किया जा सकता है, जब तक कि वह छात्रों को स्पष्ट न हो जाये।

(4) भाषण-पद्धति के माध्यम से यदि शिक्षण-कार्य सम्पादित किया जाये तो इससे समय तथा परिश्रम दोनों ही की बचत होती है। भाषण द्वारा विशाल विषय वस्तु को संक्षिप्त में थोड़े समय के भीतर ही प्रस्तुत किया जा सकता है। पाठ्य-पुस्तक में छात्रों को महत्वपूर्ण तथा अमहत्वपूर्ण दोनों ही प्रकार की विषय-सामग्री को पढ़ने में अपना समय तथा श्रम खराब करना पड़ता है। भाषण के द्वारा केवल महत्वपूर्ण विषय-सामग्री को प्रस्तुत करके छात्रों का समय तथा श्रम दोनों ही की बचत की जा सकती है।

(5) अच्छी तरह से तैयार किया हुआ तथा भली प्रकार से दिया गया भाषण छात्रों में रुचि पैदा करता है, छात्रों को विषय-वस्तु की प्रशंसा करने के लिए बाध्य करता है तथा छात्रों को विषय के म[illegible] का ज्ञान कराता है।

(6) नवीन विषय, पाठ तथा इकाई की प्रस्तावना तैयार करने के लिए भाषण-पद्धति सर्वोत्तम है।

(7) भाषण द्वारा अध्यापक विषयवस्तु को अपनी व्याख्या, हाव-भाव, भाषा, उच्चारण आदि के द्वारा स्पष्ट कर सकता है, महत्वपूर्ण बिन्दुओं को समझा सकता है तथा छात्रों का ध्यान अपने भाषणों की तरफ आकर्षित कर सकता है।

(8) भाषण-पद्धति छात्रों के उच्चारण का सुधार करती है। अध्यापक जैसा उच्चारण करेगा, अनुकरण के माध्यम से छात्र भी वैसा ही उच्चारण करने के प्रयत्न करेंगे और अपना उच्चारण सुधारेंगे।

(9) इसमें कुछ सीमा तक छात्र तथा अध्यापक दोनों ही सक्रिय रहते हैं। अध्यापक छात्रों से प्रश्न पूछते हैं तथा छात्र अध्यापक के सम्मुख समस्यायें प्रस्तुत करते हैं।

(10) अध्यापक अपने भाषणों की योजना मनोवैज्ञानिक विधि से निर्मित करता है, जबकि पाठ्य-पुस्तकें तार्किक आधार पर होती हैं। इस प्रकार भाषण पाठ्य-पुस्तकों से अच्छे होते हैं।

भाषण-पद्धति के दोष (Demerits of Lecture Method)

(1) अपरिपक्व भाषणकर्ता भाषण देते समय छात्रों को कक्षा में केवल श्रोतामात्र बना देता है। ऐसा भाषणकर्ता भाषण देता रहता है और छात्र बैठे-बैठे निर्जीव मूर्तियों के समान सुनते रहते हैं। वे कक्षा-शिक्षण में कोई रुचि नहीं ले सकते हैं।

(2) भाषण-पद्धति विषय के सैद्धान्तिक ज्ञान पर अधिक बल देती है। इसमें ज्ञान के व्यावहारिक पहलू को महत्व नहीं दिया जाता है। 'क्रिया' को यह पद्धति कोई भी स्थान प्रदान नहीं करती है। यह पद्धति 'करके सीखने' की पूर्ण अवहेलना करती है।

(3) शैक्षणिक दृष्टिकोण से यह पद्धति एकपक्षीय (One Sided) है। छात्र को इतना अधिक कार्य नहीं करना पड़ता जितना अध्यापक को। अध्यापक को भारत में साधारणतया प्रतिदिन करीब-करीब छह भाषण देने पड़ते हैं। अध्यापक को छह भाषणों को प्रतिदिन तैयार करना बड़ा मुश्किल पड जाता है।

(4) भाषण पद्धति द्वारा ग्रहण किया गया ज्ञान अधिक स्थायी नहीं होता है, क्योंकि इस प्रकार के ज्ञान का क्रिया से कोई सम्बन्ध नहीं होता है।

(5) छात्रों का अवधान-विस्तार (Attention Span) इतना अधिक नहीं होता है कि 40-50 मिनट तक एक भाषण को अवधान के साथ सुन सकें।

(6) वास्तविक अध्ययन करना एक बात है और पाठ्यक्रम समाप्त करना दूसरी बात है। भाषण पद्धति से पाठ्यक्रम तो शीघ्र ही समाप्त किया जा सकता है, किन्तु इस पद्धति से वास्तविक शिक्षण नहीं हो पाता है।

(7) इस पद्धति में छात्रों को मौलिक चिन्तन करने का अवसर नहीं प्राप्त होता है। अध्यापक जो कुछ भी विषय-वस्तु प्रस्तुत कर देता है, उसी से छात्र सन्तोष करने लगते हैं। स्वाध्याय की आदत का भी छात्र विकास नहीं कर पाते हैं।

(8) भाषण पद्धति की सफलता अध्यापक की भाषण-शक्ति पर निर्भर है। यदि अध्यापक कुशल भाषणकर्त्ता नहीं है तो वह कभी भी सफलतापूर्वक नहीं पढ़ा सकता है।

(9) निम्नस्तरीय कक्षाओं मे यह प्रणाली सफलतापूर्वक कार्य नहीं करती है। इस पद्धति का प्रयोग उच्च स्तर पर ही किया जा सकता है।

(10) इससे शिक्षण-क्रिया अत्यन्त नीरस बन जाती है।

भाषण पद्धति प्रयोग करने हेतु सुझाव (Suggestions for Using the Lecture Method)

वाणिज्य-शिक्षण में भाषण-पद्धति का प्रयोग करते समय अध्यापक को निम्नांकित तथ्यों को ध्यान में रखना चाहिए :

(1) भाषण देने से पूर्व विषय-वस्तु को सुनियोजित कर लिया जाये। जब तक विषय-वस्तु योजनाबद्ध नहीं की जाती है, भाषण कभी भी सफल नहीं हो सकता है। योजनाबद्धता के अतिरिक्त भाषणकर्ता को विषय-वस्तु का पूरा-पूरा ज्ञान होना चाहिए। अध्यापक में कक्षा मे पूछे जाने वाले सभी प्रकार के प्रश्नों का सन्तोषजनक उत्तर प्रदान करने की क्षमता होनी चाहिए।

(2) जहाँ तक हो सके, योग्यतम अध्यापकों की व्यवस्था करनी चाहिए। अध्यापकों को कुशल भाषणकर्ता होना आवश्यक है। अध्यापक ऐसे हों जो विषय के अनुसार अपना उच्चारण, अपना हावभाव तथा चेहरा बदल सकें।

(3) भाषण देने से पूर्व भाषण की रूपरेखा (Synopsis) तैयार कर लेनी चाहिए। इससे अध्यापक को मुख्य-मुख्य बिन्दु याद रखने में सुविधा होगी।

(4) भाषा का विशेष ध्यान रखना चाहिए। भाषा न तो इतनी उच्च कोटि की ही हो कि छात्र उसे समझ ही न पाये और न इतनी रसीली तथा अलंकृत ही हो कि भाषा की रचना विषय-वस्तु के मुख्य बिन्दुओं को ही दबा दे।

(5) स्वतन्त्रतापूर्वक बातचीत के रूप में भाषण देने की चेष्टा करनी चाहिए।

(6) इस पद्धति का प्रयोग विशेष रूप से भूमिका तथा प्रस्तावना निर्माण हेतु करना चाहिए।

(7) भाषण देते समय अध्यापक को छात्रों की भावमुद्रा को भी देखते जाना चाहिए, क्योंकि छात्रों की भावमुद्रा अध्यापक को बतला सकती है कि क्या छात्र उसके भाषण को समझ रहे हैं।

(8) शान्त भाव तथा धीमी गति से बोलना चाहिए। बीच-बीच में थोड़ी-सी देर के लिए रुक भी जाना चाहिए।

(9) अध्यापक को अपनी भाषा, शैली, उच्चारण तथा हाव-भाव का विशेष ध्यान रखना चाहिए।

(10) बीच-बीच में प्रश्न अवश्य पूछते रहना चाहिए। इससे छात्र भाषण के प्रति सजग रहेंगे और ध्यानपूर्वक सुनेंगे।

(11) भाषण में गम्भीरता नहीं होनी चाहिए। पाठ नीरस न हो।

(12) आवश्यक स्थानों पर उदाहरणों, दृष्टान्तों, कहानियों आदि का सहारा ले लेना चाहिए।

(13) भाषण पद्धति में परीक्षा को भी उपयुक्त स्थान प्रदान करना आवश्यक है।

(14) भाषण देते समय छात्रों के सभी स्तरों का पूरा-पूरा ध्यान रखा जाना चाहिए।

2. पाठ्य-पुस्तक पद्धति
(TEXT-BOOK METHOD)

विभिन्न शिक्षण पद्धतियों में भाषण पद्धति एवं पाठ्य-पुस्तक पद्धति शिक्षण की परम्परागत पद्धतियाँ कहलाती हैं। भाषण पद्धति का हमने ऊपर विस्तारपूर्वक अध्ययन किया। अब हम पाठ्य-पुस्तक पद्धति का अध्ययन करेंगे। अध्ययन एवं अध्यापन की यह सरल पद्धति है। इसी कारण अधिकांश उच्चतर माध्यमिक तथा उच्च माध्यमिक विद्यालयों में यह पद्धति अपनायी जाती है। जहाँ तक पाठ्य-पुस्तक पद्धति का सम्बन्ध है, हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि पाठ्य-पुस्तक-अध्यापन तथा पाठ्य-पुस्तक पद्धति द्वारा अध्यापन में पर्याप्त अन्तर है। पाठ्य-पुस्तक का अध्ययन विभिन्न शिक्षण पद्धतियों को सफल बनाने हेतु किया जाता है, जबकि पाठ्य-पुस्तक पद्धति द्वारा अध्ययन एक पूर्व-निर्धारित दिशा में किया जाता है। इस सम्बन्ध में पाठ्य-पुस्तक पद्धति का स्वरूप स्पष्ट करते हुए **प्रो० वेस्ले** (Prof. Wesly) ने लिखा है : "पाठ्य-पुस्तक पद्धति ज्ञानार्जन की वह पद्धति है जिसका निकटतम उद्देश्य पाठ्य-पुस्तक को पूर्व-ज्ञान प्राप्त करना होता है।"

".....the text-book method may be defined as that teaching procedure in which an understanding of the main body of information in the text-book is the immediate objective. This does not imply an unworthy or a short-sighted purpose, but it does mean that such a procedure revolves around the text-book, just as another procedure might revolve around the laboratory or the problem."

—Teaching Social Studies in High Schools, p. 359.

पाठ्य-पुस्तक पद्धति का कमजोर तथा परिश्रमी दोनों ही प्रकार के छात्र भली प्रकार से प्रयोग कर सकते हैं। पाठ्य-पुस्तक का बड़े स्तर पर प्रयोग होता है, अतः यह आवश्यक है कि पाठ्य-पुस्तक का प्रयोग बड़ी सावधानी से किया जाये, उद्देश्यों को सदैव ध्यान में रखा जाये और पाठ्य-पुस्तक के अध्यापक के निर्देशन में ही इसका उपयोग किया जाये। अध्यापक का उद्देश्य पाठ्य-पुस्तक से अधिकतम लाभ उठाना होना चाहिए। इसके लिए हम पाठ्य-पुस्तक का चार प्रकार से उपयोग कर सकते हैं—

(1) पाठ्य-पुस्तक का सबसे पहला प्रयोग करने का ढंग पाठ्य-पुस्तक को अक्षरशः छात्रों को रटवाना है। छात्रों के अध्ययन हेतु एक पाठ्य-पुस्तक निर्धारित कर दी जाती है और छात्र उसे अक्षरशः रटते हैं। जो छात्र पाठ्य-पुस्तक के जितने अधिक पन्ने रटने में सफल होता है, वह उतना ही अधिक बुद्धिमान माना जाता है। इस प्रणाली को The Memorter System नाम से पुकारा जाता है। वर्तमान में इस प्रणाली का पूर्णरूपेण बहिष्कार किया जा चुका है।

(2) दूसरी प्रणाली को हम The Recitation Testing System कहते हैं। इस प्रणाली के अनुसार अध्यापक छात्रों को पाठ्य-पुस्तक के कुछ पन्ने घर पर पढने तथा उनके सार को याद करके आने को कहता है। दूसरे दिन अध्यापक पहले दिन के दिये गये कार्य से सम्बन्धित प्रश्न पूछता है। वास्तव में, यह प्रणाली प्रथम प्रणाली का ही सुधरा हुआ रूप है। यह प्रणाली प्रथम प्रणाली के अनेक दोषों को दूर करती है। फिर भी इसमें कुछ दोष पाये जाते हैं। यह सम्भव नहीं है कि बड़ी कक्षाओं में सभी छात्रों से प्रश्न

पूछे जा सकें। दूसरे, यह प्रणाली रटने पर अधिक बल देती है, विषय-वस्तु के रा
पर नहीं।

(3) दूसरी प्रणाली का भी एक और सुधारा हुआ रूप है, जिसे हम The Pu
Teacher Text-Book System कहते हैं। इसमें अध्यापक तथा छात्र दोनों ही साथ-सा
पाठ्य-पुस्तक का अध्ययन करते हैं। पहले से ही इसके लिए कोई तैयारी नहीं की जा
है। पाठ्य-पुस्तक खोलकर अध्यापक विषय-वस्तु को छात्रों को समझाता जाता है, छ
ी पुस्तकों का मौन वाचन करते हैं तथा अन्त में अध्यापक प्रश्न पूछता है। यह प्रणा
स्वतन्त्र अध्ययन की आदत का निर्माण नहीं करती है।

(4) पाठ्य-पुस्तक का अध्ययन करने की अन्तिम प्रणाली है The Topic
Recitation System। इस प्रणाली के अन्तर्गत पाठ को कई उप-भागों (Topics)
विभाजित कर दिया जाता है। छात्र प्रत्येक उप-भाग का पूर्णतया अध्ययन करते हैं औ
छात्रों से यह आशा की जाती है कि वे किसी भी उप-भाग से सम्बन्धित प्रश्न का उत्त
दे सकेंगे। इस प्रणाली में पाठों को उप-भागों में विभाजित करने तथा गृह-कार्य देने
विशेष सावधानी रखने की आवश्यकता पड़ती है।

पाठ्य-पुस्तक के प्रयोग (The Use of Text-Book)

पाठ्य-पुस्तक के प्रयोग के सम्बन्ध में भी दो विचारधारायें प्रचलित हैं। ए
विचारधारा के अनुसार कक्षा में एक ही पाठ्य-पुस्तक होनी चाहिए, जबकि दूस
विचारधारा के अनुसार कक्षा में कई पाठ्य-पुस्तकें होनी चाहिए। नीचे हम दो
विचारधाराओं का पृथक्-पृथक् अध्ययन करेंगे :

(1) एक पाठ्य-पुस्तक पद्धति (The Single Text-Book Method)—इस पद्धति
के अनुसार, जैसा इसके नाम से ही स्पष्ट है, छात्रों को पढ़ने के लिए एक ह
पाठ्य-पुस्तक निर्धारित की जाती है। इस प्रणाली के अनुसार पाठ्य-पुस्तक निर्धारि
करते समय अत्यन्त सावधानी रखनी चाहिए। किस प्रकार की पाठ्य-पुस्तक निर्धारि
की जाय ? अच्छी पाठ्य-पुस्तक में किन-किन गुणों का होना आवश्यक है ?

एक पाठ्य-पुस्तक पद्धति में कुछ गम्भीर दोष हैं। सर्वप्रथम, इस पद्धति के
अन्तर्गत अध्यापन कराने में छात्रों को मुद्रित (Printed) शब्दों में आस्था बढ़ जाती है
छपी हुई विषय-वस्तु पर छात्रों को अटूट विश्वास हो जाता है। द्वितीय, एक पुस्तक
पढ़ने से छात्र एक ही प्रकार का दृष्टिकोण अपना लेते हैं तथा अन्य दृष्टिकोणों से
पूर्णतया अनभिज्ञ बने रहते हैं। इस प्रकार "एक पाठ्य-पुस्तक प्रणाली के अन्तर्गत योग्य
शिक्षण सम्भव नहीं है।"

(2) बहु पाठ्य-पुस्तक पद्धति (The Several Text-Books Method)—जैसा इसके
नाम से ही स्पष्ट है, इस पद्धति के अन्तर्गत छात्रों के अध्ययनार्थ एक से अधिक
पाठ्य-पुस्तकें प्रस्तुत की जाती हैं। अध्यापन तथा अध्ययन दोनों ही दृष्टिकोणों से
बिनिंग तथा बिनिंग ने बहुपाठ्य-पुस्तक पद्धति को भी अच्छा बतलाया है। छोटी
कक्षाओं—माध्यमिक स्तर तक में एक पाठ्य-पुस्तक पद्धति ही अपनानी चाहिए, किन्तु
उच्च माध्यमिक, उच्चतर माध्यमिक तथा विश्वविद्यालय स्तर पर तो हर हालत में बहु
पाठ्य-पुस्तक पद्धति को अपनाना चाहिए। इन स्तरों पर कदापि एक पाठ्य-पुस्तक तक

ही सीमित नहीं रहना चाहिए। बहु पाठ्य-पुस्तक पद्धति से इन स्तरों के छात्र अनेक प्रकार से लाभान्वित होते हैं। इन लाभों में निम्नलिखित प्रमुख हैं :

(i) छात्र अनेक दृष्टिकोणों से परिचित होते हैं।
(ii) छात्रों में स्वतन्त्र स्वाध्याय की आदत पड़ती है।
(iii) एक पुस्तक के दोष दूसरी अन्य पुस्तकों के गुणों से दूर हो जाते हैं।
(iv) छात्र तार्किक प्रणाली से अध्ययन करना सीखते हैं।

इस प्रकार हम निष्कर्ष निकालते हैं कि उच्च स्तर पर अनेक पुस्तकों का निर्माण होना चाहिए।

पाठ्य-पुस्तक पद्धति के गुण (Merits of the Text-Book Method)

पाठ्य-पुस्तक पद्धति में निम्नांकित गुण हैं :

(1) पाठ्य-पुस्तक छात्रों के सम्मुख विषय-वस्तु को अत्यन्त योजित रूप में प्रस्तुत करती है।

(2) पाठ्य-पुस्तक छात्रों की विभिन्न आवश्यकताओं तथा सीमाओं को ध्यान में रखकर विषय-वस्तु को यथासम्भव बोधगम्य बनाने की चेष्टा करती है।

(3) यह पद्धति छात्रों के कंधों पर पूरा-पूरा दायित्व डालती है। छात्र इस दायित्व को पूरा करने हेतु यथासम्भव सभी साधनों का प्रयोग करते हैं।

(4) पाठ्य-पुस्तक पद्धति छात्रों में स्वाध्याय की आदत डालती है। छात्र स्वयं विभिन्न पुस्तकों का अध्ययन कर विषय-वस्तु का गहन अध्ययन करते हैं।

(5) पाठ्य-पुस्तक छात्रों को सक्रियता प्रदान करती है। छात्र पाठ्य-पुस्तकों का अध्ययन करने में सक्रिय रहते हैं।

(6) पाठ्य-पुस्तक पद्धति अध्यापक एवं छात्र दोनों के ही समय तथा श्रम की बचत करती है। अध्यापक को सभी विषय-वस्तु (सुगम तथा जटिल) का स्पष्टीकरण छात्रों के सम्मुख नहीं करना पड़ता। छात्र सुगम विषय-वस्तु को पुस्तकों से स्वयं ही समझ लेते हैं, जबकि अध्यापक केवल जटिल विषय-वस्तु को ही व्याख्या द्वारा स्पष्ट करता है।

पाठ्य-पुस्तक पद्धति के दोष (Demerits of Text-Book Method)

उपरोक्त गुणों के होते हुए भी पाठ्य-पुस्तक पद्धति में निम्नांकित दोष पाये जाते हैं—

(1) वास्तविक रूप में पाठ्य-पुस्तक पद्धति में प्रयोग की जाने वाली पाठ्य-पुस्तकें उद्देश्य प्राप्त करने की साधनमात्र हैं, किन्तु व्यवहार में यह देखा जाता है कि अध्यापक तथा छात्र दोनों ही इस साधन को साध्य (End) मान लेते हैं। अध्यापक तथा छात्रों का एकमात्र उद्देश्य पाठ्य-पुस्तक समाप्त कराना हो जाता है। इससे शिक्षा के मूल उद्देश्य प्राप्त करने में बाधा होती है।

(2) पाठ्य-पुस्तक पद्धति छात्रों में रहने की आदत की आवश्यकता से अधिक विकास करती है। छात्र अपनी तर्क-शक्ति से काम न लेकर पाठ्य-पुस्तक में दी गयी विषय-वस्तु को रटकर उत्तीर्ण होने को ही अपना उद्देश्य बना लेते हैं।

(3) यह पद्धति छात्रों के पूर्वानुभवों को कोई भी महत्व प्रदान नहीं करती है।

(4) पाठ्य-पुस्तक पद्धति व्यक्तिगत विभिन्नताओं को भी ध्यान में नहीं रखती। प्रकार के छात्रों को एक ही प्रकार की पाठ्य-पुस्तक का अध्ययन करना पड़ता है

(5) पाठ्य-पुस्तक विभिन्न छात्रों के भाषा-ज्ञान का भी ध्यान नहीं रखती पुस्तकों की भाषा, शैली, विषय-वस्तु आदि छात्रों के मानसिक स्तर के अनुसार नहीं हो सकती है।

(6) यह पद्धति केवल सैद्धान्तिक ज्ञान ही प्रदान करती है, व्यावहारिक प्रयोगात्मक नहीं।

(7) कभी-कभी पाठ्य-पुस्तकें अध्यापक के महत्त्व को कम कर देती हैं। छात्र समझते हैं कि अब तो हम पाठ्य-पुस्तकों से ही ज्ञान प्राप्त कर लेंगे, अध्यापकों की जरूरत है।

(8) पाठ्य-पुस्तक पद्धति के अन्तर्गत छात्र स्वयं का कोई भी दृष्टिकोण अपने में असफल रहते हैं। ये विभिन्न पुस्तकों में दिये गये दृष्टिकोणों को ही अपना दृष्टिकोण बना लेते हैं।

(9) पाठ्य-पुस्तकें कभी-कभी बड़ी नीरसता पैदा कर देती हैं, क्योंकि पुस्तकों में मुद्रित अक्षर हमसे कुछ नहीं कह सकते।

सुझाव (Suggestions)

(1) इस पद्धति की सफलता चुनी गयी पाठ्य-पुस्तक पर काफी मात्रा में आधारित है। अतः अध्यापक को पाठ्य-पुस्तकों का चयन बड़ी सावधानी से करना चाहिए। अध्यापक को उन सभी तथ्यों को ध्यान में रखना चाहिए जिनका वर्णन 'वाणिज्य पाठ्य-पुस्तक' नामक अध्याय में किया गया है।

(2) अध्यापक को चाहिये कि वह पाठ्य-पुस्तक प्रणाली में व्याप्त नीरसता को कम करे। इसके लिए सर्वोत्तम साधन उपयुक्त सहायक-सामग्री का प्रयोग करना है। इसके अतिरिक्त अध्यापक अन्य उपायों, यथा उदाहरण, दृष्टान्त आदि के द्वारा भी सरसता ला सकता है।

(3) पाठ्य-पुस्तक पद्धति में अनुभवी तथा योग्य अध्यापकों की आवश्यकता पड़ती है, क्योंकि पुस्तक का चयन, छात्रों का उचित निर्देशन, अध्ययन की योजना निर्माण आदि अनेक ऐसे कार्य हैं जिनमें अनुभवी तथा योग्य अध्यापकों की आवश्यकता पड़ती है। अतः अनुभवी तथा योग्य अध्यापकों की व्यवस्था करनी चाहिए।

(4) छात्रों को उपयुक्त विधि से निर्देशित करने की आवश्यकता है। छात्रों को इस प्रकार से निर्देशित किया जाये कि वे रटने की आदत का विकास आवश्यकता से अधिक न करें, वरन् समीक्षात्मक, तार्किक तथा विश्लेषणात्मक रूप से अध्ययन करना सीखें।

(5) पद्धति को यथासम्भव व्यावहारिक एवं प्रयोगात्मक बनाने की चेष्टा करनी चाहिए।

(6) अध्यापक को प्रश्न पूछते समय भी अत्यन्त सावधानी रखनी चाहिए। प्रश्नों के सम्बन्ध में प्रस्तुत पुस्तक में अन्यत्र विस्तारपूर्वक लिखा गया है। संक्षिप्त में प्रश्नों की भाषा व शैली अत्यन्त सरल, बोधगम्य तथा स्पष्ट होनी चाहिए।

(7) अध्यापन में मौन वाचन तथा सस्वर वाचन दोनों ही प्रकार के अध्ययन की व्यवस्था होनी चाहिए। इससे छात्र ध्यान केन्द्रित करना तथा सही उच्चारण करना दोनों ही सीख सकेंगे।

(8) श्यामपट-कार्य की विशेष व्यवस्था होनी चाहिए। श्यामपट पर जो कुछ भी कार्य किया जाये, वह सरल, क्रमबद्ध तथा व्यवस्थित होना चाहिए।

अभ्यास-प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न

1. शिक्षण-पद्धतियों से आप क्या समझते हैं ? एक उत्तम शिक्षण-पद्धति के प्रमुख गुणों की चर्चा कीजिये।
2. वाणिज्य-शिक्षण में भाषण-पद्धति का प्रयोग कैसे किया जाता है ? इस पद्धति के गुण व दोष भी लिखिये।
3. वाणिज्य शिक्षण में भाषण-पद्धति को किस प्रकार उपयोगी बनाया जा सकता है ?
4. वाणिज्य शिक्षण की पाठ्य-पुस्तक पद्धति से आप क्या समझते हैं ? पाठ्य-पुस्तक पद्धति से वाणिज्य का शिक्षण किस प्रकार किया जाता है ?
5. वाणिज्य-शिक्षा की पाठ्य-पुस्तक पद्धति के गुण-दोषों की चर्चा कीजिये।

लघु उत्तरात्मक प्रश्न

1. शिक्षण पद्धति का अर्थ स्पष्ट कीजिये।
2. एक अच्छी शिक्षण पद्धति की कुछ प्रमुख विशेषतायें बताइये।
3. वाणिज्य-शिक्षण में भाषण-पद्धति का प्रयोग कब करना चाहिए ?
4. भाषण-पद्धति को प्रणाली बनाने हेतु कुछ सुझाव दीजिये।
5. शिक्षण के लिए पाठ्य-पुस्तक का प्रयोग कितने प्रकार से निभाया जा सकता है ? प्रत्येक प्रकार का परिचय दीजिये।
6. पाठ्य-पुस्तक पद्धति को उपयोगी बनाने हेतु कुछ सुझाव दीजिये।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. अध्यापक को सफल शिक्षण हेतु ..... तथा ..... दोनों का ही पर्याप्त ज्ञान होना चाहिए।
2. वही उत्तम पद्धति है जो पूर्व निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायक हो।
   (अ) सत्य (ब) असत्य
3. कौन-सी पद्धति शिक्षा की परम्परागत पद्धतियाँ कहलाती हैं ?
   (अ) प्रयोगशाला पद्धति (ब) भाषण पद्धति
   (स) पाठ्य-पुस्तक पद्धति (द) ब और स दोनों।
4. पाठ्य-पुस्तक पद्धति दो प्रकार की होती है—1. एक पाठ्य-पुस्तक पद्धति, 2. .....

उत्तर—1. विषय वस्तु, शिक्षण पद्धति, 2. (अ) सत्य, 3. (द) ब और स दोनों, 4. बहु पाठ्य-पुस्तक पद्धति।

वाणिज्य-शिक्षण की आधुनिक शिक्षण पद्धतियाँ

(MODERN METHODS OF TEACHING COMMERCE)

गत अध्याय में हमने दो परम्परागत पद्धतियों, भाषण पद्धति एवं पाठ्य-पुस्तक पद्धति का विस्तृत अध्ययन किया। प्रस्तुत अध्याय में आधुनिक पद्धतियों का विवेचन किया जायेगा। इस प्रकार से दोनों ही अध्याय कोई पृथक्-पृथक् दो अध्याय न होकर एक ही अध्याय के दो खण्ड हैं। प्रस्तुत अध्याय में निम्नांकित पद्धतियों का अध्ययन करेंगे :

1. प्रयोगशाला पद्धति (Laboratory Method);
2. योजना पद्धति (Project Method) ;
3. समस्या पद्धति (Problem Method) ;
4. विश्लेषणात्मक एवं संश्लेषणात्मक पद्धति (Analytic and Synthetic Method);
5. समाजीकृत अभिव्यक्ति पद्धति (Socialised Recitation Method);
6. निरीक्षित अध्ययन पद्धति (Supervised Study Method);
7. वादविवाद पद्धति (Discussion Method) ;
8. इकाई पद्धति (Unit Method) ।

1. प्रयोगशाला पद्धति

(LABORATORY METHOD)

शिक्षाशास्त्रियों ने समय-समय पर शिक्षा को अधिक से अधिक रोचक बनाने की चेष्टायें की हैं। शिक्षा में सीखना-प्रक्रिया का बड़ा महत्व है। एक तहर से देखा जाये तो हम पाते हैं कि सभी शैक्षिक प्रयत्न सीखना-प्रक्रिया के चारों ओर घूमते हैं, किन्तु यह सीखना-प्रक्रिया अत्यन्त जटिल तथा क्लिष्ट है। शिक्षाशास्त्रियों ने इसको यथासम्भव सरल तथा सुगम बनाने की समय-समय पर चेष्टायें की हैं। इन चेष्टाओं ने सहायक-सामग्री के प्रयोग के माध्यम से सीखने की विषय-वस्तु को अधिकतम रोचक बनाने की चेष्टायें अपना उल्लेखनीय स्थान रखती हैं। वर्तमान युग में पाठ्य-पुस्तक ही सीखने की एकमात्र साधन नहीं समझी जाती है। सीखने हेतु पाठ्य-पुस्तक जितनी महत्वपूर्ण है, उतनी ही महत्वपूर्ण शिक्षा की अन्य सहायक सामग्रियाँ हैं।

सहायक-सामग्रियों के बढ़ते हुए प्रयोग ने वाणिज्य शिक्षण हेतु 'वाणिज्य प्रयोगशाला' के विचार को जन्म दिया। वाणिज्य के शिक्षकों ने वाणिज्य विषय को प्रयोगशाला पद्धति से पढ़ाने का विचार वैज्ञानिक विषयों को प्रयोगशाला पद्धति से पढ़ाने से लिया। इन शिक्षकों का विचार था कि जिस प्रकार वैज्ञानिक विषयों को पढ़ाने हेतु उपकरणों तथा साज-सज्जा की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार वाणिज्य को रोचक बनाने हेतु विभिन्न उपकरणों एवं साज-सज्जा की आवश्यकता है और इस सबको रखने के लिए एक प्रयोगशाला की आवश्यकता पड़ती है। इस प्रयोगशाला में क्या-क्या उपकरण होने चाहिए, उन्हें किस प्रकार व्यवस्थित करना चाहिए आदि की विवेचना प्रस्तुत पुस्तक के एक अन्य अध्याय में की गयी है। वैज्ञानिक विषयों का ज्ञान, जिस प्रकार छात्र विभिन्न उपकरणों तथा साज-सज्जा के द्वारा विभिन्न कार्य करके सीखता है, उसी प्रकार वाणिज्य का ज्ञान भी 'करके सीखा' जा सकता है। वाणिज्य शिक्षण की प्रयोगशाला पद्धति 'करके सीखने' के महान् सिद्धान्त पर आधारित है। इस प्रकार वर्तमान युग में प्रयोगशाला के माध्यम से शिक्षण-कार्य करना केवल वैज्ञानिक विषयों तक ही सीमित नहीं रहा है।

प्रयोगशाला-पद्धति के अनुसार शिक्षण-कार्य करते समय कक्षा के समस्त छात्रों को या तो कार्य दे दिया जाता है या वे स्वयं ही कुछ कार्य ले लेते हैं। विभिन्न छात्रों का कार्य निर्धारित हो जाने के उपरान्त छात्र अपने-अपने कार्य को करने लगते हैं। अपने कार्यकाल के अन्तर्गत विभिन्न छात्र विभिन्न क्रियायें तथा परस्पर वाद-विवाद तथा आलोचना-समालोचना करते हैं। वाणिज्य की इस प्रयोगशाला में छात्र एक ही समय में विभिन्न कार्य सम्पादित करते हुए दिखलायी पड़ते हैं। कोई नक्शा बनाता है, कोई एटलस का अध्ययन करता है, कोई निष्कर्ष निकालता है, कोई पुस्तकें देखता है, कोई अपने कलम में स्याही ही भरता है, कोई अध्यापक के साथ वाद-विवाद कर अपनी विभिन्न शंकाओं का समाधान ही करता है। इस प्रकार वाणिज्यशास्त्र की प्रयोगशाला में एक ही समय में विभिन्न छात्र अनेक कार्य करते हैं। इस प्रयोगशाला का कार्य अध्यापक किन्हीं जटिल बिन्दुओं को स्पष्ट करने के लिए कुछ समय हेतु बन्द भी कर सकता है। वाणिज्य की एक सक्रिय प्रयोगशाला का अत्यन्त सजीव चित्रण एच० सी० हिल (H. C. Hill) ने किया है। उनके चित्रण का सार है कि कक्षा के अधिकांश छात्र पढ़ने या लिखने में व्यस्त होंगे, दो-तीन जटिल प्रश्नों पर वाद-विवाद कर रहे होंगे, कुछ तुलना कर रहे होंगे, कुछ एटलस देख रहे होंगे, कुछ मानचित्र बना रहे होंगे, पुस्तकें ढूँढ रहे होंगे, तथा कुछ अध्यापक के साथ मिलकर शंका-समाधान कर रहे होंगे।

The greater part of the student will be studying and writing at their work-tables. Two or three may be having a quite conference on some mootpoint. Other may be comparing notes or outlines of some phase of the work. One student may be busy at the dictionary, hunting for explanation of some phrases or terms; another may be consulting an atlas; a third may be sharpening a pencil or filling his fountain-pen; a fourth may be making a map or preparing a graph ; a fifth may be conferring with the teacher about some difficulty or asking for a criticism on his notes or outlines. Usually one or two students will be browsing among the volumes in the book-cases or going through tables or contents or indexes to find a

clue to some obscure item. Now and then an idle or a dawdler ... observed. In general, however, the room is a place of quite disord... which students are busily engaged in profitable activities of one k... another."—**H. C. Hill**, Laboratory Work in Civics. Quoted form the Te... the Social Studies in Secondary Schools by Bining & Bining, p. 151.

बिनिंग तथा बिनिंग (Bining and Bining) ने अपनी पुस्तक में प्रयोगशाला ... से शिक्षण-कार्य करने की एक दूसरी प्रणाली का उल्लेख किया है। इस प्रणा... अन्तर्गत प्रयोगशाला के भीतर छात्रों की विभिन्न क्रियाओं को उचित रूप से ... करने पर विशेष बल दिया जाता है। इन क्रियाओं के उतने अधिक निरीक्ष... आवश्यकता नहीं पड़ती। इस प्रणाली के अन्तर्गत एक ही विषय-वस्तु पढ़ने ... दो-तीन कक्षाओं का एक समूह बना दिया जाता है और प्रयोगशाला कालांश (Pe... के एक अध्यापक को निरीक्षक बना दिया जाता है। छात्र प्रयोगशाला में विभिन्न ... करते हैं। कार्य करते समय में वे सभी दिये गये आदेशों का पालन करते ... अध्यापक का परामर्श लेते हैं और अन्त में अपना प्रतिवेदन (Report) लि... सम्बन्धित अध्यापक को देते हैं। इस प्रकार अध्यापक को किसी भी प्रकार ... निरीक्षण-कार्य नहीं करना पड़ता है।

"....................laboratory procedure is one in which classroom-work ... laboratory tasks are so arranged that the activity during the laboratory ... are so arranged that the activity during the laboratory peroid requires little actual supervision. The group in the laboratory consists of tw... more classes taking the same course. One teacher has charge of this per... The pupils here are engaged principally in securing materials for the... and reports and in the writing of them. The pupils work from mineograp... sheets or follow the instructions given to them earlier in their class-roo... They secure the books and other materials necessary for their work at ... beginning of the laboratory peroid. The teacher may be called upon ... course, for aid and advice, but the work is not carried out in the manne... supervised study. The completed themes and reports may be handed i... the teacher in charge of the laboratory period."

—**Bining & Bining**, pp. 151-...

प्रयोगशालाओं के माध्यम से पढ़ाने की तीसरी प्रणाली को मिस हेलेन पार्क... (Miss Helen Parkhurst) ने प्रस्तुत किया। इनकी प्रणाली को हम डाल्टन यो... (Dalton Plan) कहते हैं। इस प्रणाली के अनुसार सबसे पहले विषय की कई मा... इकाइयों में विभक्त कर दिया जाता है। इस इकाई को निर्धारित समय में पूरा करने ... आशा की जाती है, किन्तु प्रति माह का निर्धारित कार्य छात्र उसी माह में पूरा क... ऐसा कोई आवश्यक बन्धन नहीं होता है। छात्र अपनी योग्यता व क्षमता के अनुसार ... माह के कार्य को आधे माह में या दो माह में पूरा कर सकता है। छात्र निर्धारित ... प्राप्त होने के उपरान्त विषय की प्रयोगशाला में जाकर पुस्तकों, उपकर... सहायक-सामग्रियों तथा साज-सज्जा आदि के द्वारा निर्धारित कार्य को पूरा करते ... इस प्रकार की प्रयोगशालाओं में छात्र इच्छानुसार समय तक ठहर सकता है। यदि ... वाणिज्यशास्त्र की प्रयोगशाला में प्रवेश करता है तो वह वहाँ चाहे जितने समय ...

...कार चाहे जो कुछ पढ़ सकता है या अन्य क्रियायें कर सकता है। इस प्रकार की ...णाली में कोई समय-चक्र (Time-table) भी नहीं होता है। आधुनिक काल में ...ल्टन-योजना में कुछ सुधार हुए हैं। एक सबसे उल्लेखनीय सुधार है प्रत्येक छात्र को ...छ सामूहिक कार्यों में आवश्यक रूप से भाग लेना पड़ता है जिससे उसका ...माजीकरण भी हो सके।

डाल्टन-योजना के अतिरिक्त जहाँ तक प्रयास दो प्रणालियों का सम्बन्ध है, इनमें ...योगशाला में एक समय कार्य करने का कालांश सामान्यतया साठ मिनट का होता है ...र प्रति सप्ताह प्राय: पाँच कालांश होते हैं तथा आवश्यकता पड़ने पर इस पद्धति के ...न्तर्गत वादविवाद पद्धति, समस्या पद्धति तथा भाषण पद्धति का भी प्रयोग कर लिया ...ाता है।

प्रयोगशाला पद्धति के गुण

प्रयोगशाला पद्धति में निम्नलिखित गुण पाये जाते हैं—

(1) प्रयोगशाला में छात्र अनेक क्रियायें करते हैं। कोई पुस्तक तलाश करता है, कोई एटलस का अध्ययन करता है, कोई पढ़ता है तो कोई कुछ करता है, तो कोई कुछ। सभी छात्र सक्रिय रहते हैं। इस प्रयोगशाला पद्धति का सबसे बड़ा गुण है कि इसके अन्तर्गत छात्र अत्यन्त सक्रिय होकर कार्य करते हैं।

(2) इस पद्धति में छात्रों की रुचि तथा सुविधा का पूरा-पूरा ध्यान रखा जाता है। छात्र अपनी रुचि तथा सुविधानुसार पाठ्य-सामग्री का प्रयोग करते हैं। वे अपने निर्धारित कार्य करने के लिए अपनी स्वयं की योजना बनाते हैं।

(3) प्रयोगशाला पद्धति छात्रों में दायित्व वहन करने की क्षमता का विकास करती है। पद्धति के अनुसार छात्रों को कार्य दे दिया जाता है। उसे वे स्वयं पूरा करने का प्रयत्न करते हैं।

(4) प्रयोगशाला पद्धति सामूहिक शिक्षण के दोषों को दूर कर शिक्षा को सरल, सुगम तथा बोधगम्य बनाती है।

(5) प्रयोगशाला पद्धति के अन्तर्गत छात्र पुस्तक, पुस्तकालय तथा अन्य शिक्षा-उपकरणों का प्रयोग करना सीख जाते हैं।

"The pupils take the laboratory as a work-room, a class-room and library to enter or leave as and when they please. There is no time-table and no periods etc. because here is no limit to the time a pupil may spend in any particular laboratory."

—**Smt. S. K. Kochhar**, p. 336.

प्रयोगशाला पद्धति के दोष

प्रयोगशाला पद्धति में निम्नांकित दोष हैं—

(1) प्रयोगशाला पद्धति से प्रत्येक अध्यापक नहीं पढ़ा सकता है। इसका प्रयोग केवल अत्यन्त कुशल तथा दक्ष अध्यापक ही सफलतापूर्वक कर सकते हैं।

(2) यह पद्धति काफी यन्त्रवत् है। छात्र प्रयोगशाला में रहकर यन्त्रवत् कार्य करते हैं।

(3) पद्धति की सफलता अध्यापक के निर्देशन पर निर्भर है। यदि निर्देशन सफल न रहा तो सम्पूर्ण पद्धति ही अपने उद्देश्य को खो देगी।

(4) यह पद्धति अत्यधिक खर्चीली है। भारत के अधिकांश विद्यालयों व पुस्तकालय हेतु भी एक कमरा उपलब्ध नहीं होता है, यह आशा करना कि विषय प्रत्येक विषय हेतु एक प्रयोगशाला बनवा सकेंगे, असम्भव मालूम पड़ता है।

(5) इस पद्धति के माध्यम से अध्ययन करने हेतु अधिक समय की आवश्यकता पड़ती है।

(6) इस पद्धति में ज्ञान के अव्यवस्थित हो जाने का भय रहता है।

2. योजना पद्धति
(PROJECT METHOD)

विभिन्न शिक्षण पद्धतियों में योजना पद्धति सबसे अधिक विवादग्रस्त तथा प्रशंसित पद्धति है। योजना पद्धति का जन्म दार्शनिक विचारधाराओं के प्रयोजनवादी सम्प्रदाय के प्रयासों के फलस्वरूप हुआ। दर्शन से योजना की शिक्षाजगत में लाने का सर्वप्रथम कार्य प्रमुख प्रयोजनवादी तथा शिक्षाशास्त्री जॉन ड्यूवी ने किया। वैसे ड्यूवी से पहले शिक्षा के कुछ क्षेत्रों में इसी प्रकार के नाम प्रचलित थे, परन्तु शिक्षा में विशेष रूप सामाजिक विषयों की शिक्षा में इसका रूप स्पष्ट न था।

सन् 1918 तक इसका रूप स्पष्ट हुआ। इसी वर्ष कोलम्बिया विश्वविद्यालय डॉक्टर W. H. किलपैट्रिक ने अपनी अत्यधिक प्रचलित एवं स्पष्ट परिभाषा की योजना की परिभाषा देते हुए उन्होंने लिखा है। योजना एक ऐसी—सोउद्देश्य क्रिया है सामाजिक वातावरण में पूर्ण दिलचस्पी से सम्पन्न की जाती है।

इस परिभाषा को और भी अधिक स्पष्ट रूप से प्रस्तुत करते हुए जे० **स्टीवेन्सन** ने लिखा है, "योजना एक ऐसा समस्यात्मक कार्य है जो प्राकृतिक अवस्था में पूरा किया जाता है।"

योजना का रूप स्पष्ट हो जाने के उपरान्त शिक्षा क्षेत्र में योजना पद्धति का पर्याप्त प्रयोग होने लगा। कुछ दिन पूर्व योजना पद्धति किये गये कार्यों तक ही सीमित थी परन्तु वर्तमान में कक्षा के बाहर तथा अन्दर सभी कार्य इस पद्धति से होने लगे हैं। अब योजना का प्रयोग अत्यन्त व्यापक रूप से किया जाने लगा है। इस पद्धति में सम्पूर्ण शिक्षण-कार्य वास्तविक तथा प्रयोगात्मक अवस्था में होता है क्योंकि समस्त अत्यन्त व्यावहारिक तथा वास्तविक बना दी जाती है। इससे अनेक प्रकार की समस्याओं का समावेश हो सकता है यथा साईकिल-स्टैण्ड बनाना, पार्सल से माल मँगाना, यात्रा करना, आदि-आदि। समस्यायें चार प्रकार की हो सकती हैं—

(1) उत्पादक योजनाएँ—वे योजनायें जिनमें छात्र कुछ उत्पादक कार्य करते हैं उत्पादक योजनायें कहलाती हैं। इस प्रकार की योजनाओं में हम मकान बनाना, साईकिल-स्टैण्ड बनाना, बाग लगाना आदि जैसी योजनाओं को सम्मिलित करते हैं।

(2) उपभोक्ता योजनाएँ—कुछ योजनायें ऐसी होती हैं जिनसे छात्र कुछ प्राप्त करता है, कुछ अनुभव लेता है, कुछ ज्ञान प्राप्त करता है या सीखता है या मनोरंजन करता है। इस प्रकार की योजनायें उपभोक्ता योजनायें कहलाती हैं। इस प्रकार की योजनाओं में हम यात्रा करने की योजना, दावत की योजना, नाटक की योजना, जैसी योजनायें रखते हैं।

(3) **समस्यात्मक योजनाएँ**—कुछ योजनायें छात्रों के सम्मुख कुछ समस्यायें प्रस्तुत करती हैं। इनके अन्तर्गत छात्रों को किन्हीं समस्याओं का समाधान करना पड़ता है। इस प्रकार की योजनायें समस्यात्मक योजनायें कहलाती हैं।

(4) **अनुसन्धानात्मक योजनाएँ**—इस प्रकार की योजनाओं में कोई ऐसी योजना नहीं ली जाती जो नयी हो बल्कि ऐसी योजनायें ली जाती हैं जो हमें ऐसा ज्ञान प्रदान करें जिसे हम पहले भी अन्य किसी योजना के माध्यम से सीख चुके हैं। इस प्रकार की योजनाओं का उद्देश्य पहले सीखे हुए ज्ञान को दुहराना होता है।

वाणिज्य-शिक्षण एवं योजना पद्धति

उपरोक्त विवेचन से योजना पद्धति का रूप पर्याप्त मात्रा में स्पष्ट हो जाता है। अब हम अध्ययन करेंगे कि योजना पद्धति से वाणिज्य शास्त्र का शिक्षण किस प्रकार किया जाता है। इस पद्धति के अनुसार वाणिज्य का शिक्षण करते समय सबसे पहले छात्रों के सहयोग से एक समस्या पैदा की जाती है। समस्या का निर्माण अत्यन्त सावधानी से किया जाता है। निर्माण इस ढंग से किया जाता है कि वह कृत्रिम तथा काल्पनिक मालूम न देकर वास्तविक एवं सजीव मालूम पड़े। कभी-कभी एक साथ ही कई एक समस्या का निर्माण कर लिया जाता है और उनमें से कोई एक समस्या चुन ली जाती है। समस्या चुनाव कर लेने के पश्चात् यह निर्धारित किया जाता है कि योजना का कार्य किस प्रकार आगे बढ़ाया जाये। दूसरे शब्दों में, यहाँ हम योजनाओं को पूरा करने की योजना बनाते हैं। इसी योजना के अन्तर्गत हम अपनी कार्य-विधि निर्धारित करते हैं। तत्पश्चात् योजना को कार्यान्वित किया जाता है। योजना का यह प्रमुख अंग होता है। कार्य की समाप्ति पर कार्य का मूल्यांकन किया जाता है और अन्त में कार्य का लेखा प्रस्तुत किया जाता है। इस प्रकार वाणिज्य की योजनाओं में निम्नांकित छः चरण उठाने पड़ते हैं—

(1) परिस्थिति-निर्माण
(2) योजना-चुनाव
(3) समस्या की योजना (Planning of the Situation)
(4) योजना को कार्यान्वित करना (Execution of the Plan)
(5) कार्य का मूल्यांकन (Judging the Work)
(6) लेखा का प्रस्तुतीकरण (Presentation of the Work)

SHASTRI B.Ed. TRAINING COLLEGE LIBRARY BOOK

अच्छी योजना की विशेषताएँ (Characteristics of a Good Project)

एक अच्छी योजना में निम्नांकित विशेषताएँ होती हैं—

(1) योजना के अन्तर्गत चुनी गयी समस्या ऐसी हो, जिस पर सफलता से प्रयोग किये जा सकें। समस्या पूर्णरूपेण सैद्धान्तिक नहीं होनी चाहिए।

(2) योजना की परिभाषा में, जैसा कहा गया है, योजना में कुछ उपयोगिता होनी चाहिए। यदि योजना उपयोगी (Purposeful) नहीं है तो वह अपने उद्देश्यों की प्राप्ति न कर पायेगी।

(3) आर्थिक रूप से दुर्बल भारत देश में यदि हम योजना-पद्धति अपनायें तो सदैव ध्यान रखना चाहिए कि योजना मितव्ययी हो। अच्छी योजना मितव्ययी होनी चाहिए।

(4) योजना नये-नये अनुभव प्रदान करने वाली हो तथा पूर्व-अनुभवों पर आधा हो।

(5) अच्छी योजना में छात्र सक्रिय रहते हैं।

(6) अच्छी योजना छात्रों के मानसिक स्तर के अनुकूल होती है।

योजना पद्धति के गुण (Merits of the Project Method)

योजना पद्धति में निम्नांकित गुण पाये जाते हैं :

(1) योजना पद्धति क्रियाशीलता, उपयोगिता, वास्तविकता तथा स्वतन्त्रता सिद्धान्तों पर आधारित होने के कारण अधिक मनोवैज्ञानिक है।

(2) योजना पद्धति की सभी क्रियायें सोद्देश्य होती हैं। फलतः छात्र इनमें अधि संलग्नता से कार्य करते हैं।

(3) योजना पद्धति छात्रों को व्यावहारिकता तथा प्रयोगात्मक ज्ञान प्राप्त करा है।

(4) योजना पद्धति 'करके सीखने' के सिद्धान्त पर आधारित है।

(5) योजना पद्धति व्यक्तिगत विभिन्नताओं पर आधारित है। फलतः इसके अन्तर्ग सभी छात्रों को अपना-अपना विकास करने के समान अवसर प्राप्त होते हैं।

(6) पद्धति में शारीरिक एवं मानसिक क्रियाओं का सुन्दर समन्वय होने के कार यह पद्धति अधिक रोचक तथा आकर्षक है।

(7) यह सिद्धान्त थॉर्नडाइक के सीखने के तीन महान सिद्धान्तों पर आधारित है थॉर्नडाइक का पहला सिद्धान्त प्रभाव का सिद्धान्त (Law of Effect) है। सीखने के प्रभा का होना आवश्यक है। सीखने से सन्तोष एवं सफलता प्राप्त होनी चाहिए। योज पद्धति में शारीरिक कार्य के फलस्वरूप छात्रों को सफलता एवं सन्तोष दोनों ही प्रा होते हैं। इस प्रकार योजना पद्धति प्रभाव के सिद्धान्त पर आधारित है। दूसरा सिद्धा तत्परता का सिद्धान्त (Law of Readiness) है। इसके अनुसार सीखने से पूर्व छात्रों सीखने के लिए तैयार होना आवश्यक है।

दूसरे शब्दों में, छात्रों को पहले से ही यह ज्ञात होना चाहिए कि वे क्या सीख जा रहे हैं। योजना में पहले से ही छात्रों को यह ज्ञान होता है कि वे क्या सीखने जा हैं इसके लिए वे तैयार होकर आते हैं। यही तत्परता का सीखने का नियम है। सीख का तीसरा नियम अभ्यास का नियम है। सीखना तभी स्थायी तथा प्रभावपूर्ण रहता जब सीखे हुए ज्ञान का पर्याप्त अभ्यास किया जाये। योजना पद्धति छात्रों को अभ्या करने के पर्याप्त अवसर प्रदान करती है।

(8) योजना पद्धति से छात्रों में सहयोग, सहानुभूति, सहिष्णुता तथा पारस्परि प्रेम की भावना जाग्रत होती है। इस प्रकार के सद्गुण प्रजातान्त्रिक शासन व्यवस्था लिए परमावश्यक हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि योजना पद्धति ह प्रजातन्त्रात्मक जीवन व्यतीत करना सिखलाती है।

(9) योजना पद्धति शारीरिक श्रम के महत्व का ज्ञान छात्रों को कराती है।

(10) योजना पद्धति छात्रों को पर्याप्त स्वतन्त्रता प्रदान करती है।

योजना पद्धति के दोष

उपरोक्त गुणों के साथ ही साथ योजना पद्धति में निम्नांकित दोष तथा कमियाँ भी देखने को मिलती हैं—

(1) योजना पद्धति अधिक क्लिष्ट एवं जटिल है। फलतः कष्टसाध्य है। प्रत्येक छात्र इन्हें सफलतापूर्वक नहीं कर सकता है।

(2) अधिकतर ज्ञान अव्यवस्थित, शृखलाविहीन तथा अक्रमबद्ध रूप में प्राप्त होता है। अन्त में, ज्ञान को व्यवस्थित या क्रमबद्ध करने की आवश्यकता पड़ती है।

(3) योजना पद्धति अधिक व्यय चाहती है। साथ ही साथ वाणिज्य की सम्पूर्ण विषय वस्तु का ज्ञान भी इस पद्धति से प्रदान नहीं किया जा सकता है।

(4) योजना पद्धति अध्यापक के महत्व तथा स्थान को आवश्यकता से अधिक गिरा देती है।

(5) योजना पूरी करने में श्रम व समय अधिक लगता है।

(6) योजनाओं के संचालन हेतु कुशल तथा अनुभवी अध्यापकों की आवश्यकता होती है।

(7) योजनाओं के निर्माण के समय छात्रों की क्षमताओं एवं पहुँचों का गलत अन्दाज लग सकता है।

(8) निर्धारित समय में ही योजना पूरी करने की शर्त कभी-कभी योजना को अपने मूल उद्देश्य से विचलित कर देती है।

(9) शिक्षा के उच्च स्तर पर योजनाओं द्वारा शिक्षण-कार्य सुविधाजनक नहीं होता है—

कुछ सुझाव

वाणिज्य-अध्यापक को इस पद्धति के अनुसार शिक्षण-कार्य करते समय निम्नांकित सुझावों को ध्यान में रखना चाहिए—

(1) योजना का चुनाव छात्रों के उपयुक्त होना चाहिए। उनमें कुछ शैक्षणिक मूल्य भी होने चाहिए।

(2) योजना का प्रस्तुतीकरण व्यावहारिक तथा वास्तविक होना चाहिए।

(3) अनुभवी एवं योग्य अध्यापकों की व्यवस्था की जाये।

(4) योजना ऐसी हो जिसे सभी छात्र संलग्नता से कर सकें।

(5) योजनायें उपयोगी एवं उद्देश्यपूर्ण हों।

(6) योजना प्रारम्भ करने से पहले अच्छी प्रकार तैयारी करनी चाहिए।

(7) अध्यापक की योजना काल में छात्रों का भली प्रकार निरीक्षण करना चाहिए।

(8) योजनायें अन्त तक चालू रखनी चाहिए।

(9) जहाँ तक सम्भव हो, सामाजिक एवं प्राकृतिक वातावरण का निर्माण करना चाहिए।

(10) कम से कम भारत में तो योजना-व्यय को अधिक से अधिक मितव्ययी बनाने की चेष्टा करनी चाहिए।

3. समस्या-समाधान पद्धति
(PROBLEM SOLVING METHOD)

समस्या पद्धति वर्तमान युग की एक विवादग्रस्त पद्धति है। कुछ लोग इसे पद्धति न मानकर केवल एक विधि मानते हैं, परन्तु वास्तव में जो लोग इसे विधि मानते हैं वे भूल करते हैं। समस्या-समाधान को हमें शिक्षण-विधि नहीं कहना चाहिए। वास्तव में समस्या समाधान एक पद्धति है, जिसमें अब विभिन्न तरीकों से किसी समस्या पर विचार करने हेतु ज्ञान का वैज्ञानिक विधि से प्रयोग किया जाता है। अब प्रश्न उठता है कि समस्या क्या है तथा कब पैदा होती है ? "उस परिस्थिति में समस्या पैदा हो जाती है जिसमें कार्य करने सम्बन्धी कठिनाई अनुभव होती है। विचारक स्पष्टतया इन कठिनाइयों को प्रस्तुत तथा अनुभव करता है।" विचारक के लिए वे सभी परिस्थितियाँ समस्या है, जिनमें उसे मानसिक कठिनाइयाँ अनुभव हों परन्तु इसके साथ ही साथ शर्त यह है कि वे कठिनाइयाँ तभी समस्या हो पायेंगी जब विचारक उन कठिनाइयों को एक चुनौती के रूप में ग्रहण करता है जब विचारक कठिनाई को चुनौती के रूप में स्वीकार करता है तो यह स्वाभाविक है, वह कठिनाई में अपनी रुचि प्रदर्शित करे तथा समाधान हेतु तुरन्त तैयार हो जाये।

ऊपरी तौर से यहाँ पर एक अन्य समस्या पैदा हो जाती है कि योजना भी जैसा हम देख चुके हैं, समस्यात्मक क्रिया होती है। फिर समस्या पद्धति और योजना पद्धति में क्या भेद तथा अन्तर है। दोनों में यह अन्तर बाहरी रूप से मालूम नहीं पड़ता है यदि हम गहराई में प्रवेश करें तो अन्तर स्पष्ट हो जाता है। योजना पद्धति समस्याओं के वास्तविक अवस्थाओं में कार्य की पूर्णता पर बल देती है, जबकि समस्या पद्धति मानसिक निष्कर्षों को अधिक महत्त्व देती है। योजना पद्धति में शारीरिक तथा मानसिक दोनों ही प्रकार की समस्यायें सम्मिलित होती हैं जबकि समस्या पद्धति का क्षेत्र केवल मानसिक समस्याओं तक ही सीमित रहता है। विल्सन तथा विल्सन ने इन दोनों के अन्तर को बड़े स्पष्ट शब्दों में प्रस्तुत किया है। बिनिंग ने भी इसी अन्तर को स्पष्ट किया है।

योजना पद्धति जैसा कहा गया है, प्रयोजनवादी दार्शनिक विचारधाराओं का परिणाम है, जबकि समस्या पद्धति मनोविज्ञान की आधुनिक विचारधाराओं का परिणाम है।

समस्या पद्धति के अन्तर्गत छात्रों के सम्मुख एक समस्या का निर्माण छात्रों के सहयोग से किया जाता है। यह समस्या छात्रों के लिए एक चुनौती होती है। किशोर छात्र अपनी अवस्था के स्वभाव के कारण इस चुनौती का सामना करने के लिए तुरन्त तैयार हो जाता है। किशोर छात्र की इस तुरन्त तैयारी के कारण समस्या के प्रति उसमें शीघ्र ही रुचि तथा कौतूहल पैदा हो जाता है। फलतः वह समस्या को सुलझाने तथा समस्या के कारणों को ज्ञात करने हेतु भरसक प्रयत्न करता है। समस्या के समाधान हेतु किये गये प्रयत्न सोद्देश्य होते हैं। इस सोद्देश्यता का परिणाम ज्ञानार्जन होता है और ज्ञानार्जन अत्यन्त सरल तथा सुगम होता है।

समस्या के प्रकार

समस्या पद्धति के द्वारा अध्ययन कराते समय अध्यापक को दो प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता है। प्रथम, अध्यापक ऐसी समस्याओं को देखेगा

जिनके समाधान हेतु छात्रों को किसी भी प्रकार की तर्क-शक्ति से काम नहीं लेना पड़ता है। इस प्रकार की समस्यायें अत्यन्त सीधी-सादी तथा सरल होती हैं तथा छात्रों को प्राय: उनकी पाठ्य-पुस्तकों में ही इनके समाधान प्राप्त हो जाते हैं। इसके विपरीत कुछ ऐसी समस्यायें होती हैं जिनके समाधान हेतु छात्रों को गहन चिन्तन तथा मनन करना पड़ता है। उनका समाधान छात्रों को अपनी पाठ्य-पुस्तक में प्राप्त नहीं होता है, वरन् इनका समाधान छात्रों को स्वयं अपने मस्तिष्क से निकालना पड़ता है। छोटी कक्षाओं में अध्यापक को प्रथम प्रकार की समस्याओं को छात्रों के सम्मुख प्रस्तुत करना चाहिए, क्योंकि छोटे-छोटे छात्रों का मानसिक विकास इतना नहीं होता है कि वे गहन-चिन्तन तथा मनन कर सकें।

समस्या पद्धति के सोपान

ऊपर दो प्रकार की समस्याओं का उल्लेख किया गया है। इनमें से जहाँ तक प्रथम प्रकार की समस्याओं का सम्बन्ध है, उनके लिए कोई विशेष चरणों की आवश्यकता नहीं पड़ती है। छात्रों को समस्या का निर्माण करा दिया जाता है। फिर उनका महत्व बताकर आवश्यक तथ्य संग्रहीत करने को कह दिया जाता है। अन्त में उनका मूल्यांकन हो जाता है, इस प्रकार प्रथम प्रकार की समस्याओं के समाधान छात्रों को निम्नांकित चार चरणों में गुजरना पड़ता है—

(i) समस्या का निर्माण करना।
(ii) समस्या का महत्व बताना।
(iii) आवश्यक तथ्यों का संकलन, संगठन तथा व्यवस्थित करना।
(iv) व्यवस्थित तथ्यों का मूल्यांकन करना।

दूसरी प्रकार की समस्यायें जटिल समस्यायें होती हैं। उनके समाधान में छात्रों को चिन्तन एवं मनन करना पड़ता है। चिन्तन एवं मनन करके समस्या का समाधान करने के लिए विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न सोपानों का स्पष्ट रूप से निर्धारण कर दिया है। जॉन ड्यूवी ने अपनी पुस्तक 'हाउ वी थिंक' में निम्नांकित पाँच सोपानों का उल्लेख किया है—

(1) सम्भावित समाधान का पता लगाना।
(2) समस्या की जटिलता का बौद्धीकरण।
(3) उपकल्पना का निर्माण करना।
(4) उपकल्पना पर विस्तृत रूप से विचार करना।
(5) उप-कल्पनाओं की जाँच करना।

बिनिंग तथा बिनिंग ने इस सम्बन्ध में निम्नांकित चार सोपानों का उल्लेख किया है—

(1) समस्या को परिभाषित करना।
(2) उप-कल्पना का निर्माण करना।
(3) उप-कल्पना की परीक्षा एवं जाँच करना।
(4) निष्कर्ष निकालना।

उदीयमान शिक्षाशास्त्री श्री कामताप्रसाद पाण्डेय ने अपनी पुस्तक "शिक्षा : क्रियात्मक अनुसंधान" में निम्नांकित सोपानों का उल्लेख किया है—

(1) समस्या को पहचानना।
(2) समस्या का परिभाषीकरण एवं सीमांकन।
(3) समस्या के कार्यों का विश्लेषण।
(4) उप-कल्पना का निर्माण।
(5) उप-कल्पना की जाँच हेतु रूपरेखा तैयार करना।
(6) उप-कल्पना के सम्बन्ध में अन्तिम निर्णय लेना और उसका आधार बनाना।

उपरोक्त सभी सोपान उच्च कक्षाओं के लिए निर्मित किये गये हैं। माध्यमिक स्तर पर हम ऊपर के सोपानों के आधार पर कुछ अन्य सरल सोपानों का सरलतापूर्वक निर्माण कर सकते हैं। माध्यमिक स्तर पर निम्नांकित सोपानों से काम चल सकता है—

(1) समस्या का निर्माण करना।
(2) समस्या का महत्व ज्ञात करना।
(3) आवश्यक तथ्यों का संकलन, संगठन तथा व्यवस्था करना।
(4) तथ्यों की आलोचना, समालोचना तथा विचार-विमर्श करना।
(5) निष्कर्ष निकालना।
(6) निष्कर्षों का मूल्यांकन तथा उनकी सत्यता की जाँच करना।

अच्छी समस्या के आवश्यक तत्व (Essential Elements of a Good Problem)

समस्या का निर्माण एवं चुनाव करते समय अध्यापक को ध्यान रखना चाहिए कि समस्या अच्छी हो। एक अच्छी समस्या में निम्नांकित तत्व पाये जाते हैं :

(1) समस्या छात्रों की आवश्यकता, रुचि तथा योग्यता के अनुसार हो।
(2) समस्या ऐसी हो जिसे छात्र अपने जीवन से सम्बन्धित समझें।
(3) समस्या उपयोगी हो।
(4) समस्या स्पष्ट होनी चाहिए।
(5) समस्या के समाधान से छात्रों का ज्ञानार्जन होना चाहिए।
(6) समस्या के समाधान एवं निष्कर्ष सीधे, स्पष्ट तथा निश्चित होने चाहिए।

पद्धति के गुण (Merits of the Method)

(1) समस्या-पद्धति से प्रस्तुत की गयी समस्या छात्रों के लिए एक चुनौती होती है। अपनी शारीरिक एवं मानसिक अवस्था के कारण किशोर छात्र शीघ्र ही इस चुनौती का सामना करने को तैयार हो जाते हैं। इससे छात्र समस्या का समाधान बड़ी तत्परता एवं संलग्नता से करते हैं।

(2) यह पद्धति हमें समस्या को समाधान करना सिखलाती है। प्रत्येक जीवन समस्याओं से पूर्ण होता है। यह पद्धति छात्रों का जीवन-समस्याओं को हल करने योग्य बनाती है।

(3) छात्र समस्या को अपने जीवन से सम्बन्धित समझकर इसमें अपनत्व का बोध पाता है। फलतः समस्या एवं उसके समाधान में छात्र की अधिक रुचि हो जाती है।

(4) यह पद्धति व्यक्तिगत विभिन्नताओं पर आधारित होने से मनोवैज्ञानिक है।
(5) यह पद्धति छात्रों की चिन्तन, मनन एवं विश्लेषण-शक्ति का पर्याप्त विकास करती है।
(6) इस पद्धति के अन्तर्गत छात्र उप-कल्पनायें बनाना, उनकी जाँच करना एवं निष्कर्ष निकालना सीखते हैं।
(7) इस पद्धति से व्यक्तिगत शिक्षण तथा कक्षा-शिक्षण दोनों ही सम्भव है।
(8) इस पद्धति में छात्र अत्यधिक सक्रिय रहते हैं। फलतः अनुशासनहीनता की समस्या का प्रश्न नहीं उठता है।
(9) यह पद्धति दृष्टिकोण की व्यापकता, सहनशीलता, उत्तरदायित्वशीलता जैसे महान् नागरिक गुणों का विकास करती है।
(10) यह पद्धति छात्रों को विभिन्न नागरिक समस्याओं को समझने तथा उनका समाधान करने योग्य बनाती है।

पद्धति के दोष (Demerits of the Method)

उपरोक्त गुणों के साथ ही अन्य पद्धतियों के समान समस्या पद्धति में कुछ दोष भी व्याप्त हैं। इन व्याप्त दोषों का नामांकन नीचे किया जाता है—

(1) बार-बार के प्रयोग से समस्या पद्धति की सरसता तथा आकर्षण समाप्त हो जाने का भय रहता है और समस्या अत्यन्त नीरस हो जाती है।
(2) कभी-कभी समस्या का निर्माण अत्यन्त कठिन हो जाता है।
(3) इस पद्धति के द्वारा वाणिज्यशास्त्र की सम्पूर्ण विषय-वस्तु समान दक्षता से नहीं पढायी जा सकती है।
(4) कक्षा में निर्मित समस्यायें वास्तविक जीवन की समस्याओं से कहीं सरल तथा सुगम होती हैं। इन सरल तथा सुगम समस्याओं को सुलझाते-सुलझाते छात्र में अपने प्रति एक सरल धारणा का जन्म हो जाता है कि वह सभी प्रकार की समस्याओं का निराकरण कर सकता है।
(5) छात्र इस पद्धति में पाठ्य-पुस्तक का अध्ययन इस दृष्टिकोण से नहीं करते कि वे पाठ्य-पुस्तक पढ रहे हैं, वरन् वे पाठ्य-पुस्तक के केवल उन्हीं हिस्से से अपना सम्बन्ध स्थापित करते हैं जो उनकी समस्या से सम्बन्धित होता है।
(6) समस्याओं का छात्रों के मानसिक स्तर के अनुरूप न होने का भय इसमें सदैव बना रहता है।
(7) इस पद्धति में छात्र सदैव अपने निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति कर लेगा, ऐसा सोचना निराधार है।
(8) सभी अध्यापक इस पद्धति का सफलतापूर्वक प्रयोग नहीं कर सकते हैं। इस पद्धति की सफलता अध्यापकों की दक्षता, योग्यता एवं निर्देशन क्षमता पर निर्भर करती है।

कुछ सुझाव (Some Suggestions)

समस्या पद्धति से पढाते समय अध्यापक को अग्रांकित सुझावों को सदैव ध्यान में रखना चाहिए :

(1) समाज का निर्माण एवं चुनाव छात्रों के मानसिक स्तर के अनुरूप ह चाहिए।

(2) समस्या के चुनाव में छात्रों का पूर्ण सहयोग प्राप्त करना चाहिए। यदि स हो तो समस्या का निर्माण स्वयं छात्रों को ही करना चाहिए।

(3) समस्या का निर्माण एवं चुनाव करते समय अध्यापक को अपनी स्वयं योग्यता, छात्रों की आर्थिक व सामाजिक अवस्थायें तथा स्कूल की आर्थिक अवस्था आवश्यक साधनों की उपलब्धि को ध्यान में रखना चाहिए।

(4) समस्या छात्रों के जीवन से सम्बन्धित तथा व्यावहारिक होनी चाहिए।

(5) समस्या पद्धति के साथ यदि विश्लेषणात्मक तथा संश्लेषणात्मक पद्धति सुन्दर मिश्रण कर दिया जाये तो अच्छे परिणामों की आशा की जा सकती है।

(6) अध्यापक को बड़ी सावधानी से निर्देशन-कार्य करना चाहिए।

4. विश्लेषणात्मक एवं संश्लेषणात्मक पद्धति

(ANALYTIC AND SYNTHETIC METHOD)

वास्तविक रूप में इस पद्धति का निर्माण शिक्षण की दो विधियों—विश्लेषण संश्लेषण से मिलकर हुआ है। इसमें विश्लेषण वह क्रिया है जिसमें सम्बन्धित विषय-व का विचारात्मक प्रश्नों के माध्यम से सूक्ष्मातिसूक्ष्म विवेचन किया जाता है और संश्लेष वह क्रिया है जिससे अव्यवस्थित विषय-वस्तु को संक्षिप्त में व्यवस्थित किया जाता तथा व्यवस्था के पश्चात् ज्ञात का सम्बन्ध अज्ञात से स्थापित किया जाता है।

"It is a process of putting together known bits of information to rea the point where unknown information becomes obvoius and clear."

—**Smt. Kochhar,** *Ibid*, p. 35

विश्लेषणात्मक पद्धति के अनुसार प्रस्तुत समस्या की विस्तृत व्याख्या की जाती और समस्या के छिपे हुए पहलुओं का पता लगाया जाता है। इस प्रकार विश्लेषणात्म पद्धति में हम उस तथ्य को ज्ञात करना चाहते हैं, जो अज्ञात है। इस प्रक विश्लेषणात्मक पद्धति में हम अज्ञात से ज्ञात की ओर बढ़ते हैं।

विश्लेषण के ठीक विपरीत संश्लेषण में हम ज्ञात से अज्ञात को चलते ह संश्लेषण-पद्धति में हमें जो कुछ ज्ञात है, उसके आधार पर अज्ञात की ओर बढ़ते हैं। ह जो कुछ अव्यवस्थित रूप से जानते हैं, उसे व्यवस्थित कर अनेक अज्ञात समस्याओं क समाधान कर लेते हैं।

विश्लेषणात्मक पद्धति एवं संश्लेषणात्मक पद्धति में अपने-अपने गुण और दोष ह इस पद्धति को और भी अधिक गुणकारी एवं उपयोगी बनाने हेतु दो ही पद्धतियों क मिला-जुला रूप प्रयोग करना अत्यन्त सुविधाजनक होता है। दूसरे, विश्लेषण क संश्लेषण से पृथक नहीं किया जा सकता है। विश्लेषण में हम विषय की व्याख्या कर हैं और यह पता लगाते हैं कि इन खण्डों को किस प्रकार पुनः सम्बन्धित किया ज सकता है। इस प्रकार विश्लेषण → संश्लेषण → विश्लेषण। विश्लेषण विषय-वस्तु क समझने में सहायता करता है तो संश्लेषण विषय-वस्तु को याद करने में सहायता दे है। इसलिए वाणिज्यशास्त्र के शिक्षण में किसी एक विशेष पद्धति-विश्लेषण या संश्लेष को न अपना कर हम दोनों ही पद्धतियों के मिले-जुले रूप का प्रयोग करते हैं और दो

पद्धतियों के मिले-जुले रूप को ही हम एक पद्धति मानकर चलते हैं क्योंकि दोनों ही पद्धतियाँ एक ही पहलू के अंग हैं।

पद्धति के गुण (Merits of the Method)

विश्लेषणात्मक तथा संश्लेषणात्मक पद्धति में निम्नलिखित गुण हैं—

(1) इस पद्धति में प्रश्नों का बाहुल्य होता है। छात्र अध्यापक द्वारा पूछे गये प्रश्नों का उत्तर देते हैं। उत्तर देने से पूर्व उत्तर सोचना पड़ता है। सोचने में मानसिक क्रिया निहित रहती है। इस प्रकार इस पद्धति में छात्रों के मस्तिष्क सक्रिय रहते हैं, अतः उनका मानसिक विकास अच्छा होता है।

(2) यह पद्धति छात्रों के सभी संकेतों का निवारण कर उन्हें पूर्णरूप से सन्तुष्ट करती है।

(3) इस पद्धति के अन्तर्गत छात्र अध्यापक द्वारा पूछे गये प्रश्नों के प्रति अत्यधिक सजग रहते हैं, अतः अनुशासनहीनता की समस्या स्वतः ही हल हो जाती है।

(4) यदि प्रश्न समुचित ढंग से पूछे जायें तो यह पद्धति कक्षा-शिक्षण को अधिक रोचक तथा आकर्षण बना देती है।

पद्धति के दोष (Demerits of the Method)

उपरोक्त गुणों के साथ ही साथ इस पद्धति में निम्नांकित दोष भी पाये जाते हैं :

(1) यह पद्धति काफी समय चाहती है।

(2) यह पद्धति व्यक्तिगत विभिन्नताओं के सिद्धान्तों पर आधारित नहीं है।

(3) छात्रों से पूछे गये प्रश्नों को देने की ही आशा की जाती है। उन्हें अपनी समस्याओं से सम्बन्धित प्रश्न पूछने के अवसर प्रदान नहीं किये जाते हैं।

(4) इस पद्धति से वाणिज्यशास्त्र की सम्पूर्ण विषय-वस्तु की शिक्षा प्रदान नहीं की जा सकती है।

कुछ सुझाव (Some Suggestions)

पद्धति को अधिक प्रभावशाली बनाने हेतु अध्यापक को निम्नांकित सुझावों को ध्यान में रखना चाहिए—

(1) विश्लेषण तथा संश्लेषण का आदर्श रूप में शिक्षण किया जाये। दोनों की जहाँ आवश्यकता पड़े, प्रयोग करना चाहिए और इस प्रयोग में दोनों के पृथक्-पृथक् कार्यों को पूरी तरह से ध्यान रखना चाहिए।

(2) प्रश्नों को यथाविधि रूप से पूछा जाये। प्रश्नों के सम्बन्ध में आगामी अध्याय में विस्तृत रूप से व्याख्या की गयी है। अध्यापक के लिए केवल प्रश्न पूछना ही काफी नहीं है। अध्यापक को अच्छी तरह प्रश्न पूछना जितना आवश्यक है, प्रश्नों के उत्तर निकलवाना एवं उनके उत्तरों को समझना भी उतना ही आवश्यक है।

(3) श्यामपट-कार्य बड़ी सावधानी से करना चाहिए।

(4) प्रश्न पूरी कक्षा में फैले हुए होने चाहिए। किसी एक विशेष छात्र या छात्रों के एक विशेष समूह से ही प्रश्न पूछना ठीक नहीं। प्रत्येक छात्र से प्रश्न पूछे जायें या कम से कम प्रत्येक छात्र पूछने की सम्भावना रखी जाये, जिससे प्रत्येक छात्र प्रश्न का उत्तर सोचने को मजबूर हो।

5. सामाजीकृत अभिव्यक्ति पद्धति
(SOCIALIZED RECITATION METHOD)

विभिन्न मनोवैज्ञानिक खोजों (Findings) के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला गया कि वे समस्त शिक्षण पद्धतियाँ, जिनमें छात्र निष्क्रिय श्रोतामात्र रहता है एवं शि सक्रिय रहता है, शिक्षा के दृष्टिकोण से उपयोगी नहीं है। फलत इस प्रकार पद्धतियों का आविष्कार किया गया, जिनमें छात्र सक्रिय भाग ले सकें तथा अध्यापक कार्य केवल पथ-प्रदर्शन करना भर ही रह जाय। इन्हीं पद्धतियों में से सामाजि अभिव्यक्ति पद्धति भी एक है। इस पद्धति के अन्तर्गत छात्र सहयोग तथा सद्भाव आधार पर कार्य करके ज्ञानार्जन करते हैं।

सामाजीकृत अभिव्यक्ति की परिभाषा (Definition of the Socialized Recitatio

बिनिंग तथा बिनिंग ने समाजीकृत अभिव्यक्त-पद्धति के दो रूपों, संकुचित त विस्तृत का वर्णन किया है। संकुचित अर्थ में सामाजीकृत अभिव्यक्ति की परिभाषा हुए लेखकद्वय कहते हैं : "यह एक ऐसी क्रिया है जिसमें अध्यापक कालांश को कक्षा छात्रों द्वारा चुनी गयी समिति को सौंप देता है तथा कक्षा-कार्य से अपने को पूर्णत पृथक कर लेता है।"

"The procedure is one in which the teacher turns the periods over the class or to a committee chosen by the pupils and then withdraws entire from any participation in the activities of the class."

—**Bining & Bining**, *op. cit.*, 13

इसका दूसरा रूप विस्तृत रूप है। इस रूप में "कोई कक्षा कार्यकाल, सामूहिक चेतना तथा व्यक्तिगत दायित्व की भावना का प्रदर्शन करे, सामाजीकृ अभिव्यक्ति है।"

"Any class-session that exhibits group consciousness and the fe ing of individual responsibility towards the group is a socialized rectitation

लेखकद्वय इस पद्धति के द्वितीय रूप को उत्तम बतलाते हैं। पद्धति के द्विती रूप में विद्यालय के वातावरण को पूर्णरूपेण सामाजिक बनाने हेतु विद्यालय को समा का ही एक लघु रूप (Miniature) बना दिया जाता है। इस पद्धति का मूल उद्दे छात्रों को सामाजीकरण करना है। इस पद्धति के अन्तर्गत छात्र को अधिक से अधि दायित्व दिये जाते हैं, उसे शिक्षा के किसी खण्ड का नेता बना दिया जाता है सामाजिक सुविधायें प्रदान की जाती हैं। प्रत्येक खण्ड समस्त कक्षा के कल्याण सामूहिक रूप से कार्य करता है तथा प्रत्येक व्यक्तिगत छात्र के व्यक्तित्व का आ करता है। इसके लिए कक्षा का संचालन विशेष रूप से करना पड़ता है। कक्षा-संचाल में अध्यापक को सामाजिक तत्वों का विशेष ध्यान रखना पड़ता है। यदि अध्यापक छा के सामाजिक जीवन से परिचित नहीं होता है तो वह कक्षा का संचालन सफलतापू नहीं कर सकता है। अध्यापक छात्रों को उन सभी क्रियाओं तथा कार्यों के सम्बन्ध में प् स्वतन्त्रता प्रदान करता है जो समूह के कल्याण से सम्बन्धित हैं। इस प्रक सामाजीकृत अभिव्यक्ति का मूल उद्देश्य छात्रों को मित्रतापूर्ण सामूहिक जीवन व्यत करने योग्य बनाना है।

"The one important aim of the socialized class-room is to increase activity on the part of the pupils and to teach them to live, to work and to play together in a friendly co-operative way."

—**Yoakam & Simpson**, p. 218.

सामाजीकृत अभिव्यक्ति का संगठन (Organization of Socialized Recitation)

सामाजीकृत अभिव्यक्ति-पद्धति के अन्तर्गत शिक्षण-प्रणाली (Teaching Procedure) कई प्रकार से प्रयोग की जा सकती है। इस प्रणाली के अनुसार कक्षा के सभी छात्र एक वक्राकार घेरे में बैठते हैं। शिक्षक भी छात्रों के साथ स्थान ग्रहण करता है। कक्षा-कार्य का संचालन किसी एक छात्र को सौंप दिया जाता है। कक्षाकार्य के कार्यक्रम में छात्र प्रश्नोत्तर तथा अन्य विधियों से ज्ञान प्राप्त करते हैं। इस संचालन के अन्त में अध्यापक, यदि कक्षा-कार्य में कोई त्रुटि पाता है, तो कक्षा के समाप्ति के भाषण के पश्चात् अपने भाषण के द्वारा उन त्रुटियों को दूर कर सकता है। जिस छात्र को कक्षा-कार्य संचालित करने का भार सौंपा जाता है, वह सभापति कहलाता है।

दूसरी प्रणाली के अनुसार प्रत्येक दिन के लिए पाठ को कई उप-खण्डों में विभक्त कर दिया जाता है और प्रत्येक उप-खण्ड के लिए एक छात्र-नेता का चुनाव कर दिया जाता है। पाठ के जितने उप-खण्ड होंगे, उतने ही छात्र नेताओं की आवश्यकता पड़ेगी। प्रत्येक छात्र-नेता अपने उप-खण्ड के अध्यापन एवं अध्ययन हेतु अपनी सूझ-बूझ के अनुसार योजनायें बनाता है तथा कार्य-विधि निर्धारित करता है। कक्षाध्यापक छात्र-नेताओं की विभिन्न योजनाओं तथा कार्य-विधियों की जाँच करके अपनी स्वीकृति प्रदान करता है। कार्यकाल में छात्र-नेता अपने उपखण्ड से सम्बन्धित प्रश्न पूछेगा, वाद-विवाद करेगा, आलोचना-समालोचना हेतु छात्रों को कहेगा तथा छात्रों से उप-खण्ड की किसी समस्या पर अपने विचार व्यक्त करने को कहेगा। इस प्रकार छात्र-नेता अपने उप-खण्ड के सम्बन्ध में अपनी योजना के अनुसार कुछ भी कार्य करा सकता है। अन्त में छात्र-नेता यदि कुछ अतिरिक्त ज्ञान प्रदान करना चाहता है तो वह कर सकता है। सबसे अन्त में अध्यापक भी अपने विचार व्यक्त कर सकता है।

एक अन्य प्रणाली के अनुसार कक्षा में ही एक सभापति, सचिव तथा कुछ समितियाँ बना ली जाती हैं। प्रत्येक समिति को एक-एक पाठ या पाठ का एक-एक खण्ड दे दिया जाता है। प्रत्येक समिति अपने-अपने पाठ या खण्ड के सम्बन्ध में विस्तृत योजनायें बनाती है और अपने पाठ या खण्ड के सम्बन्ध में विभिन्न साधनों से सूचनायें एकत्रित कर अन्य समितियों तक वाद-विवाद, प्रश्नोत्तर तथा ऐसी ही अन्य विधियों से पहुँचाती है।

इस दृष्टि से शिष्ट प्रतियोगिता की भावना जाग्रत करने के दृष्टिकोण से कक्षा को कई समूहों में विभक्त करने के स्थान पर कभी-कभी केवल दो ही समूहों में विभक्त कर दिया जाता है। प्रत्येक समूह को पृथक्-पृथक् पाठ या पाठों के खण्ड दे दिये जाते हैं। प्रत्येक खण्ड अपने-अपने निर्धारित पाठ या उप-खण्डों के सम्बन्ध में विभिन्न साधनों से अधिकाधिक ज्ञान प्राप्त करके कक्षा में आते हैं। कक्षा में एक समूह दूसरे समूह से उसको दिये गये पाठ या उप-खण्ड से सम्बन्धित प्रश्न पूछता है। उत्तर दे पान या देने में असफल हो जाने पर समूह को विभिन्न प्रकार से अंक प्रदान किये जाते हैं। अन्त में, जो समूह अधिक अंक प्राप्त करता है, वह विजयी माना जाता है।

यदि हम सरसरी नजर से देखें तो पाते हैं कि सामाजीकृत अभिव्यक्ति के वि
संगठनों के अन्तर्गत छात्र ही प्रमुख रहते हैं। वे ही समस्त क्रियायें सम्पादित करते
तथा छात्र ही अपनी कक्षा का संचालन करते हैं, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं लगा
चाहिए कि अध्यापक के कुछ कर्त्तव्य नहीं रह जाते। वास्तव में, देखा जाये तो
पद्धति के अन्तर्गत अध्यापक के कर्त्तव्य ही कहीं अधिक बढ़ जाते हैं। कक्षा-कार्य प्रा
होने से बहुत पहले ही शिक्षक के कर्त्तव्य प्रारम्भ हो जाते हैं। शिक्षक ही कक्षा का प्र
होने के नाते, कक्षा की उन्नति, छात्रों में उचित सामाजिकता तथा आदर्श जाग्रत करने
लिए उत्तरदायी होता है। इसलिए उसे अत्यन्त दूरदर्शिता के साथ योजनायें बना
पड़ती हैं। उसे छात्रों तथा छात्रों की सामाजिक परिस्थितियों को समझना पड़ता
क्योंकि इस प्रकार से ज्ञान के बिना सोद्देश्य योजना बना पाना बड़ा कठिन होता
योजना बनाने के उपरान्त जब वास्तव में सामाजीकृत अभिव्यक्ति की कक्षा प्रारम्भ हो
है तो शिक्षक को और भी अधिक कार्य करना पड़ता है। इस समय वह एक पथ-प्रदर्श
सहायक, परामर्शदाता, योगक, संचालक तथा मापनकर्ता के रूप में कार्य करता है।
छात्रों की त्रुटियों को सुधारता है तथा गलत रास्ते पर जाने पर सही रास्ते पर लाता
इस प्रकार समाजीकृत अभिव्यक्ति पद्धति शिक्षक के महत्व को कम न करके अधि
बढ़ाती है।

समाजीकृत अभिव्यक्ति पद्धति की सफलता अध्यापक की योग्यता, दक्षता औ
नेतृत्व-गुणों पर निर्भर करती है। अध्यापक किस प्रकार छात्रों के समूह बनाता है, कि
प्रकार कार्य का निर्धारण करता है, किस प्रकार पाठों को विभिन्न उप-खण्डों में विभ
करता है, किस प्रकार छात्रों का निर्देशन करता है आदि बातों पर इस पद्धति
सफलता निर्भर करती है। इस पद्धति की उपरोक्त वर्णित प्रणालियों का रूप उत्त
महत्वपूर्ण नहीं है जितना प्रणालियों का नियन्त्रित तथा योजित करना। योजना बना
समय अध्यापक को अनेक बातों का ध्यान रखना पड़ता है, यथा शिक्षा के सामान्य
विशिष्ट उद्देश्य, उपलब्ध साधन, व्यक्तिगत विभिन्नतायें, छात्रों का मानसिक स्तर, छात्र
के बैठने की व्यवस्था, विद्यालय तथा छात्रों की आर्थिक एवं सामाजिक दशायें आदि
अतः इस पद्धति का अनुसरण करते समय अध्यापक को इस प्रणाली की अपेक्षा कक्ष
तथा पाठ-योजना पर अधिक ध्यान देना चाहिए।

पद्धति के गुण (Merits of the Method)

सामाजीकृत अभिव्यक्ति पद्धति के समर्थक इस पद्धति में निम्नांकित गुण बतलाते हैं :

(1) इस पद्धति के अनुसार शिक्षण-कार्य करते समय शिक्षण-कार्य में छात्र अधिक सक्रिय रूप से भाग लेते हैं। वे दिये गये कार्य के सम्बन्ध में अधिक से अधिक जानकारी की चेष्टा करते हैं, जिससे वे अन्य छात्रों द्वारा पूछे गये प्रश्नों का उत्तर दे सकें।

(2) सामाजीकृत अभिव्यक्ति पद्धति उन सभी सामग्रियों, विधियों, समस्याओं तथा योजनाओं का सफलतापूर्वक प्रयोग कर सकती है, जिन्हें शिक्षण की अन्य पद्धतियों में प्रयोग किया जाता है।

"The socialized procedure can make use of all the devices, projects, problems and activities that are available under other methods."—**Wesly & Wronski**, *Teaching Social Studies in High Schools*, p. 419.

(3) इस पद्धति के अन्तर्गत छात्र योजनायें बनाना सीख जाते हैं। नेता या सभापति अपने समूह को दिये गये कार्य के सम्बन्ध में स्वयं ही विस्तृत योजना बनाता है। इस प्रकार छात्रयोजित अध्ययन (Planned Study) करना सीख जाते हैं।

(4) कक्षा का एक समूह प्रश्न पूछता है तथा समस्यायें खड़ी करता है तो दूसरा समूह प्रश्नों का उत्तर देता है और समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करता है। इस प्रकार छात्रों में तर्क-शक्ति का विकास होता है।

(5) यह पद्धति आत्म-प्रदर्शन, आत्म-विश्वास तथा चिन्तन-शक्ति का विकास करती है। आत्म-प्रदर्शन इस पद्धति का महान गुण है। इस पद्धति द्वारा छात्र अपने विचारों को स्वतन्त्रतापूर्वक व्यक्त कर सकता है।

"One of the greatest value in the method lies in the opportunity that it gives to the pupil express his thoughts."

—**Bining & Bining**, *op. cit.*, p.139.

(6) यह पद्धति छात्रों में नेतृत्व-गुणों का विकास करती है। कक्षा-कार्य-संचालन का भार छात्रों में से ही किसी एक छात्र को सौंप दिया जाता है। इस प्रकार उसमें दिये गये कार्य को संचालित करने की योग्यता का विकास होता है।

(7) सामाजीकृत अभिव्यक्ति पद्धति कार्य-निर्धारण को सुगम बताती है, छात्रों को सक्रिय करती है तथा विद्यालय-नियन्त्रण का उदासीकरण करती है।

"The socialized procedure has brought about more significant assignment, more student activities and in some instances, liberalization of school control."

—**Wesley & Wronski**, *Ibid*, p. 419.

(8) इस पद्धति के अन्तर्गत छात्र तथा शिक्षक के सम्बन्ध मधुर होते हैं।

(9) यह पद्धति छात्रों में सहकारिता तथा सहयोग की भावना का विकास करती है। एक समूह द्वारा पूछे गये प्रश्न का उत्तर दूसरा समूह मिल-जुल कर देता है तथा दिये गये कार्य को पूरा समूह करता है।

(10) यह पद्धति छात्रों को पढ़ने तथा सीखने के लिए भली प्रकार से प्रेरित करती है।

छात्र अध्यापक को बताने हेतु नहीं पढ़ता, वरन् अपने ही साथियों को बताने हेतु पढ़कर आता है। अतः अपने समूह में अपना प्रभुत्व जमाने हेतु वह अधिक से अधिक पढ़कर आता है, जिससे वह विरोधी समूह द्वारा पूछे गये प्रश्नों का उत्तर अच्छा से अच्छा दे सके। पढ़ने में उसकी रुचि जाग्रत हो जाती है। जहाँ रुचि हो, वहाँ प्रेरणा स्वतः ही जाग्रत हो जाती है इस प्रकार यह पद्धति अन्य पद्धतियों से अच्छी है।

पद्धति के दोष (Demerits of the Method)

इस पद्धति में उपरोक्त गुणों के होने के साथ ही साथ निम्नांकित दोष भी पाये जाते हैं—

(1) यह पद्धति शिक्षक के महत्व को बिलकुल ही घटा देती है। फलतः कक्षा में अनुशासनहीनता की समस्यायें पैदा हो जाती हैं।

(2) इस पद्धति में सबसे अधिक महत्वपूर्ण स्थान अध्यापक द्वारा बनायी गयी योजना पाठ को खण्डों में विभाजित करना, छात्रों का उचित निर्देशन तथा अपने अन्तिम

समापन-भाषण को प्राप्त है। यदि अध्यापक इन कार्यों को सफलतापूर्वक नहीं कर पाता है तो यह सम्भव है कि छात्र पथभ्रष्ट हो जायें और इस विषय की शिक्षा के उद्देश्यों को ही प्राप्त न कर सकें।

(3) कभी-कभी कक्षा में व्यर्थ के वाद-विवाद होने का भय रहता है। छात्र मूल विषय को छोड़ इधर-उधर का वाद-विवाद कर समय नष्ट कर सकते हैं।

(4) सभी छात्र कार्य संचालन में समान रूप से भाग लेंगे, ऐसा नहीं भी हो सकता है। प्रायः यह देखा जाता है कि कक्षा कार्य संचालन में कुछ गिने चुने छात्र ही भाग लेते हैं।

(5) इस पद्धति द्वारा वाणिज्य विषय की सम्पूर्ण विषय वस्तु नहीं पढ़ाई जा सकती है।

कुछ सुझाव (Some Suggestions)

इस पद्धति को दोष रहित तथा अधिक उपयोगी बनाने हेतु वाणिज्य अध्यापक को निम्नांकित सुझावों को ध्यान में रखना चाहिए—

(1) अध्यापक को चाहिए कि वह समूह-निर्माण तथा कार्य-निर्धारण अत्यन्त सावधानी से करे। ऐसा करते समय अध्यापक को छात्रों के मानसिक स्तर, उनकी आर्थिक व सामाजिक अवस्थायें तथा व्यक्तिगत विभिन्नताओं को पूरा-पूरा ध्यान में रखना चाहिए।

(2) अध्यापक को चाहिए कि वह छात्रों को कक्षा कार्य में समान रूप से भाग लेने के अवसर प्रदान करे। इससे सभी छात्र समान रूप से सक्रिय रहेंगे।

(3) वाणिज्य अध्यापक के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह एक समय में एक ही पद्धति को अपनाये। अच्छे परिणाम प्राप्त करने हेतु, उसे इस पद्धति के साथ ही साथ अन्य पद्धतियों का सहारा भी लेना चाहिए।

(4) कमजोर छात्रों को विशेष सुविधायें प्रदान करनी चाहिये। जो बालक झिझकते हैं, शंकालु तथा लजीले होते हैं, उनको मुख्य भूमिका अदा करने के अवसर देकर अध्यापक उनकी झिझक तथा शंका को दूर सकते हैं।

(5) व्यर्थ तथा असम्बन्धित वाद-विवाद को प्रोत्साहन नहीं देना चाहिए। यदि ऐसा हो तो अध्यापक को अपने कुशल निर्देशन के द्वारा उसे 'विषय' से सम्बन्धित कर देना चाहिए।

(6) इस पद्धति का प्रयोग केवल कुशल एवं दक्ष अध्यापकों को ही करना चाहिए।

6. निरीक्षण अध्ययन पद्धति
(SUPERVISED STUDY METHOD)

निरीक्षण अध्ययन पद्धति को कुछ लोग निर्देशित अध्ययन पद्धति भी कहते हैं। कहा किसी भी नाम से जाय, दोनों में कोई अन्तर नहीं है। प्रस्तुत अध्ययन में इस पद्धति को निरीक्षित अध्ययन पद्धति के नाम से ही पुकारा जायेगा, क्योंकि "निर्देशित अध्ययन" शब्द इस पद्धति के स्वभाव का पूर्णरूपेण प्रतिनिधित्व नहीं करते हैं। निरीक्षित अध्ययन पद्धति का विकास, परम्परागत शिक्षण पद्धतियों के दोषों तथा कमियों को दूर करने हेतु 19वी शताब्दी के अन्तिम वर्षों में हुआ और सामाजिक विषयों का शिक्षण इस पद्धति के द्वारा अत्यन्त सफलता से होने लगा।

निरीक्षित अध्ययन पद्धति के अनुसार शिक्षण-कार्य किस प्रकार सम्पादित किया जाता है, यह जानने के पूर्व इस पद्धति का रूप जान लेना आवश्यक है। निरीक्षित अध्ययन पद्धति वह पद्धति है जिसके अन्तर्गत "अध्यापक द्वारा कक्षा तथा छात्रों के एक समूह का उस समय निरीक्षण किया जाता है जब वे अपनी डेस्कों या मेजों पर कार्यरत होते हैं।" इस पद्धति की विभिन्न विशेषताओं पर प्रकाश डालते हुए **वैस्ले** महोदय ने लिखा है—"इस पद्धति की सबसे प्रमुख विशेषता अध्यापक की देख-रेख में अध्ययन-कालांश की व्यवस्था है। यह अध्ययन कालांश या तो एक अभिव्यक्ति-कालांश का या दो कालांशों का एक हिस्सा हो सकता है। यह अभिव्यक्ति से पहले या बाद में किया जा सकता है। कभी-कभी अध्यापक निरीक्षित अध्ययन में व्यतीत करने हेतु निर्णय ले सकता है।" क्लार्क तथा स्टार ने निरीक्षित अध्ययन पद्धति की परिभाषा देते हुए लिखा है—"निरीक्षित अध्ययन पद्धति छात्रों को निर्देशन में अध्ययन करने तथा अध्यापक को निरीक्षण एवं निर्देशित करने के अवसर प्रदान करता है।" निरीक्षित अध्ययन पद्धति की परिभाषा देते हुए **क्लौसमियर** ने लिखा है "निरीक्षित अध्ययन कालांश में छात्र अध्यापक द्वारा दिये गये कार्य, छात्रों द्वारा प्रारम्भ की गई क्रियाओं तथा विभिन्न प्रकार की व्यक्तिगत योजनाओं पर कार्य करते हैं तथा अध्यापक प्रत्येक छात्र की सहायता करता है। शैक्षिक कालांश का आधा या कभी-कभी आधे से अधिक कालांश निरीक्षित अध्ययन हेतु और बाकी वाद-विवाद, व्याख्या आदि के लिए प्रयोग किया जाता है।"

निरीक्षित अध्ययन पद्धति में अध्यापक द्वारा कार्य-निर्धारण करना अत्यधिक महत्व रखता है। वास्तविक रूप से इस पद्धति की सफलता ही कार्य-निर्धारण तथा छात्रों द्वारा कार्य के सम्पादित करने की विधि पर निर्भर है। यदि कक्षा का स्तर समान है तो सम्पूर्ण कक्षा को एक ही कार्य दे देना चाहिए। कार्य यदि मौन-वाचन से सम्बन्धित है तो लिखित प्रश्न या समस्यायें भी उन्हें दी जा सकती हैं। कार्य उन्हें किसी भी प्रकार दिया जाये, स्पष्ट होना चाहिए। कार्य-निर्धारण अत्यन्त सोच-समझकर, योजना तथा शिक्षा के उद्देश्यों को ध्यान में रखकर दिया जाना चाहिए। यदि कक्षा का स्तर समान नहीं है कक्षा में तीव्र बुद्धि एवं मन्द बुद्धि दोनों ही पढ़ते हैं तो वहाँ कार्य निर्धारण करते समय तीव्र बुद्धि, औसत बुद्धि तथा मन्द बुद्धि तीनों ही प्रकार के छात्रों के लिए पृथक्-पृथक् कार्य निर्धारण होना चाहिए। वाणिज्य में राष्ट्रपति के सम्बन्ध में तीव्र, सामान्य तथा मन्द बुद्धि बालकों को क्रमशः चुनाव अधिकार, योग्यतायें, शीर्षक कार्य-निर्धारण के रूप में दिये जा सकते हैं। नीचे इन तीनों ही श्रेणियों के छात्रों द्वारा सम्पन्न करने हेतु दिये जाने वाले कार्य का एक उदाहरण दिया गया है—

1. न्यूनतम कार्य

(1) राष्ट्रपति पद के लिए रखी गयी योग्यताओं की उपयोगिता व आवश्यकताओं को ज्ञात करो।

(2) उपरोक्त दो कार्यों को पूरा करने के उपरान्त अपनी पुस्तकें बन्द कर दो और जो कुछ पढ़ा है उसको संक्षिप्त में लिखो।

2. सामान्य कार्य

(3) राष्ट्रपति के अधिकार व कर्तव्यों को पढ़ो तथा उन्हें अपनी अभ्यास-पुस्तिका में संक्षिप्त रूप में लिखो।

3. अधिकतम कार्य

(4) राष्ट्रपति की चुनाव-प्रणाली का अध्ययन करो तत्पश्चात् एक काल्पनि उदाहरण लेकर स्पष्ट करो।

व्यक्तिगत विभिन्नताओं पर आधारित कार्य-निर्धारण अत्यन्त कठिन है, अत: इ सम्बन्ध में अध्यापक को विशेष सावधानी रखनी चाहिए। ऐसा कार्य निर्धारण करते स अध्यापक को उपलब्ध साधनों तथा छात्रों की विशेषताओं का बराबर ध्यान रख चाहिए।

निरीक्षित अध्ययन पद्धति में कार्य निर्धारण के अतिरिक्त दूसरा महत्वपूर्ण त छात्रों में निर्धारित कार्य को समुचित रूप से सम्पादित करने की योग्यता का विक करना है तथा छात्रों को यह बताना है कि किस प्रकार अध्ययन करना चाहि योकाम तथा सिम्पसन ने निम्नांकित योजनाओं के आधार पर अध्ययन करने सिफारिश की है। छात्रों को अपना अध्ययन निम्नांकित क्रम से करने की आदत डाल चाहिए—

(1) शीर्षक पढ़िये।
(2) पाठ को सरसरी तौर से देखिये।
(3) पाठ के अन्त में दिये गये प्रश्नों का प्रयोग कीजिये।
(4) बड़ी इकाइयों का अध्ययन कीजिये।
(5) क्रियात्मक रूप से पढ़िये।
(6) स्वयं सस्वर वाचन कीजिये।
(7) आँकड़े व उदाहरणों को पढ़िये।
(8) अपने शब्दज्ञान को बढ़ाइये।
(9) रटकर याद मत कीजिये।
(10) क्रियात्मक अध्ययन हेतु सहायक-सामग्री प्रयोग कीजिये।
(11) अध्ययन के पश्चात् मूल्यांकन कीजिये।

योकाम तथा सिम्पसन के अनुसार छात्रों को अपना अध्ययन उपरोक्त बिन्दुओं क क्रम से योजित करना चाहिए। छात्रों की योजना के अतिरिक्त अध्यापक भी छात्रों ह योजना का निर्माण कर सकता है। बिनिंग तथा बिनिंग के अनुसार निरीक्षित अध्यय की योजना एक अध्यापक निम्नांकित पाँच रूप में कर सकता है—

(1) सम्मेलन योजना।
(2) विशिष्ट अध्यापक योजना।
(3) काल विभाजन-योजना।
(4) द्विकाल-योजना।
(5) सामयिक योजना।

(1) सम्मेलन-योजना—यह योजना कमजोर एवं दुर्बल छात्रों के लिए है। सामान्य कालांशों के बाद दुर्बल तथा कमजोर छात्रों को रोक लिया जाता है और उनक निरीक्षित अध्ययन-पद्धति से पढ़ाया जाता है। यह सम्मेलन सामयिक एवं ऐच्छिक तथ आवश्यक एवं दैनिक हो सकता है।

(2) विशिष्ट अध्यापक योजना—इस योजना के अन्तर्गत निरीक्षित अध्ययन हेतु पृथक से विशिष्ट अध्यापकों की व्यवस्था की जाती है। इसमें छात्रों के समूह अत्यन्त छोटे-छोटे रखे जाते हैं।

(3) काल-विभाजन योजना—इस योजना में दो अध्यापकों की आवश्यकता पड़ती है। एक अध्यापक शिक्षण कार्य करता है तथा दूसरा निरीक्षण। इसके अलावा कक्षा-कालांश को भी दो भागों में विभक्त कर दिया जाता है। प्रथम भाग में शिक्षण कार्य होता है तथा दूसरे भाग में निरीक्षण-कार्य।

(4) द्विकाल-योजना—इस योजना के अनुरूप एक ही विषय-वस्तु के लिए लगातार दो कालांश रखे जाते हैं। प्रथम कालांश में शिक्षण कार्य होता है तथा दूसरे में निरीक्षण। 45-45 मिनट के लगातार दो कालांशों के 90 मिनट के समय का विभाजन 'मैबेल ई० सिम्पसन' ने निम्न प्रकार किया है।

(i) पुनर्निरीक्षण।
(ii) कार्य निर्धारण।
(iii) शारीरिक व्यायाम।
(iv) कार्य का अध्ययन।

(5) सामयिक योजना—इस योजना के अनुसार दैनिक छात्रों द्वारा ही निरीक्षित अध्ययन न कराकर समय-समय पर कराया जाता है, यथा—साप्ताहिक, मासिक आदि।

कैसे पढ़ा जाए ?

संक्षिप्त में, निरीक्षित अध्ययन पद्धति का एकमात्र उद्देश्य छात्रों को यह सिखाना है कि कैसे पढ़ा जाये ? प्रायः यह देखा जाता है कि उच्चतर माध्यमिक कक्षाओं के छात्र यह नहीं जानते हैं कि किस प्रकार उद्देश्यों को ध्यान में रखकर पढ़ा जाए। विषय-वस्तु को रट भर लेना ही पर्याप्त है। पढ़ना वास्तविक रूप से रटने से कहीं व्यापक अर्थ रखता है। रटना छात्रों में अध्ययन-सम्बन्धी उपयुक्त तथा उपयोगी आदतें नहीं डाल सकता है और न रहने से प्राप्त ज्ञान स्थाई ही होता है।

छात्र उपयोगी रूप से कैसे पढ़ें ? उस प्रश्न का उत्तर केवल छात्रों तक ही सीमित नहीं है। इस सम्बन्ध में अध्यापक के छात्रों के अध्ययन प्रारम्भ करने से पूर्व ही कुछ कर्तव्य हो जाते हैं। उदाहरण हेतु अध्यापक का प्रथम कर्त्तव्य है कि छात्रों के भौतिक वातावरण को अध्ययन के उपयुक्त बना देना। दूसरा कर्तव्य है विषय-वस्तु में छात्रों की रुचि जागृत करना। छात्रों के लिए पर्याप्त प्रकाश तथा हवा की व्यवस्था की जाये, जिसमें अधिक गर्मी-सर्दी नहीं हो, ऐसी व्यवस्था हो। बैठने की व्यवस्था अच्छी प्रकार की गई हो। यही सब बातें अध्ययन करने के भौतिक वातावरण से सम्बन्धित हैं। दूसरा तत्व है मानसिक वातावरण। मानसिक वातावरण में ही हम जाग्रत रुचि को लेते हैं। अध्ययन करने हेतु उपयुक्त मानसिक वातावरण बनाना चाहिए। पढ़ने में छात्रों की रुचि जाग्रत करनी चाहिए। छात्रों की रुचि न केवल पढ़ने में ही जाग्रत करनी चाहिए, वरन् किस प्रकार मितव्ययपूर्वक तथा अधिक से अधिक सरलतापूर्वक पढ़ा जाये, इस सम्बन्ध में भी छात्रों को बताना चाहिए।

भौतिक एवं मानसिक वातावरण के अतिरिक्त दूसरा तत्व है, छात्रों में रटने की प्रवृत्ति को कम करना। रटना शिक्षा के उद्देश्यों को पूरा नहीं करता है। वास्तव में छात्रों

को बताया जाये कि किस प्रकार प्रत्येक पैराग्राफ का अध्ययन किया जाये, और
प्रकार प्रत्येक पैराग्राफ के मुख्य बिन्दु ज्ञात किये जायें तथा किस प्रकार इन
बिन्दुओ को अपनी सुविधा हेतु संगठित तथा व्यवस्थित किया जाये।

छात्रों मे विषय-वस्तु की व्याख्या, विश्लेषण, समालोचना तथा आलोचना करने
निष्कर्ष निकालने की क्षमता का विकास करना चाहिए। इससे छात्र विषय-वस्तु
जैसी पुस्तकों में है वैसी ही नहीं अपनायेंगे। ये विषय-वस्तु को परिवर्तित भी कर
हैं। इस प्रकार छात्रों में व्याख्या विश्लेषण समालोचना तथा आलोचना करने व
निकालने की शक्ति का विकास करके अध्यापक छात्रों में उपयुक्त सर्वश्रेष्ठ तथा
विषय-वस्तु को अपनाने की क्षमता का विकास कर सकता है।

वाणिज्य-अध्यापक को छात्रों के अध्ययन का निरीक्षण करते समय निरीक्ष
अलावा उपरोक्त तथ्यों को भी ध्यान में रखना चाहिए तथा छात्रों को बताना चाहि
किस प्रकार वे बिन्दुओं को ध्यान में रखकर सफल अध्ययन कर सकते हैं। यहाँ पर
बात का ध्यान और रखना चाहिए कि अध्यापक का कार्य छात्रों को केवल यह
बताना है कि कैसे पढा जाये, वरन् इसके साथ ही साथ यह भी बताना है कि
प्रकार मितव्ययपूर्वक और अधिकाधिक सफलता के साथ पढा जाये।

पद्धति के गुण (Merits of the Method)

हम निरीक्षित अध्ययन पद्धति में निम्नांकित गुणों को पाते हैं—

(1) पद्धति व्यक्तिगत विभिन्नताओं पर आधारित है। प्रत्येक छात्र को अपनी
तथा योग्यता के अनुसार अध्ययन करने का अवसर प्राप्त होता है।

(2) यह पद्धति व्यक्तिगत संलग्नता के सिद्धान्त का अनुकरण करती है।

(3) पद्धति में करके सीखने का महान गुण है।

(4) व्यक्तिगत संलग्नता अनुशासनहीनता की समस्या को स्वतः ही दूर
देता है।

(5) दुर्बल तथा कमजोर छात्र इस पद्धति से काफी लाभ उठा सकते हैं।

(6) इस पद्धति के अन्तर्गत छात्र एवं अध्यापक के सम्बन्ध मधुर होते हैं।

पद्धति के दोष (Demerits of the Method)

उपरोक्त गुणों के साथ पद्धति में निम्नांकित दोष भी देखने को मिलते हैं—

(1) यह पद्धति कुशल तथा दक्ष अध्यापकों के द्वारा ही सफलतापूर्वक अपनाई
सकती है।

(2) इस पद्धति से तीव्र बुद्धि बालक अधिक लाभान्वित नहीं हो पाते हैं। यहाँ
कि कभी-कभी तो यह उनके लिए बाधा बन जाती है।

(3) यह पद्धति छात्रों को स्वतन्त्रता पर आघात पहुँचाती है।

(4) यह पद्धति समय अधिक चाहती है। द्विकाल योजना के अन्तर्गत अ
अधिक समय की आवश्यकता पड़ती है।

कुछ सुझाव (Some Suggestions)

उड्ल्यू० एस० मुनरो ने निरीक्षित अध्ययन पद्धति के सम्बन्ध में अपनी पु
'डायरेक्टिंग लर्निंग इन दी हाई स्कूल' में अग्रांकित सुझाव दिये हैं—

(1) भौतिक वातावरण को अध्ययन के दृष्टिकोण से उपयुक्त बनाया जाये।

(2) छात्रों के दिये गये कार्य आदि का लेखा रखा जाये।

(3) कार्य निर्धारण के बाद यथाशीघ्र छात्रों को उस पर कार्य करने को प्रेरित
किया जाये।

(4) छात्र कार्य से सम्बन्धित सभी सामग्री पहले एकत्रित कर लें।

(5) छात्रों को पूरा कार्य करने की दृढ प्रतिज्ञा के साथ करने हेतु बैठने को कहा
जाये।

(6) छात्रों को निर्धारित कार्य के रूप का स्पष्ट ज्ञान करा दिया जाये तथा पहले
पाठ की तरफ भी ध्यान दिया जाये।

(7) पाठ के अन्त में छात्रों से पाठ का सारांश लिखने को कहा जाये।

(8) अस्पष्ट तथ्यों को छात्रों को रेखांकित करने कहा जाये जिससे वे उस
सम्बन्ध में अध्यापक से प्रश्न पूछ सकें।

(9) छात्र उस समय तक पढ़ें जब उनकी समस्या हल न हो जाये।

7. वाद-विवाद पद्धति
(DISCUSSION METHOD)

आधुनिक शिक्षा विचारधाराओं के अनुसार सीखने को सरल, सुगम एवं बोधगम्य बनाने के लिए यह आवश्यक है कि छात्र कक्षा में सक्रिय रूप से भाग लें। उसे कक्षा में एक निष्क्रिय श्रोता-मात्र नहीं रहना है। सामाजिक अभिव्यक्ति पद्धति एवं अन्य क्रियात्मक पद्धतियों ने उपरोक्त सिद्धान्त को पर्याप्त मात्रा में अपनाया। कक्षा-शिक्षण के समय यदि बातचीत की जाये तो वर्तमान शिक्षाविद उसे भी एक शैक्षणिक क्रिया समझते हैं फलतः वे कक्षा में विषय से सम्बन्धित बातचीत तथा वाद-विवाद को भी अब शिक्षा का एक आवश्यक एवं प्रजातान्त्रिक तत्व मानने लगे हैं। कक्षा में विषय-वस्तु से सम्बन्धित योजित वाद-विवाद समय को नष्ट करना नहीं है क्योंकि वाद-विवाद करने के लिए विषय का ठोस ज्ञान होना आवश्यक है। वाद-विवाद के लिए तैयारी करनी पडती है, विषय-वस्तु का चुनाव एवं संगठन करना पड़ता है, विचार-विमर्श करना पडता है, कुछ बातें सीखनी पड़ती हैं, अपने विचारों को स्पष्ट करना पडता है और अन्त में एक सामूहिक निष्कर्ष पर आना पडता है। इस प्रकार योजित वाद-विवाद के निष्कर्ष बडे उपयोगी होते हैं अतः कक्षा को विभिन्न प्रकार के वाद-विवादों पर प्रयोग करने चाहिए।

वाद-विवाद पद्धति की विवेचना करने से पूर्व वाद-विवाद का अर्थ एवं स्वरूप प्राप्त कर लेना आवश्यक है। साधारण बातचीत में पाये जाने वाले विचारों से कहीं अधिक तार्किक एवं विस्तृत रूप में पाये जाने वाले विचारों के आदान-प्रदान को वाद-विवाद कहते हैं।" साधारण रूप में वाद-विवाद में महत्वपूर्ण विचार एवं समस्यायें सम्मिलित की जाती हैं। वाद-विवाद अनावश्यक तथा निरर्थक तथ्यों का संग्रह करना नहीं है। वाद-विवाद शिष्ट तार्किक एवं ज्ञानयुक्त विचार-विमर्श है प्रश्नोत्तर नहीं। वैज्ञानिक वाद-विवाद वह वाद-विवाद है जिसमें सभी समान रूप में भाग लें, परन्तु यह आवश्यक नहीं कि सभी बोलें ही। इसी प्रकार वाद-विवाद व्यक्तियों का अहम् भाव प्रदर्शित करने हेतु बातचीत करना भी नहीं है और न अपने दृष्टिकोण को दूसरों पर लादना ही है,

परन्तु वास्तविक रूप से वाद-विवाद न तो भाषण ही है और न सामाजिक अभिव्यक्ति यह तो इन सभी से पृथक् है।

वाद-विवाद का स्वरूप ज्ञात कर लेने के पश्चात् अब हम वाद-विवाद पद्धति के सम्बन्ध में अध्ययन करेंगे। इस पद्धति के सम्बन्ध में हमारा अध्ययन तीन बिन्दुओं—तैयारी, वाद-विवाद एवं मूल्यांकन तक ही सीमित रहेगा। सबसे पहले हम अध्ययन करेंगे कि वाद-विवाद कराने से पूर्व किस प्रकार की तैयारी करनी चाहिए फिर देखेंगे कि वाद-विवाद किस प्रकार होना चाहिए और अन्त में पढ़ेंगे कि वाद-विवाद का मूल्यांकन किस प्रकार किया जाये ?

वाद-विवाद हेतु तैयारी

बिना किसी योजना तथा पूर्व तैयारी के किसी कार्य को सम्पादित करने का प्रयास करना असफलता का द्योतक है। किसी कार्य में सफलता प्राप्त करने हेतु कार्य को सम्पादित करने से पूर्व योजना बना लेना आवश्यक है। बीच में विघ्न न पड़े, इसके लिए पूर्व तैयारी आवश्यक है। इसी प्रकार वाद-विवाद प्रारम्भ करने से पूर्व योजना बना लेना तथा वाद-विवाद हेतु आवश्यक तैयारी कर लेना सफलता का द्योतक है। अतः अध्यापक को इस सम्बन्ध में पहले ही सभी आवश्यक सामग्री की व्यवस्था कर लेनी चाहिए तथा पूर्व-योजना बना लेना चाहिए।

वाद-विवाद प्रारम्भ करने से पूर्व अध्यापक को कक्षा का वातावरण ऐसा बना देना आवश्यक है जिसमें वे स्वतन्त्रतापूर्वक अपने विचारों का आदान-प्रदान कर सकें। वातावरण जितना अधिक सुखद होगा, उतने ही अच्छे परिणाम प्राप्त होंगे। छात्रों के बैठने की भी विशेष व्यवस्था की जानी चाहिए। सर्वोत्तम व्यवस्था वह है जिसमें सभी छात्र एक-दूसरे को देख सकें। इसके लिए अर्द्धचन्द्राकार में छात्रों की व्यवस्था की जा सकती है। अध्यापक को ऐसे स्थान पर बैठना चाहिए, जहाँ से वह सभी छात्रों पर निगाह रख सके।

वाद-विवाद प्रारम्भ करने के लिए यह भी आवश्यक है कि विषय-वस्तु छात्रों को स्पष्ट हो। अतः अध्यापक को समस्या-प्रस्तुत करते समय ही एक प्रस्तावनात्मक भाषण के द्वारा छात्रों को समस्या का रूप बदल देना चाहिए।

समस्या का निर्माण किसी क्रिया से सम्बन्धित होना चाहिए। यदि समस्या किसी क्रिया से सम्बन्धित है तो छात्र उसमें अधिक रुचि लेंगे।

वाद-विवाद हेतु पहले से तैयारी करना, जिस प्रकार अध्यापक के लिए आवश्यक है, ठीक उसी प्रकार छात्रों के लिए तैयारी करना भी आवश्यक है। किसी दी हुई समस्या का जब तक छात्र भली प्रकार अध्ययन करके नहीं आते वे वाद-विवाद में भली प्रकार भाग न ले सकेंगे। अतः छात्रों को पहले से ही समस्या दे देनी चाहिए और छात्रों को इस समस्या का अध्ययन करके वाद-विवाद हेतु तैयारी कर लेनी चाहिए। वाद-विवाद हेतु छात्र किस प्रकार से अध्ययन करें ? इस सम्बन्ध में वेस्ले तथा रास्की महोदय ने निम्नांकित सुझाव दिये हैं—

(1) विषय-वस्तु तथा समस्या का हर समय ध्यान रखो।
(2) प्रत्येक सर्वोत्तम साधन से सूचनायें एकत्रित करो।
(3) मासिक पत्रिकायें तथा पुस्तिकायें आदि पढ़ो।

(4) समाचार पत्रों का अध्ययन करो।
(5) पाठ के महत्वपूर्ण भागों को ध्यानपूर्वक पढ़ो।
(6) सोद्देश्य रूप से पढ़ो। निरर्थक तथ्यों को छोड़ दो।
(7) आलोचनात्मक रूप से पढ़ो।
(8) वस्तुनिष्ठ रूप से पढ़ो।
(9) तथ्यों तथा विचारों में अन्तर करके पढ़ो।
(10) लेखक के विचारों को समझने के लिए धैर्यपूर्वक पढ़ो।
(11) पढ़ने से अपनी सूचनाओं के भण्डार में वृद्धि करो।
(12) पढ़कर निष्कर्ष निकालिये एवं सामान्यीकरण कीजिये।
(13) अन्त में पाठ का सारांश निकालिये।
(14) मुख्य बिन्दुओं को तार्किक रूप से समझाइये।
(15) सावधानीपूर्वक तैयारी कीजिये।

वाद-विवाद का संचालन

वाद-विवाद का प्रारम्भ छात्र तथा अध्यापक दोनों में कोई भी कर सकता है। वाद-विवाद का प्रारम्भ छात्र या अध्यापक कोई कहानी कहकर, कोई समस्या खड़ी करके, कोई चित्र दिखाकर, कोई वस्तु दिखाकर या किसी घटना का वर्णन करके कर सकते हैं। किस प्रकार वाद-विवाद प्रारम्भ किया जाये, यह वाद-विवाद के उद्देश्यों पर निर्भर करता है। वाद-विवाद प्रारम्भ हो जाने पर उसे अपने उद्देश्यों तक पहुँचाने की आवश्यकता पड़ती है। इसके लिए योग्य संचालन जरूरी है। संचालन इस प्रकार किया जाये कि वाद-विवाद में भाग लेने वाले सभी छात्र अपने विचारों को सरलता, स्वतन्त्रता, तथा इच्छानुसार व्यक्त कर सकें। संचालक को वाद-विवाद के द्वारा पूर्व निर्धारित उद्देश्यों की तरफ सदैव ध्यान रखना चाहिए। वाद-विवाद को उद्देश्यों की ओर ले जाने के लिए बीच-बीच में प्रश्नों का सहारा लिया जा सकता है। किन्हीं विशेष तथ्यों की व्याख्या भी की जा सकती है, कुछ बिन्दुओं का विश्लेषण भी किया जा सकता है और अन्त में सम्पूर्ण वाद-विवाद का सारांश भी निकाला जा सकता है। इस प्रकार वाद-विवाद के संचालन में निम्नांकित चार बिन्दु सम्मिलित होते हैं—

(1) प्रारम्भ
(2) विश्लेषण
(3) व्याख्या
(4) सारांश

वाद-विवाद के संचालन की व्यवस्था का जहाँ तक प्रश्न है, वाद-विवाद हेतु कक्षा को या तो विभिन्न टुकड़ों में विभाजित किया जा सकता है, या सम्पूर्ण कक्षा एक साथ ही वाद-विवाद कर सकती है। यदि कक्षा टुकड़ों में विभाजित की जाती है, तो प्रत्येक टुकड़े में चार-पाँच से अधिक छात्र नहीं रखने चाहिए। प्रत्येक टुकड़ा दी हुई समस्या के सम्बन्ध में परस्पर वाद-विवाद कर एक निष्कर्ष पर पहुँचेगा और अन्त में अपनी रिपोर्ट समस्त कक्षा के सम्मुख प्रस्तुत करेगा। इसी प्रकार सभी टुकड़े अपनी-अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करेंगे, फिर सम्पूर्ण कक्षा में इन समस्त रिपोर्टों पर वाद-विवाद किया जायेगा।

मूल्यांकन

वाद-विवाद का मुख्य उद्देश्य छात्रों में वांछनीय परिवर्तन लाना है। वाद-विवाद किसी भी प्रकार के परिवर्तन नहीं लाता है तो निरर्थक माना जायेगा। यदि परिवर्तन लाता है तो प्रश्न उठता है कि छात्रों में कितना परिवर्तन हुआ। वांछित परिवर्तन का मूल्यांकन करना आवश्यक हो जाता है। वांछित परिवर्तनों मूल्यांकन छात्र स्वयं तथा अध्यापक कोई भी कर सकता है। मूल्यांकन हेतु विभिन्न प्रकार की प्रश्नावलियाँ या साक्षात्कार का प्रयोग कर सकते हैं और ज्ञात सकते हैं कि विभिन्न क्षेत्रों में क्या परिवर्तन हुए ? उदाहरणस्वरूप, विषय-वस्तु के में कितनी वृद्धि हुई ? कितना बौद्धिक विकास हुआ ? कितनी बौद्धिक क्षमतायें बढ़ी रुचियों में क्या परिवर्तन हुए ? अभियोग्यता तथा मूल्यों में क्या परिवर्तन हुए आदि-आदि।

वांछित परिवर्तनों के अलावा हम वाद-विवाद से स्वयं का मूल्यांकन कर सक हैं। वाद-विवाद कितना सफल रहा यह ज्ञात करना भी भविष्य के लिए अच्छा रहता इसके लिए हमें वाद-विवाद की आलोचना नीचे लिखे आधारों पर करनी पड़ेगी—

(1) वाद-विवाद निर्धारित-उद्देश्यों को प्राप्त करने में कहाँ तक सफल रहा ?

(2) वाद-विवाद में कहाँ-कहाँ कठिनाइयाँ एवं कमियाँ आयीं तथा इनके कारण थे ?

(3) क्या प्रत्येक छात्र ने भाग लिया ?

(4) क्या कुछ एक छात्र ही वाद-विवाद पर छाये रहे ?

पद्धति के गुण (Merits of the Method)

वाद-विवाद पद्धति में निम्नांकित गुण पाये जाते हैं—

(1) पद्धति व्यक्तिगत विभिन्नताओं पर निर्भर है।
(2) पद्धति स्वतन्त्र अध्ययन पर जोर देती है।
(3) पद्धति छात्रों में तर्क शक्ति का विकास करती है।
(4) पद्धति क्रिया के सिद्धान्त पर आधारित है।
(5) पद्धति स्वाध्याय का विकास करती है।
(6) पद्धति छात्रों को सोद्देश्यपूर्ण रूप से अध्ययन करना सिखलाती है।
(7) पद्धति छात्रों को विषय-वस्तु का चयन एवं संगठन करना सिखलाती है।
(8) पद्धति छात्रों में सहयोगितापूर्ण प्रतियोगिता का विकास करती है।

पद्धति के दोष (Demerits of the Method)

पद्धति में उपरोक्त गुणों के साथ निम्नांकित दोष भी पाये जाते हैं—

(1) निरर्थक वाद-विवाद में समय नष्ट किया जा सकता है।
(2) सम्पूर्ण विषय-वस्तु का अध्यापन सम्भव नहीं है।
(3) सभी अध्यापक कुशलतापूर्वक वाद-विवाद का संचालन नहीं कर सकते।
(4) यह पद्धति अधिक समय चाहती है।

(5) वाद-विवाद में कुछ ही छात्र प्रमुख रूप से भाग लेकर अन्य छात्रों को बोलने का अवसर प्रदान नहीं करने दे सकते हैं।
(6) छात्र इससे विशेष लाभ नहीं उठा सकते हैं।

कुछ सुझाव (Some Suggestions)

(1) वाद-विवाद कराने से पूर्व समस्या का निर्माण ठीक प्रकार किया जाये।
(2) वाद-विवाद का प्रारम्भ तथा पूर्व-तैयारी विधिपूर्वक की जाये।
(3) वाद-विवाद का संचालन नियमानुसार किया जाये।
(4) मूल्यांकन बिना पक्षपात के किया जाये।
(5) निरर्थक एवं असम्बन्धित वाद-विवाद को चतुरता से रोका जाये।
(6) सभी छात्रों को बोलने का समान अवसर दिया जाये।

8. इकाई-पद्धति
(UNIT METHOD)

विभिन्न शिक्षण-पद्धतियों में 'इकाई-पद्धति' आधुनिकतम पद्धति है। इकाई पद्धति को समझने से पूर्व इकाई को समझना आवश्यक है। **हन्ना, हैजमैन** तथा **पीटर** ने इकाई के सम्बन्ध में लिखा है, "इकाई सोद्देश्य सीखने से सम्बन्धित अनुभव है, जिसका केन्द्रबिन्दु कुछ सामाजिक रूप से महत्वपूर्ण ज्ञान है, जो सीखने वाले के व्यवहार को सुधारता है तथा उसे जीवन में परिस्थितियों के साथ अधिक प्रभावक रूप से समायोजन करने योग्य बनाता है।" **वेस्ले** तथा **रारकी** ने इकाई की परिभाषा देते हुए लिखा है, "इकाई सीखने वाले के लिए महत्वपूर्ण अनुशीलों को प्रभावित करने हेतु बनाई गयी सूचनाओं तथा अनुभवों की एक संगठित व्यवस्था है।" ये महत्वपूर्ण अनुशील उसके व्यवहार में प्रदर्शित होंगे। **जेरोलीमेक** ने इकाई की परिभाषा देते हुए लिखा है, "इकाई शैक्षणिक उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु महत्वपूर्ण विषय-वस्तु को संगठित करने का एक ऐसा साधन है, जो महत्वपूर्ण विषय-वस्तु का प्रयोग करता है, जो छात्रों को सीखने सम्बन्धी क्रियाओं में बौद्धिक एवं शारीरिक रूप से संलग्न रखता है एवं छात्रों के व्यवहार को उस सीमा तक सुधारता है, जहाँ तक वे नयी समस्याओं तथा परिस्थितियों के साथ मुकाबला करने योग्य बन सकें।"

"Unit is a means of organizing meterials for instructional purposes which utilizes significant subject-matter-contact, involves pupils in learning, activities through active participation intellectually and physically and modifies the pupils behaviour to the extent that he is able to cope with new problems and situations more competently." —**Jarolimek.**

इस प्रकार इकाई एक ऐसा शैक्षणिक साधन है जो छात्रों को सीखने सम्बन्धी क्रियाओं में शारीरिक व बौद्धिक रूप से व्यस्त रखता है तथा उन्हें नयी परिस्थितियों के साथ समायोजन करने योग्य बनाता है।

इकाई का अर्थ स्पष्ट हो जाने पर 'इकाई-पद्धति' का अर्थ भी सरलता से स्पष्ट हो जाता है। इकाई-पद्धति अध्ययन की वह पद्धति है जो छात्रों के सम्मुख विषय-वस्तु को इस प्रकार प्रस्तुत करती है कि वे बौद्धिक एवं शारीरिक रूप से व्यस्त रहें तथा इस

प्रकार का ज्ञान प्राप्त करें कि प्राप्त ज्ञान के माध्यम से वे नयी परिस्थितियों के
समायोजन कर सकें। साररूप में, इकाई-पद्धति विषय-वस्तु, शिक्षण-प्रविधियों
शिक्षण-युक्तियों के संगठन की वह पद्धति है जो पढ़ाने तथा सीखने हेतु प्रभावोत्पा
बनाती है।

"Reserve unit may properly be thought of as collections of sugges
teachings, materials and activities organized around large topics....."
—**Jarolimek**, *Social Studies in Elementary Education*, p.

इकाई के प्रकार (Types of the Unit)

किसी भी पाठ के अनेक पहलू (Aspects) हो सकते हैं, जैसे ज्ञान के साथ
अध्यापन, सहायक-सामग्री, उद्देश्य, मूल्य, सौन्दर्य-प्रक्रिया अनुभव आदि-आदि। किसी
किसी पहलू पर बल दिया जाता है तो किसी पाठ में अन्य किसी पहलू पर। पाठ
जिस पहलू पर बल दिया जाता है, वह पाठ वैसा ही पाठ कहलाता है, जैसे यदि कि
पाठ में ज्ञानार्जन पर बल दिया जाता है तो वह पाठ ज्ञानात्मक पाठ कहलायेगा। य
पाठ में सौन्दर्य का बाहुल्य है तो पाठ सौन्दर्यात्मक कहलायेगा। इसी प्रकार यदि पाठ
अनुभवों को अधिक महत्व दिया गया है तो पाठ अनुभवात्मक पाठ कहलायेगा। जि
प्रकार पाठ में अनेक पहलू होते हैं, अध्यापन में भी इसी प्रकार अनेक पहलू होते
यदि अध्यापन छात्रों को ज्ञान प्रदान करने के दृष्टिकोण से सम्पादित किया जा रहा
तो अध्यापन ज्ञानात्मक कहलायेगा। यदि अध्यापन में अनुभवों पर बल दिया गया है
अध्यापन अनुभवात्मक कहलायेगा। इसी प्रकार इकाई भी अनेक प्रकार की हो सक
है। कोई इकाई कैसी है, यह उस पहलू पर निर्भर है, जिसको उस इकाई में महत्
प्रदान किया गया है। इस प्रकार इकाई कई प्रकार की हो सकती है, जैसे ज्ञानात्मक,
साधनात्मक, अनुभवात्मक, प्रक्रियात्मक, आदि-आदि, किन्तु वर्तमान में लेखकगण
केवल दो इकाइयों पर अधिक बल देते हैं—(1) साधनात्मक (Resource Unit) तथ
(2) अध्यापनात्मक (Teaching Unit)। इसलिए यहाँ पर भी हम इन्हीं दो प्रकार
इकाइयों का संक्षिप्त अध्ययन करेंगे—

(1) साधनात्मक इकाई (Resource Unit)

साधनात्मक तथा अध्यापनात्मक इकाइयों में उद्देश्य, क्षेत्र तथा संगठन
दृष्टिकोण से पर्याप्त अन्तर होते हुए भी दोनों में घनिष्ठ सम्बन्ध है। साधनात्म
इकाइयाँ किसी बड़े पाठ से सम्बन्धित शैक्षणिक सामग्री तथा क्रियाओं का संग्रह है
साधनात्मक इकाइयों का निर्माण शिक्षक-समूह तथा विशेषज्ञों द्वारा किया जाता है। इस
निर्माण में शिक्षक-समूह पाठ्यक्रम-निर्माताओं, राज्य-शिक्षा विभाग, शिक्षा-संस्थाओं तथ
अन्य सामाजिक संस्थाओं की सहायता भी ले सकता है। इस प्रकार की इकाई
निर्माण छात्रों के किसी विशेष समूह के लिए नहीं किया जाता है। इनमें शिक्षण-व्यवस्
की सामान्य रूपरेखा दी होती है। इस सामान्य रूपरेखा में प्रायः निम्नांकित बातों
उल्लेख रहता है—

1. प्रस्तावना, 2. इकाई-पाठ से सम्बन्धित विषय-सामग्री तथा समस्यायें व प्रश्न
3. उद्देश्य एवं मूल्य, 4. सम्भावित क्रियायें, 5. मूल्यांकन, 6. पुस्तक-सूची तथा सहायक-सामग्री

नीचे इन्हीं बिन्दुओं पर आधारित एक साधनात्मक इकाई की विस्तृत रूपरेखा प्रस्तुत है—

शीर्षक

(1) प्रस्तावना—प्रस्तावना में इकाई किस कक्षा के हेतु है, कितने समय के लिए है, समय-चक्र क्या है, शीर्षक का शैक्षिक महत्व क्या है, किन बिन्दुओं को महत्व देना है, आदि बातों का उल्लेख रहेगा।

(2) विषय-सामग्री—इसमें इकाई से सम्बन्धित विषय-वस्तु का विस्तृत उल्लेख होगा तथा सम्बन्धित समस्याओं एवं प्रश्नों का उल्लेख भी यहीं किया जायेगा।

(3) उद्देश्य एवं मूल्य—इकाई किन उद्देश्यों व मूल्यों को लेकर आगे बढ़ी है ? संक्षेप में, यहाँ अध्यापन के उद्देश्य एवं मूल्यों का वर्णन होगा। उद्देश्यों में हम ज्ञानात्मक, कौशलात्मक, प्रयोगात्मक तथा रुच्यात्मक उद्देश्यों का पृथक्-पृथक् वर्णन करेंगे।

(4) सम्भावित क्रियायें—इकाई का यह प्रमुख भाग होता है और यह अध्यापनात्मक इकाई के निर्माण में अत्यन्त सहायक होता है। इसमें प्रायः नीचे लिखी क्रियाओं का उल्लेख रहता है—

(अ) प्रारम्भिक क्रियायें (Initiatory Activities)—प्रारम्भिक क्रियायें पाठ को प्रारम्भ करने, पाठ के प्रति छात्रों में रुचि जाग्रत करने तथा अध्यापन की योजना बनाने में सहायक होती है। इन क्रियाओं में हम श्रवण, वाचन अध्ययन, वाद-विवाद, अवलोकन, फिल्म देखना आदि भी सम्मिलित कर सकते हैं।

(आ) विकासात्मक क्रियायें (Developmental Activities)—पाठ प्रारम्भ हो जाने के पश्चात् जो क्रियायें पाठ को आगे बढ़ाती हैं, या जिन क्रियाओं के माध्यम से पाठ आगे बढ़ता है, विकासात्मक क्रियायें कहलाती हैं। जेरोलीमेक (Jarolimek) ने इन्हें नौ भागों में विभक्त किया है—

(i) अनुसन्धान प्रकार क्रियायें (Research-type Activities)
(ii) प्रस्तुतीकरण प्रकार क्रियायें (Presentation type Activities);
(iii) सृजनात्मक क्रियायें (Creative Activities);
(iv) आवृत्ति क्रियायें (Drill Activities);
(v) सौन्दर्यात्मक क्रियायें (Appreciation Activities);
(vi) अवलोकनात्मक क्रियायें (Observation Activities);
(vii) समूह सहकारिता क्रियायें (Group Cooperation Activities);
(viii) प्रयोगात्मक क्रियायें (Experimental Activities);
(ix) मूल्यांकन क्रियायें (Evaluating Activities)।

(इ) समापन क्रियायें (Culminating Activities)—वे क्रियायें अध्यापकों को उन सुझावों को बतलाती हैं, जिनके माध्यम से इकाई सफलतापूर्वक समाप्त की जा सकती है। इन क्रियाओं में निष्कर्ष निकालना (Review), सीखने का हस्तान्तरण करना आदि सम्मिलित हैं।

(5) मूल्यांकन—इसमें मूल्यांकन की विधि का उल्लेख रहता है। सामान्य तथा मूल्यांकन निष्पत्ति परीक्षा, छात्रों द्वारा आत्म-विवेचन, लिखित परीक्षा तथा अन्य एकत्रित आँकड़ों के माध्यम से किया जाता है।

(6) सहायक-सामग्री—इसमें इकाई की विषय-वस्तु से सम्बन्धित सहायक सामग्री का उल्लेख रहता है। पुस्तकों, सहायक-पुस्तकों के नाम तथा प्रयोग की जाने वाली अन्य दृश्य-श्रव्य सामग्री का उल्लेख इसमें रहता है।

(2) अध्यापनात्मक इकाई (Teaching Unit)

ऊपर कहा गया है कि साधनात्मक इकाई छात्रों के किसी विशिष्ट समूह के लिए नहीं बनायी जाती है, किन्तु अध्यापनात्मक इकाई का निर्माण अध्यापक द्वारा छात्रों के किसी विशिष्ट वर्ग हेतु किया जाता है। इसके निर्माण में अध्यापक साधनात्मक इकाई से पूरी-पूरी सहायता लेता है। अध्यापनात्मक इकाई साधनात्मक इकाई के आधारों से पृथक् नहीं जा सकती है। साधनात्मक इकाई पर्याप्त मात्रा में अध्यापनात्मक इकाई को प्रभावित करती है। जेरीलीमेक के अनुसार अध्यापक अपनी अध्यापनात्मक इकाई से लेता है। जहाँ तक करते समय अनेक विचार तथा सुझाव साधनात्मक इकाई से लेता है। जहाँ तक अध्यापनात्मक इकाई की रूपरेखा का प्रश्न है, अध्यापनात्मक एवं साधनात्मक इकाई की रूपरेखाओं में कोई उल्लेखनीय अन्तर नहीं होता है। फलतः अध्यापनात्मक इकाई की पृथक् कोई रूपरेखा नहीं दी जा रही है। अध्यापक उपलब्ध साधनों तथा परिस्थितियों के अनुसार साधनात्मक इकाई की रूपरेखा में परिवर्तन करके अध्यापनात्मक इकाई की रूपरेखा तैयार कर लेता है।

इकाई की अध्ययन-निर्देशिका (Study Guide to the Unit)

इकाई-पद्धति के अनुसार पढ़ाने से पूर्व छात्रों को अध्ययन-निर्देशिकायें वितरित कर दी जाती हैं। इन निर्देशिकाओं में इकाई के मूल तत्वों, क्रियाओं तथा विषय-वस्तु का वर्णन रहता है। दूसरे शब्दों में, निर्देशिका को हम इकाई का संक्षिप्त रूप कह सकते हैं। छात्र इस निर्देशिका की सहायता से इकाई के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त करते हैं, तथा इकाई को पूरा करने की तैयारी करते हैं। उन्हें जो क्रियायें करनी हैं, उसके लिए और उन्हें जो दायित्व वहन करने हैं, उसके लिए अपने को तैयार करते हैं।

इकाई और पाठ-योजना (Unit and Lesson Planning)

एक इकाई कई दिनों तक चलती है, कोई-कोई इकाई तो महीनों तक चलती रहती है। इकाई बना लेने के बाद अध्यापक के सम्मुख समस्या उठती है कि वह दैनिक कार्य किस प्रकार सम्पादित करे ? इसके लिए उसे दैनिक पाठ-योजना की आवश्यकता पड़ती है। कक्षा में जाने से पूर्व उसे सोचना पड़ता है कि आज के कार्य का किस प्रकार संगठन करे ?

दैनिक कार्य का संगठन अध्यापक निम्नांकित प्रारूप के अनुसार कर सकता है :

दैनिक पाठ-योजना

कक्षा..... दिनांक.....

आज के प्रमुख उद्देश्य :

1.....

2.....

3.....

चालू क्रियायें या समस्यायें

1.....

2.....

3.....

सम्भावित समय	क्रियायें	अध्यापक क्रियायें	छात्र-क्रियायें
	दिनचर्या		
	प्रारम्भिक क्रियायें		
	विकासात्मक क्रियायें		
	समापन क्रियायें		

विषय-सामग्री के मुख्य बिन्दु :

1.....

2.....

3.....

मूल्यांकन :

1.....

2.....

3.....

इकाई-संगठन (Unit Organization)

इकाई के संगठन का सर्वप्रथम रूप हरबर्ट (Herbert) ने दिया। हरबर्ट ने इकाई के संगठन हेतु पाँच पदों (Steps) को आवश्यक बतलाया। हरबर्ट के अनुसार इकाई-संगठन की तैयारी, प्रस्तुतीकरण, तुलना, सामान्यीकरण तथा प्रयोग, पाँच पदों का होना आवश्यक है। कालान्तर में हरबर्ट के इन पाँच पदों का पर्याप्त प्रचार एवं प्रसार हुआ और तीव्र आलोचनायें भी हुईं। इन आलोचनाओं के फलस्वरूप इकाई संगठन के नये-नये रूप हमारे सम्मुख आये। इन रूपों में चार्ल्स ए० मैकमरी (Charles A. Mcmurry), जॉन ड्यूवी (John Dewey) तथा डॉ० मौरीसन (Dr. Morison) के संगठन प्रमुख हैं। संगठन के इन रूपों में वास्तविक रूप से डॉ० मौरीसन के संगठन का रूप ही मौलिक है। मैकमरी तथा ड्यूवी के रूप तो हरबर्ट के रूप का ही परिवर्तित रूप है। सन् 1926 में डॉ० मौरीसन ने इकाई-संगठन के लिए निम्नांकित पाँच पदों का उल्लेख किया :

(1) पूर्व-ज्ञान (Exploration)—इस पद में अध्यापक छात्रों के पूर्व ज्ञान का पता लगाता है।

(2) प्रस्तुतीकरण (Presentation)—यहाँ अध्यापक नवीन ज्ञान को छात्रों के सम्मुख प्रस्तुत करता है।

(3) आत्मीकरण (Assimilation)—इससे छात्र नये ज्ञान को आत्मसात् करने हेतु अनेक क्रियायें करते हैं, यथा पढ़ना, लिखना, बातचीत करना, वाद-विवाद करना,

पूछना, तर्क करना, परामर्श करना आदि। इस पद में कक्षा की व्यवस्था अध्य... जाती है।

(4) संगठन (Organization)—इस पद में अव्यवस्थित रूप से व्यवस्थित... पुनः एकत्रित कर, कक्षा के प्रत्येक छात्र से उसके द्वारा अर्जित ज्ञान को ताकि... बोधगम्य रूप में लिखने को कहा जाता है।

(5) अभिव्यक्ति (Recitation)—अन्त में अध्यापक छात्रों के अर्जित ज्ञान को... प्रकार से दुहराता है।

अच्छी इकाई की विशेषतायें (Characteristics of a Good Unit)

अच्छी इकाई में निम्नांकित विशेषतायें होती हैं :

1. इकाई का आकार उपयुक्त हो।
2. इकाई प्रयोगात्मक हो।
3. इकाई छात्रों की आवश्यकता, रुचि तथा मानसिक स्तर के अनुरूप हो।
4. इकाई छात्रों के पूर्वानुभवों पर आधारित हो।
5. इकाई में ज्ञान, कौशल, प्रयोग, रुचि, क्रिया तथा योजनाओं हेतु पर्याप्त साम...
6. इकाई छात्रों की अन्तर्दृष्टि का विकास करे।

पद्धति के गुण (Merits of Method)

इकाई-पद्धति में निम्नांकित गुण हैं :

1. इकाई तर्कसंगत चिन्तन का विकास करती है।
2. इकाई, कौशल, योग्यताओं तथा अभिरुचियों का विकास करती है।

"The extension of knowledge and the development of skills, abi... and attitudes are all possible outcomes of good units."

—**Jarolimek**, *Ibid*, p...

3. इकाई अध्यापन हेतु प्राकृतिक परिस्थितियाँ प्रस्तुत करती है।

"The unit also has the advantage of providing a natural situatio... which to teach the skills of democratic group action."

—I...

4. इकाई छात्रों का समाजीकरण करती है।

"Development and growth of socialization skills is recognize... basic to unit work."

—I...

5. इकाई में लोच होती है, फलतः व्यक्तिगत विभिन्नताओं का पूरा ध्यान रख... सकता है।

"Flexibility in adapting instruction to individual difference... children."

—I...

6. इकाई में छात्र अत्यन्त क्रियाशील रहते हैं।
7. इकाई सम्पूर्ण पाठ की योजना का ज्ञान कराती है।

अभ्यास-प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न

1. वाणिज्य-शिक्षण में प्रयोगशाला पद्धति के प्रयोग पर अपने विचार विस्ता... लिखिये।

2. योजना (Project) किसे कहते हैं ? योजना-पद्धति से वाणिज्य शिक्षण किस प्रकार करेंगे ? योजना-पद्धति के गुण व दोषों का भी उल्लेख कीजिये।
3. वाणिज्य-शिक्षण की समस्या समाधान-पद्धति का विस्तार से वर्णन कीजिये।
4. शिक्षण की सामाजीकृत अभिव्यक्ति पद्धति क्या है ? वाणिज्य-शिक्षण में इसकी क्या उपयोगिता है ?
5. वाणिज्य-शिक्षण के लिये वाद-विवाद पद्धति के प्रयोग पर अपने विचार लिखें तथा इस पद्धति के गुण-दोषों की चर्चा करें।
6. शिक्षण की इकाई-पद्धति का वाणिज्य शिक्षण हेतु आप किस प्रकार प्रयोग करेंगे ? विस्तार से लिखिये।

लघु उत्तरात्मक प्रश्न

1. वाणिज्य प्रयोगशाला की संरचना पर अपने विचार लिखिये।
2. योजना पद्धति व समस्या समाधान प्रद्धति में क्या अन्तर है ? स्पष्ट कीजिये।
3. वाणिज्य शिक्षण हेतु संश्लेषण पद्धति की क्या उपयोगिता है ?
4. इकाई का अर्थ तथा प्रकारों का परिचय दीजिये।
5. वाणिज्य शिक्षण में निरीक्षित अध्ययन के महत्व पर प्रकाश डालिये।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. सन् 1918 तक किस पद्धति का रूप स्पष्ट हुआ ?
   (अ) समस्या पद्धति (ब) इकाई पद्धति
   (स) योजना पद्धति (द) वाद-विवाद पद्धति
2. वाणिज्य की योजनाओं में कितने चरण उठाने पड़ते हैं ?
   (अ) दो (ब) चार
   (स) छः (द) सोलह
3. विवादग्रस्त पद्धति निम्न में से कौन सी है—
   (अ) समस्या समाधान पद्धति (ब) प्रयोगशाला पद्धति
   (स) योजना पद्धति (द) विश्लेषणात्मक पद्धति
4. ....पद्धति में अध्यापक द्वारा कार्य-निर्धारण करना अत्यधिक महत्व रखता है।

उत्तर—1. (स) योजना पद्धति, 2. (स) छः, 3. (अ) समस्या समाधान पद्धति, 4. निरीक्षित अध्ययन।

पुस्तपालन शिक्षण
(TEACHING OF BOOK-KEEPING)

वैसे तो वाणिज्य में बहुत से विषय आते है किन्तु शिक्षण की दृष्टि से हम उ
तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं—पुस्तपालन (Book-keeping), व्यापार पद्ध
(Commercial Practice) तथा आशुलिपि एवं टंकण (Short-hand and Typing), शि
की दृष्टि से इन तीनों ही विषयों का स्वभाव एक-दूसरे से बिलकुल पृथक है, अतः न
ही विषयों के लिए शिक्षण की पृथक्-पृथक् विधियाँ अपनानी पड़ती हैं। व्यापारिक भूग
बैंकिंग, मुद्रा तथा अधिकोषण, व्यापारिक सन्नियम आदि ऐसे विषय हैं शिक्षण की दृष्टि
जिनका स्वभाव ठीक व्यापार-पद्धति ज्ञान के समान ही है। अतः इन विषयों के शि
के लिए अलग से चर्चा करना सार्थक नहीं है। क्योंकि सभी विषयों की शिक्षण-विधि
करीब-करीब एक जैसी हैं। अतः प्रस्तुत पुस्तक के इस अध्याय में पुस्तपालन शिक्षण
आधारभूत तत्वों की चर्चा की जायेगी तथा आगामी अध्याय में व्यापार पद्धति ज्ञान शि
के सम्बन्ध में आवश्यक तथ्य प्रस्तुत किये जायेंगे।

पुस्तपालन शिक्षण के उद्देश्य
(OBJECTIVE OF TEACHING BOOK-KEEPING)

शिक्षण-उद्देश्यों के अर्थ, आवश्यकता, इनके निर्धारक तत्व तथा उद्देश्यों के प्रका
का संक्षिप्त परिचय हम प्रस्तुत पुस्तक के अध्याय दो में अध्ययन कर चुके
अनावश्यक रूप से पुस्तक के कलेवर को बढ़ने से रोकने के लिए उद्देश्यों
सम्बन्धित इन तथ्यों की यहाँ पुनरावृत्ति की जाती है और हम सीधे ही पुस्तपाल
(बहीखाता) के शिक्षण उद्देश्यों का अध्ययन करते हैं।

(1) पुस्तपालन शिक्षण के सामान्य उद्देश्य

पुस्तपालन शिक्षण के नीचे लिखे सामान्य उद्देश्य निर्धारित किये जा सकते है—

(1) छात्रों के पुस्तपालन में प्रयुक्त होने वाली शब्दावली, मूल सिद्धान्तों तथ
नियमों का ज्ञान कराना।

(2) भारत के छात्रों में योग्यतापूर्ण आर्थिक नागरिकता का विकास करना।

(3) छात्रों में सृजनात्मकता का विकास करना।

(4) छात्रों को देश की आर्थिक स्थिति, देशी एवं विदेशी व्यापार की स्थिति
ज्ञान कराना।

(5) छात्रों में तर्क तथा विश्लेषण शक्ति का विकास कराना।

(6) छात्रों को राष्ट्र की आर्थिक, व्यापारिक औद्योगिक तथा वैत्तिक नीतियों तथा उनमें विभिन्न पक्षों का ज्ञान कराना।

(7) छात्रों को इस योग्य बनाना कि वे स्व-नियोजन कर सकें।

(8) छात्रों में वाणिज्य, व्यापार तथा उद्योगों के प्रति सकारात्मक अभिवृत्ति का विकास करना।

(9) छात्रों में आवश्यक एवं वांछित व्यावसायिक कौशलों का विकास करना।

(10) छात्रों को व्यापार, वाणिज्य तथा उद्योग जगत से प्रत्यक्ष एवं परोक्ष श्रम से जुड़ी विभिन्न संस्थाओं, उनके कार्यों तथा महत्व आदि का ज्ञान कराना।

(11) छात्रों में कुशल व्यापारी के लिए आवश्यक गुणों व दक्षताओं का विकास करना।

(12) छात्रों को इस योग्य बनाना कि वे अपने आर्थिक विचारों को सटीक एवं स्पष्ट रूप से व्यक्त कर सकें।

(13) छात्रों में प्रबन्ध, प्रचार तथा विज्ञापनों का विश्लेषण कर उनकी वास्तविकता का पता लगाने की योग्यता का विकास करना।

(14) छात्रों को उत्पादन, विपणन तथा वितरण की प्रक्रिया का विस्तृत ज्ञान कराना।

(15) छात्रों में व्यापार-शिक्षा के प्रति रुचि का विकास करना।

(16) छात्रों को देश में कार्यरत आर्थिक संस्थाओं तथा बैंक, बीमा, डाकघर आदि की कार्य-प्रणाली तथा इन संस्थाओं द्वारा प्रदत्त सेवाओं का ज्ञान कराना।

(17) छात्रों को किसी व्यापारिक कार्यालय की कार्य प्रणाली तथा कार्यालय के लिए आवश्यक समय व श्रम बचाने वाले उपकरणों का व्यावहारिक ज्ञान प्रदान करना।

(18) छात्रों में संगठन करने तथा जोखिम उठाने की क्षमता को व योग्यताओं का विकास करना।

(2) वाणिज्य-शिक्षण के विशिष्ट उद्देश्य

वाणिज्य विषय पढ़ाने के जो उद्देश्य होते हैं वे सामान्य उद्देश्य कहलाते हैं तथा वाणिज्य विषय के किसी विशेष पक्ष को पढाने के जो उद्देश्य होते हैं वे विशिष्ट उद्देश्य कहलाते हैं। उदाहरण के लिए 'यातायात के साधनों के विषय में सकारात्मक अभिवृत्ति का विकास करना' एक सामान्य उद्देश्य है जबकि 'भारत में सड़क यातायात के दोषों का ज्ञान कराना' एक विशिष्ट उद्देश्य है। छात्र पारिवारिक बजट बनाने का कौशल विकसित कर सकेंगे। एक विशिष्ट कौशलात्मक उद्देश्य है। विशिष्ट उद्देश्य किसी भी पाठ या शीर्षक के लिए पृथक्-पृथक् हो सकते हैं तथा इनका स्वरूप उपदेशनात्मक उद्देश्यों के रूप में होता है। इनका लेखन विशिष्टीकरण के साथ किया गया है। पुस्तपालन शिक्षण के विशिष्ट उद्देश्यों का अनुदेशनात्मक उद्देश्यों की चर्चा नीचे की गई है।

पुस्तपालन शिक्षण के अनुदेशनात्मक उद्देश्य
(INSTRUCTIONAL OBJECTIVE OF BOOK-KEEPING TEACHING)

अध्यापक पुस्तपालन क्यों पढ़ाता है अथवा छात्र पुस्तपालन क्यों पढते हैं ? इन प्रश्नों के उत्तर में ही पुस्तपालन के शैक्षणिक उद्देश्य निहित हैं। इन प्रश्नों के उत्तर के

लिए हम कह सकते है कि पुस्तपालन छात्रों को ज्ञान प्रदान, उनमें कौशल का वि
करने, उनमें रुचि जाग्रत करने, उनकी अभिवृत्तियों का विकास करने तथा प्राप्त
को प्रयोग करने की क्षमता का विकास कर सकता है और इन्हीं कार्यों के लिए इ
अध्ययन किया तथा करवाया जाता है। इन्हें हम यदि क्रमानुसार लिखें तो पुस्त
शिक्षण के नीचे लिखे उद्देश्य हो सकते है—

(1) ज्ञानात्मक उद्देश्य—पुस्तपालन शिक्षण ज्ञानात्मक उद्देश्य की परिपूर्ति क
। पुस्तपालन शिक्षण के बालक को पुस्तपालन से सम्बन्धित अनेक तथ्यों, सिद्धा
णालियों तथा पद्धतियों का ज्ञान प्राप्त करने में सहायता मिलती है। इस उद्देश्य
आधार पर हम कह सकते है कि पुस्तपालन शिक्षण अनुपालन से सम्बन्धित अ
थ्यों, सिद्धान्तों तथा प्रविधियों का ज्ञान छात्रों को हो सकता है। यदि ब्लूम महोदय
भाषा में कहें तो हम कह सकते है कि पुस्तपालन के ज्ञान से बालक अनेक तथ्यों
पुनर्स्मरण कर सकेगा। पुस्तपालन से सम्बन्धित तथ्यों, सिद्धान्तों तथा प्रविधियों
पुनर्स्मरण करना ही इस उद्देश्य का विशिष्टीकरण (Specification) है।

(2) अवबोधात्मक उद्देश्य—अवबोधात्मक उद्देश्य तथ्यों, सिद्धान्तों तथा प्रविधियों
तुलना करने, वर्गीकरण करने, सम्बन्ध स्थापित करने, श्रेणीबद्ध करने तथा अन्तर क
की योग्यता से सम्बन्धित होता है। पुस्तपालन का एक उद्देश्य छात्रों को विभिन्न तथ्
सिद्धान्तों, प्रत्ययों तथा प्रविधियों का अवबोध भी कराना है। इससे छात्र पुस्तपालन
सम्बन्धित विभिन्न संप्रत्ययों, तथ्यों, सिद्धान्तों तथा पद्धतियों की तुलना कर सकेंगे, उन
मध्य भेद कर सकेंगे, उनका वर्गीकरण कर सकेंगे तथा उनके मध्य निहित अन्तर
स्पष्ट कर सकेंगे। पुस्तपालन विषय में अनेक नये प्रत्यय, तथ्य, सिद्धान्त तथा पद्धति
होती हैं। इनके मध्य अन्तर जानना आवश्यक है, इनकी परस्पर तुलना करना भी अ
स्थलों पर आवश्यक हो जाता है। इसी प्रकार इनको वर्गीकृत तथा श्रेणीबद्ध कर
भी आवश्यक हो जाता है। इसी प्रकार इनको वर्गीकृत तथा श्रेणीबद्ध करना
आवश्यक है। इन कार्यों की पूर्ति हेतु हम पुस्तपालन के द्वारा अवबोधात्मक उद्देश्य
प्राप्ति करते हैं।

(3) कौशलात्मक उद्देश्य—पुस्तपालन में छात्रों को विभिन्न प्रकार के कौशलों
भी विकास करना पड़ता है। छात्रों को अनेक प्रकार के गणितीय तथा संगठनात्म
(Computational) कौशलों का विकास करना पड़ता है। इसके अलावा छात्रों
स्वच्छता, शुद्धता के साथ काम करने तथा त्रुटियों का पता लगाने का कौशल
पुस्तपालन शिक्षण के द्वारा किया जाता है। बी० एस० ब्लूम के अनुसार कौशलात्म
उद्देश्य के निम्नांकित विशिष्टीकरण हैं जिन्हें पुस्तपालन के सन्दर्भ में नीचे लिखा गय
है—छात्रों की इस प्रकार सहायता करना जिससे कि वे

(i) संख्याओं को शुद्ध, सही, सुन्दर तथा शीघ्रतापूर्वक लिख सकें।

(ii) संख्याओं के जोड़, गुणा, भाग तथा घटाने की क्रियाओं को शीघ्रता व शुद्ध
के साथ कर सकें।

(iii) क्रेडिट तथा डेबिट पक्षों की संख्याओं को सफलतापूर्वक तुलना कर सकें तथ
उनके सही शेष निकाल सकें।

(iv) छात्र गणितीय त्रुटियों को न करें तथा जब हो ही जाये तो उन्हें शीघ्र पहचान
उन्हें शुद्ध कर सकें।

(v) पुस्तपालन से सम्बन्धित विभिन्न खातों तथा बहियों में शुद्धता के साथ
प्रविष्टियाँ कर सकें।

(4) रुझानात्मक उद्देश्य—पुस्तपालन शिक्षण का एक उद्देश्य यह भी है कि छात्रों में
पुस्तपालन के लिए आवश्यक रुचि उत्पन्न कर दी जाये। पुस्तपालन के द्वारा छात्रों में
लेखा-विधि तथा पुस्तपालन के प्रति वांछित रुचि उत्पन्न की जानी चाहिए क्योंकि जब
तक छात्रों में छात्रों को रुचि नहीं होगी वे उपयुक्त प्रेरणा के साथ कार्य नहीं कर सकते हैं।
पुस्तपालन में छात्रों को रुचि उत्पन्न होने पर वे—

(i) पुस्तपालन से सम्बन्धित अतिरिक्त पुस्तकें पढ़ने में रुचि लेंगे।

(ii) पुस्तपालन से सम्बन्धित तथ्यों, सिद्धान्तों तथा पद्धतियों को जानने में
जिज्ञासा प्रदर्शित करेंगे।

(iii) पुस्तपालन से सम्बन्धित क्रिया-कलापों में उत्साह के साथ सक्रिय योगदान
करेंगे।

(iv) पुस्तपालन से सम्बन्धित तथ्यों, सिद्धान्तों तथा पद्धतियों पर परस्पर परिचर्चा
करेंगे।

(v) पुस्तपालन से सम्बन्धित समस्याओं के समाधान उन्हें आत्म संतोष प्रदान
करेगा।

(5) ज्ञान-प्रयोग उद्देश्य—ज्ञान उस समय तक जीवनोपयोगी नहीं है जब तक कि
व्यावहारिक जीवन में उसका उपयोग न हो। ऐसा ज्ञान केवल सैद्धान्तिक तथा केवल
ज्ञान के लिए ही होता है। वह मात्र एक अनुपयोगी अलंकार है जो केवल सजावट के
काम आता है, यह व्यर्थ है। ज्ञान ऐसा हो जिसे छात्र व्यावहारिक जीवन में भी प्रयोग
कर सकें। इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए पुस्तपालन के सम्बन्ध में भी कहा जा
सकता है कि पुस्तपालन का छात्रों को इस प्रकार ज्ञान प्रदान किया जाये कि प्राप्त
ज्ञान का छात्र अपने व्यावहारिक जीवन में प्रयोग कर सकें। यह तभी सम्भव है जब
शिक्षक छात्रों को नीचे लिखे कार्यों में दक्ष कर सके—

(i) शुद्ध एवं सही गणनायें करने की योग्यता का विकास।

(ii) खातों तथा लेखों की प्रमुख संख्याओं तथा मदों का ज्ञान।

(iii) उन परिस्थितियों का ज्ञान जिनमें प्रायः लेखा सम्बन्धी त्रुटियाँ सम्भव हैं।

(iv) दैनिक जीवन में पुस्तपालन के-सिद्धान्तों का प्रयोग करना।

(6) अभिवृत्यात्मक उद्देश्य—पुस्तपालन शिक्षण के द्वारा कतिपय अभिवृत्तियों का
भी विकास किया जा सकता है। पुस्तपालन शिक्षण नीचे लिखी अभिवृत्तियों का विकास
करने में हमारी सहायता करता है—

(i) स्वच्छता, शुद्धता, समयबद्धता तथा उत्तरदायित्व की भावना का विकास करने
में सहायता करके पुस्तपालन छात्रों में अनेक सद्वृत्तियों का विकास करती है।

(ii) छात्रों में आँकड़ों, रकमों तथा गणितीय संगणनाओं के प्रति अनुकूल
अभिवृत्तियों के विकास में सहायता करके नवीन दृष्टिकोण का विकास करती है।

(iii) विषय के प्रति नवीन तथा अतिरिक्त साहित्य में रुचि का विकास करके।

करने के बाद किसी व्यापारी की सम्पत्ति का उदाहरण देकर यह स्पष्ट किया जा सकता है कि—

सम्पत्ति = दायित्व + पूँजी

Assets = Liabilities + Capital

A = L + C

इसे एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। मैसर्स राम एण्ड पार्टनर के पास नीचे लिखी सम्पत्तियाँ हैं—

नकद रोकड़	5,000 रु०
तैयार माल	22,000 रु०
साज सामान	23,000 रु०
कुल योग	50,000 रु०

इस उदाहरण के अनुसार मै० राम एण्ड पार्टनर के पास कुल मिलाकर 50,000=00 रुपये की सम्पत्तियाँ हैं। इन सम्पत्तियों को राम तथा उसके पार्टनर किसी भी प्रकार प्रयोग कर सकते हैं। ये सम्पत्तियाँ ही उनकी पूँजी है। इन्होंने मै० श्याम एण्ड सन्स से 5000 हजार का माल और उधार क्रय किया। इससे मै० राम एण्ड पार्टनर के पास सम्पत्तियाँ बढ़कर 50,000 + 5,000 = 55,000 हजार हो गई। क्योंकि श्याम एण्ड सन्स से यह माल उधार खरीदा है और इसका अभी भुगतान नहीं किया गया है इसलिए सम्पत्तियाँ (Assets) बढ़ जाने पर भी इनकी पूँजी नहीं बढ़ी है। यह 5000 रु० का मै० राम एण्ड पार्टनर पर मै० श्याम एण्ड सन्स का दायित्व है। यह दायित्व तथा पूँजी मिलाकर ही सम्पत्तियाँ बनती हैं। अतः यह सही है कि A = L + C अर्थात् दायित्व (Liabilities) तथा पूँजी (Capital) का योग ही सम्पत्ति (Assets) होता है।

प्रत्येक व्यापार में सम्पत्तियाँ, दायित्व तथा पूँजी घटती बढ़ती रहती है। इनका घटाव-चढ़ाव भी एक-दूसरे के अनुपात में होता है। ऊपर के उदाहरण में ही जब मै० राम एण्ड पार्टनर मै० श्याम एण्ड सन्स को उधार माल क्रय करने के पाँच हजार रुपये अदा कर देगें तो मै० राम एण्ड पार्टनर की रोकड़ पाँच हजार से कम हो जायेगी अर्थात् उनकी सम्पत्तियाँ भी पाँच हजार से कम हो जायेगी किन्तु इसके साथ ही साथ मै० श्याम एण्ड सन्स के प्रति उनका पाँच हजार रुपये का दायित्व भी कम हो जायेगा और अन्ततोगत्वा A = L + C का समीकरण ज्यों का त्यों बना रहेगा।

मै० राम एण्ड पार्टनर की स्थिति इस प्रकार है—

A	=	L	+	C
50,000	=	0	+	50,000

मै० श्याम एण्ड सन्स से 5000 रु० का माल खरीदने पर स्थिति इस प्रकार रहेगी—

A	=	L	+	C
55,000	=	5,000	+	50,000

मै० श्याम एण्ड सन्स को 5000 रु० दे देने से सम्पत्ति में से रोकड के पाँच हजार कम हो जायेंगे तथा दायित्व भी कम हो जायेंगे। भुगतान के बाद स्थिति ऐसी होगी—

A	=	L	+	C
50,000	=	0	=	50,000

यदि व्यापार में लाभ होता है तो सम्पत्तियाँ तथा देनदार बढ़ते हैं और हानि की स्थिति में या तो लेनदार बढ़ते चले जाते हैं या पूँजी तथा सम्पत्तियाँ कम होती चली जाती हैं किन्तु A = L + C सदैव बना रहता है।

सम्पत्तियों, दायित्वों तथा पूँजी के घटाव-चढ़ाव को जानने के लिए व्यापारिक संस्था 'टी' खातों (T. account) बनाया करते हैं। 'टी' खातों में सम्पत्तियाँ डेबिट पक्ष में लिखे जाते हैं तथा समस्त दायित्व एवं पूँजी क्रेडिट पक्ष में लिखे जाते हैं इसलिए जब हम अन्तिम खाते बनाते हैं तो डेबिट तथा क्रेडिट पक्षों के योग बराबर होते हैं।

समीकरण उपागम के अन्तर्गत सर्वप्रथम 'टी' खाते तथा अन्तिम खातों को तैयार किया जाता है, फिर जर्नल एवं लेजर की तरफ बढ़ा जाता है। समीकरण उपागम में भले ही हम पहले ही खाते बनाकर अपनी सम्पत्ति, दायित्व तथा पूँजी का पता लगा लें, इससे प्रतिदिन के व्यापार का पता नहीं चलता है। इसलिए जर्नल तथा लेजर बनाने आवश्यक हो जाते हैं। इसलिए प्रत्येक व्यापारिक संस्थान में जर्नल से लेकर अन्तिम खाते तक का पूरा चक्र पूरा किया जाता है। इसलिए बहीखाता शिक्षण में भी शिक्षक को चाहिए कि वह किसी भी उपागम तथा शिक्षण विधि को लेकर आगे बढ़े उसे पुस्तपालन का चक्र यथाशीघ्र पूरा कर लेना चाहिए। इस चक्र को हम कुछेक रूप में नीचे लिखे अनुसार प्रदर्शित कर सकते हैं—

कौशल विकास

पुस्तपालन शिक्षण में ज्ञानात्मक पक्ष के स्थान पर कौशलात्मक पक्ष अधिक प्रबल है। इसलिए पुस्तपालन शिक्षण में कौशल विकास की ओर शिक्षक को विशेष प्रयास करने चाहिए। कौशलों के विकास के लिए शिक्षक नीचे लिखे कार्य कर सकता है—

(1) दी हुई संख्याओं, सौदों तथा लेन-देनों के आधार पर विभिन्न बहियाँ तथा पुस्तकों में प्रविष्टियाँ करने का अभ्यास अधिक से अधिक मात्रा में कराना।

(2) विभिन्न खातों के योग तथा शेष निकालने का अभ्यास कराना।

(3) तलपट तथा अन्तिम खाते तैयार कराना।

(4) योगों के अन्तरों के कारणों की खोज करने के अवसर देना।
(5) बैंक पास-बुक कैश-बुक के अन्तरों की खोज करने के अवसर देना।
(6) तलपट तथा हानि-लाभ खातों के आधार पर सकल तथा शुद्ध-लाभ ज्ञात करने के प्रयास करना।
(7) किसी व्यवसाय की सम्पत्तियों, दायित्वों तथा पूँजी की गणना करने अवसर प्रदान करना।
(8) डाकघरों, बैंक तथा अन्य ऐसे ही अधिक प्रतिष्ठानों की कार्य-प्रणाली व्यावहारिक ज्ञान देना।
(9) व्यावसायिक प्रतिष्ठानों के विभिन्न आवश्यक प्रपत्रों को व्यवस्थित तथा क्रम सँभालकर रखने का अभ्यास कराना।
(10) पुस्तपालन से सम्बन्धित प्रश्नों को हल करने के लिए आवश्यक प्रेरणा प्रद करना।

अभ्यास-प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न

1. पुस्तपालन शिक्षण के सामान्य तथा विशिष्ट उद्देश्यों की विवेचना कीजिये।
2. उच्चतर माध्यमिक स्तर पर पुस्तपालन शिक्षण के मुख्य उद्देश्यों की व्याख्या कीजिये।
3. पुस्तपालन शिक्षण के विभिन्न सोपानों को उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिये।
4. पुस्तपालन शिक्षण का समीकरण उद्‌गम क्या है ? उदाहरण देकर व्याख्या कीजिये।

लघु उत्तरात्मक प्रश्न

1. "पुस्तपालन शिक्षण छात्रों की कुछ अभिवृत्तियों को सुधारता है"। इस कथन की व्याख्या कीजिये।
2. पुस्तपालन शिक्षण के कोई पाँच विशिष्ट उद्देश्य लिखिये।
3. पुस्तपालन के किसी एक शीर्षक को चुनें तथा उसे पढ़ाने के लिए किन्हीं चार विशिष्ट उद्देश्यों का लेखन व्यवहारगत परिवर्तन के रूप में कीजिये।
4. तलपट पढ़ाने के लिए किन्हीं चार विशिष्ट उद्देश्यों का लेखन कीजिये।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. ..... उस समय तक जीवनोपयोगी नहीं है जब तक कि व्यावहारिक जीवन में उसका उपयोग न हो।
2. ..... शिक्षण के द्वारा व्यक्तिगत अभिवृत्तियों का विकास किया जा सकता है।
3. प्रथम सोपान पुस्तपालन शिक्षण के लिए कौन-सा है ?
   (अ) कार्य-विधि निर्धारण (ब) उपागम का निर्धारण
   (स) कौशल का इतिहास (द) योजना-निर्माण

उत्तर—1. ज्ञान, 2. पुस्तपालन, 3. (द) योजना निर्माण।

7

व्यापार-पद्धति शिक्षण

(TEACHING OF COMMERCIAL PRACTICE)

व्यापार-पद्धति के अन्तर्गत मोटे तौर पर हम व्यावसायिक कार्यक्रम के संचालन क्रय-विक्रय, समय एवं श्रम बचत, यन्त्रों के प्रयोग, पत्रादि की सुरक्षा एवं रखरखाव, कार्य-बंटन, पत्र-व्यवहार आदि तत्वों से सम्बन्धित तथ्यों को सम्मिलित करते हैं। कार्यालय किसी भी व्यवसाय का हृदय होता है जहाँ से व्यवसाय से सम्बन्धित सभी क्रियायें संचालित होती हैं। यहीं से बैंक, बीमा तथा सरकारी संस्थानों के साथ सम्पर्क स्थापित किये जाते हैं। ये सभी तत्व व्यापार-पद्धति के अन्तर्गत आते हैं। व्यापार-पद्धति के अन्तर्गत ही हम बैंक, बीमा तथा अन्य सरकारी संस्थानों के सम्बन्ध में अध्ययन करते हैं। फाइलिंग, पत्र-व्यवहार, श्रम-विभाजन, क्रय-विक्रय, बाजार आदि व्यापार-पद्धति के ही अन्तर्गत आते हैं। अतः व्यापार-पद्धति शिक्षण के द्वारा छात्रों को इन्हीं समस्त प्रकार के तत्वों का ज्ञान कराया जाता है।

भारतवर्ष में व्यापार-पद्धति विषय को विभिन्न नामों से जाना जाता है जैसे "लिपिकीय पद्धति, कार्यालय पद्धति, सचिवीय पद्धति" आदि-आदि। इस विषय का नाम कुछ भी हो विषय-वस्तु सबकी एक जैसी है। भारतवर्ष के विभिन्न राज्यों में शिक्षा व्यवस्था तथा शिक्षा-प्रणालियाँ पृथक्-पृथक् हैं। इस कारण इस विषय का शिक्षण कहीं नवीं कक्षा से प्रारम्भ होता है तो कहीं ग्यारहवीं कक्षा से प्रारम्भ किया जाता है। कुछ राज्यों में कक्षा आठवीं से ही वाणिज्य-विषय के सामान्य शिक्षण की व्यवस्था है, जहाँ पुस्तपालन तथा कार्यालय पद्धति का प्रारम्भिक ज्ञान छात्रों को प्रदान किया जाता है।

वाणिज्य के क्षेत्र में व्यापार-पद्धति ज्ञान का बड़ा ही महत्व है। व्यापार-पद्धति के ज्ञान से छात्रों में किसी भी कार्यालय के संचालन तथा उसके दिन-प्रतिदिन के कार्यों के सम्पादन में कुशलता आती है। विकासमान भारत तीव्रगति से औद्योगिक तथा व्यावसायिक प्रगति कर रहा है। प्रगति की इस राह में नये-नये व्यावसायिक कार्यालय स्थापित हो रहे हैं। इन कार्यालयों के सफल संचालन हेतु योग्य एवं कुशल कर्मचारियों की बड़ी मात्रा में आवश्यकता है। इतनी बड़ी मात्रा में कुशल एवं दक्ष कर्मचारियों की शिक्षा के लिए व्यावसायिक शिक्षा विशेषकर व्यापार पद्धति ज्ञान की शिक्षा परमावश्यक है। व्यापार-पद्धति ज्ञान की बढ़ती हुई माँग को देखते हुए ही आज अधिक से अधिक विद्यालयों में वाणिज्य शिक्षा दी जा रही है, तथा वाणिज्य शिक्षा के लिए नये-नये विद्यालय स्थापित किये जा रहे हैं। आज तो व्यापार-पद्धति के ज्ञान की महिलाओं में भी

(4) समूहों में कार्य करने से छात्रों में सामूहिकता की भावना विकसित होती

(5) इस योजना में कार्यालय में उपलब्ध सभी उपकरणों का समुचित

सम्भव है।

(6) यह कम खर्चीली योजना है क्योंकि इसमें सभी छात्रों के लिए उपकरण

खरीदने पड़ते हैं। थोड़े से उपकरणों से ही इस योजना में सभी छात्रों को सिखाया

सकता है।

(7) इस योजना में किसी उपकरण पर कभी कोई समूह तो कभी कोई समूह

करता है। कोई भी उपकरण खाली नहीं पड़ा रहता है। इससे उपकरणों का पूरा

उपयोग सम्भव है।

घूर्णन योजना की कमियाँ

(1) इसमें सामूहिक शिक्षण की व्यवस्था होती है अतः इसमें व्यक्तिगत शि

सम्भव नहीं है।

(2) इस योजना में विद्यालय के पास एक ही प्रकार के कम से कम

उपकरण होने चाहिये जितने कि एक समूह में छात्र होते हैं।

(3) एक समय में पृथक्-पृथक् समूह पृथक्-पृथक् स्थानों पर कार्य करते

इससे एक अध्यापक पृथक्-पृथक् जगह जाकर छात्रों को आवश्यक निर्देशन

सहायता प्रदान नहीं कर सकता है।

(4) एक समूह में यदि प्रतिभावान, औसत तथा निम्न औसत छात्र है

प्रतिभावान ही सामान्यतः उपकरणों पर अधिक कार्य करके जल्दी कौशल विकसित

लेते हैं शेष छात्र ऐसे ही रह जाते हैं।

(5) यदि योग्यता के आधार पर प्रतिभावान, औसत तथा निम्न-औसत छात्रों

समूह बनाये गये हैं तो प्रतिभावान छात्रों का समूह शीघ्र ही कौशल विकसित करके

के विभाग में चला जायेगा। इस प्रकार वे सम्पूर्ण चक्र का शीघ्र ही घूर्णन कर

जबकि अन्य छात्रों को अपेक्षाकृत अधिक समय लगेगा। इससे सम्पूर्ण कक्षा समान

से नहीं चल पाती है।

(6) इस योजना में शिक्षक को केवल असुविधा ही होती है वरन् इसे कठि

तथा परेशानी भी होती है क्योंकि शिक्षण को एक ही समय छात्रों की विभिन्न प्रकार

क्रियाओं पर ध्यान देना पड़ता है इससे शिक्षक को बड़ी कठिनाई का सामना

पड़ता है।

(7) इस योजना में शिक्षक को यह अवसर नहीं मिलता कि वह छात्रों

कार्यालय के विभिन्न उपकरणों या विभागों के सम्बन्ध में कुछ बता सकें और न छात्रों

ही ऐसा अवसर मिलता है कि किसी उपकरण पर या किसी विभाग में कार्य करने से

वे कुछ उसके सम्बन्ध में जान सकें।

(2) अनुबन्धित घूर्णन योजना (Expanded Rotation Plan)

कार्यालय पद्धति शिक्षण योजना के अन्तर्गत घूर्णन-योजना के सुधरे, परिमार्जित तथा परिवर्द्धित रूप को अनुबन्धित घूर्णन योजना के नाम से जाना जाता है। घूर्णन योजना तथा इस योजना में कोई विशेष अन्तर नहीं है। घूर्णन योजना की एक

आलोचना है कि इसमें किसी उपकरण पर कार्य करने से पूर्व छात्रों को उस उपकरण के सम्बन्ध में कुछ भी स्पष्ट नहीं किया जाता है। घूर्णन योजना की इस आलोचना को दूर करने के लिए शिक्षण की यह योजना बनाई गई। यह योजना है तो घूर्णन योजना जैसी, अन्तर केवल-इतना है कि इस योजना में व्याख्या, वर्णन, कथन तथा ऐसे ही अन्य साधनों के द्वारा छात्रों को किसी उपकरण तथा कार्यालय विभाग के सम्बन्ध में पूर्ण-परिचय प्रदान कर दिया जाता है। उपकरण तथा विभाग के सम्बन्ध में पूर्ण-परिचय प्राप्त कर लेने से उस उपकरण पर अथवा विभाग में छात्र को कुशलता प्राप्त करने में अधिक कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ता है। अनुबन्धित घूर्णन योजना में व्यावहारिक तथा प्रयोगात्मक कार्य पर भी अपेक्षाकृत अधिक बल दिया जाता है। इसलिए यह शिक्षण-योजना सामान्य घूर्णन योजना से कहीं अधिक श्रेष्ठ तथा उत्तम है।

(3) कार्यालय प्रारूप योजना (Office Model Plan)

कार्यालय प्रारूप योजना के अन्तर्गत विद्यालय परिसर में ही एक कार्यालय का प्रारूप (Model) निर्मित किया जाता है। दूसरे शब्दों में विद्यालय में ही किसी व्यावसायिक संस्था के कार्यालय जैसा एक कार्यालय स्थापित किया जाता है जिसमें छात्रगण ही विभिन्न पदों पर काल्पनिक रूप से नियुक्त कर दिये जाते हैं। ये छात्र अपने काल्पनिक पदों पर रहकर काल्पनिक कार्यालय के विभिन्न कार्यों को सम्पादित करते हैं। इस काल्पनिक कार्यालय में काल्पनिक पदों पर कार्य करते-करते ही छात्र कार्यालय के विभिन्न विभागों तथा उपकरणों का प्रयोग करने का कौशल प्राप्त कर लेते हैं।

इस योजना के अन्तर्गत छात्रों को कार्यालय के विभिन्न कार्यों का आबंटन किया जाता है, उसके कार्यों की रूपरेखा बनाई जाती है, उन्हें कार्य प्रणाली समझाई जाती है, उनको आवश्यक निर्देशन प्रदान किया जाता है तथा समय-समय पर उनका एक विभाग से दूसरे विभाग में हस्तान्तरण किया जाता है। अन्तर्विभागीय हस्तान्तरण की व्यवस्था बड़ी उपयोगी तथा आवश्यक है क्योंकि इससे छात्र कार्यालय के विभिन्न विभागों के कार्यों को सम्पन्न करने में कुशलता प्राप्त करता है।

कुछ शिक्षक इस योजना को परिमार्जित तथा उपयोगी रूप में प्रयुक्त करते हैं। वे इस काल्पनिक कार्यालय में कार्य करने की मासिक या सामयिक रूपरेखा तैयार करते हैं जिसके अनुसार छात्रों को प्रतिदिन कार्य का आबंटन किया जाता है। छात्र अपने को आबंटित कार्य का सम्पादन करते हैं और वे करके सीखते हैं। इससे सीखना न केवल व्यावहारिक बन जाता है वरंच वह प्रायोगिक तथा जीवनोपयोगी भी बन जाता है।

कार्यालय प्रारूप योजना के लाभ

(1) कार्यालय प्रारूप योजना छात्रों को कार्यालय कार्य-पद्धति का वास्तविक तथा व्यावहारिक ज्ञान प्रदान करती है।

(2) इससे छात्रों में कार्य के प्रति निष्ठा जाग्रत होती है।

(3) इसमें व्यक्तिगत निर्देशन संभव है।

(4) यह योजना छात्रों को व्यावसायिक प्रशिक्षण प्रदान करती है।

(5) इस योजना मे प्रतिदिन एक ही प्रकार का कार्य नहीं करना पड़ता। रोजाना के कार्य मे परिवर्तन होते रहने से कार्य मे सरसता तथा रोचकता बनी रहती है।

(6) एक विभाग मे कई छात्र काम करते हैं इससे उनमे मिल-जुलकर सामूहिक रूप से कार्य करने की आदत का विकास होता है।

(7) छात्रो को कार्यालय वातावरण का ज्ञान होता है तथा वे उस वातावरण के साथ समायोजित होने की आदत का विकास करते हैं।

कार्यालय प्रारूप योजना के दोष

(1) आर्थिक रूप से कम सम्पन्न विद्यालयों के लिए यह बड़ा कठिन है कि वे अपने प्रांगण मे एक ऐसे व्यावसायिक कार्यालय का प्रारूप बना सकें जिससे सभी आवश्यक उपकरण तथा साज-सज्जा हो। इस दृष्टिकोण से यह योजना खर्चीली है।

(2) इस योजना के एक ही समय में पृथक्-पृथक् छात्र पृथक्-पृथक् उपकरणों पर तथा विभागों मे कार्य करते हैं। इस कारण शिक्षक के लिए यह बड़ा कठिन हो जाता है कि वह उन्हें एक ही समय पर सही परामर्श तथा निर्देशन दे सके।

(3) इसमें व्यक्तिगत शिक्षण प्रदान करने में कठिनाई होती है।

(4) आवश्यक नहीं कि प्रारूप कार्यालय ठीक वास्तविक कार्यालय जैसा ही हो। इसलिए प्रारूप कार्यालय का वातावरण भी वास्तविक कार्यालय से भिन्न हो सकता है।

(5) छात्रों के मन में एक धारणा बन जाती है कि यह तो वास्तविक कार्यालय नहीं है अतः इसमें वे उस ढंग से कार्य नहीं करते हैं जिस ढंग से किसी वास्तविक कार्यालय में कार्य होता है।

(6) यह योजना पर्याप्त श्रम एवं लगन चाहती है। प्रतिदिन छात्रों को कार्य का आबंटन करके, उन्हे कार्य पर भेजना, नया कार्य उन्हें समझाना आदि अनेक ऐसे कार्य हैं जिनके लिए काफी श्रम एवं समय की आवश्यकता पड़ती है।

(4) बैटरी-योजना (Battery Plan)

सामान्यतः विद्यालयों में टंकण (Type-writing) शिक्षण के लिए शिक्षण बैटरी योजना का ही प्रयोग करते हैं। इस योजना के अन्तर्गत यह व्यवस्था की जाती है कि कार्य करने के लिए प्रत्येक छात्र को एक-एक उपकरण उपलब्ध हो जाये। इस प्रकार से एक समय में उतने ही छात्र कार्य कर सकते हैं जितने कि विद्यालय के पास उपकरण उपलब्ध हैं। उदाहरण के लिए फाइलिंग में वर्टीकल फाइल सिस्टम सिखाना है तो जितने छात्र हैं उतनी ही वर्टीकल फाइलें होनी चाहिए, यदि छात्रों को चैक लिखने या तारीख डालने की मशीन के सम्बन्ध में बताना है तो जितने छात्र हैं उतनी ही वे मशीनें होनी चाहिए जिससे प्रत्येक छात्र को एक-एक मशीन या यन्त्र दिया जा सके।

बैटरी योजना में सभी छात्र एक समय में एक ही प्रकार के यन्त्रों पर या विभाग में कार्य करते हैं। यदि वे टंकण का अभ्यास कर रहे हैं तो सभी छात्र एक साथ टंकण का पृथक्-पृथक् यन्त्रों पर कार्य करेंगे। इसके लिए आवश्यक है कि विद्यालय पर्याप्त मात्रा में साधन सम्पन्न हो। उसके पास विभिन्न प्रकार के यन्त्रों में से प्रत्येक की इतनी संख्या हो जितनी कि छात्रों की है। फिर यन्त्रों को रखने के लिए आवश्यक एवं सुरक्षित स्थान भी चाहिए।

बैटरी योजना के लाभ

(1) सीखने के लिए प्रत्येक छात्र को एक-एक उपकरण उपलब्ध रहता है इससे सीखने की प्रक्रिया सहज, सुगम तथा मनोवैज्ञानिक हो जाती है।

(2) इस योजना में क्योंकि एक समय में सभी छात्र एक ही प्रकार की क्रिया करते हैं अतः शिक्षक उनको निरीक्षण तथा परामर्श सरलता के साथ दे सकता है।

(3) यह योजना छात्रों में स्वस्थ प्रतिस्पर्धा जाग्रत होती है। इससे छात्रों में कौशल विकसित करने मे सहायता मिलती है।

(4) इस योजना में वाणिज्य शिक्षण की प्रयोगशाला सुविधापूर्वक बनाई जा सकती है।

(5) छात्रों को अपनी उन्नति तथा प्रगति की साथ ही साथ जानकारी मिलती रहती है। इससे उन्हें और अधिक कौशल अर्जित करने की प्रेरणा प्राप्त होती है।

(6) छात्र लगातार कई दिन तक एक ही उपकरण पर कार्य करते हैं इससे उन्हें अभ्यास करने के लिए अधिक समय मिलता है। जब अधिक अभ्यास होता है तो उनमें कौशल का विकास भी जल्दी हो जाता है।

बैटरी योजना के दोष

(1) यह योजना अत्यन्त खर्चीली है क्योंकि इसमें प्रत्येक छात्र के लिए पृथक्-पृथक् उपकरणों की आवश्यकता होती है अतः इसमें जितने छात्र होते हैं उतने ही यन्त्रों की आवश्यकता होती है।

(2) छात्र एक समय में एक ही उपकरण पर कार्य करता है परिणामस्वरूप दूसरे उपकरण बेकार पड़े रहते हैं। यह अपव्यय है।

(3) अत्यधिक आर्थिक भार के कारण सामान्य विद्यालयों के लिए इस योजना को प्रयोग में लाना कठिन होता है।

(4) यह योजना छात्रों में व्यक्तिगत गुणों का विकास करने में असफल रहती है।

(5) यह योजना कार्यालय में श्रम एवं समय बचाने वाले उपकरणों के प्रयोग करने में तो कौशल विकसित कर सकती है किन्तु वह कार्यालय के अन्य अनेक कार्यों को सम्पन्न करने की विधि का प्रशिक्षण नहीं दे पाती है।

(5) सहकारी योजना (Co-operative Plan)

यह योजना केवल उन स्थानों पर ही लागू की जा सकती है जहाँ पर्याप्त मात्रा में व्यापारिक कार्यालय होते हैं। व्यापारिक कार्यालय अधिकतर नगरों में ही होते हैं, इसलिए सहकारी योजना भी केवल नगरीय विद्यालयों में सफलतापूर्वक चलाई जा सकती है।

सहकारी योजना में विद्यालय तथा नगर के व्यापारिक कार्यालयों के परस्पर सहयोग से चलती है। इस योजना में कार्यालय कार्य-विधि का प्रारम्भिक ज्ञान प्राप्त कर लेने के बाद छात्र नगर के विभिन्न या किसी एक कार्यालय में जाते हैं जहाँ वे अन्य नियमित कार्यालय कर्मचारियों की भाँति कार्य करते हैं। इन कार्यालयों में छात्र कार्यालयों की वास्तविक कार्य-प्रणाली से परिचित होते हैं। कार्यालय में घूर्णन प्रणाली के द्वारा छात्र कार्यालय के हर विभाग के कार्यों का वास्तविक तथा व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त कर लेता

है। किसी भी कार्यालय की कार्य-प्रणाली का वास्तविक तथा व्यावहारिक ज्ञान प्र... करने के लिए यह योजना सर्वोत्तम है क्योंकि इस योजना में छात्र किसी काल्पनि... कार्यालय के स्थान पर एक वास्तविक कार्यालय में कार्य करते हैं। इस योजना... सफलता बहुत बड़ी मात्रा में इस बात पर निर्भर करती है कि नगर के व्यापारि... कार्यालय विद्यालयों को किस मात्रा तक अपना सहयोग प्रदान करते हैं।

सहकारी योजना के लाभ

(1) यह योजना छात्रों को कार्यालय कार्य-प्रणाली का वास्तविक ज्ञान देती है।

(2) छात्रों का किसी कार्यालय के वास्तविक वातावरण का ज्ञान होता है।

(3) छात्रों को विभिन्न कार्यों में कौशल विकसित करने का अच्छा अवसर मिलता है।

(4) छात्र उन व्यक्तियों की देखरेख में कार्य करते हैं जिन्हें कार्यालय में कार्य करने की लम्बा अनुभव होता है।

(5) इस योजना से कार्यालयों को भी लाभ मिलता है। वे इन छात्रों में योग्य, होनहार तथा उपयुक्त छात्रों का अपने कार्यालय के लिए चयन कर सकने में सक्षम होते हैं। अतः कार्यालयों को उपयुक्त कर्मचारी मिलते हैं।

(6) इस योजना से कार्यालय को निःशुल्क कार्य करने हेतु छात्र के रूप में कुछ समय के लिए कर्मचारी मिल जाते हैं।

सहकारी योजना के दोष

(1) यह योजना केवल नगरीय विद्यालय ही अपना सकते हैं।

(2) इसमें छात्रों का शोषण सम्भव है। छात्रों पर कार्य भार बढ़ जाता है।

(3) विद्यालय के लिए यह कठिन होता है कि वे व्यापारिक कार्यालयों का बराबर तथा वांछित मात्रा में सहयोग प्राप्त करते रहें।

(4) छात्र अपनी अपरिपक्वता के कारण कभी-कभी कार्यालयों में अव्यवस्था तथा अनुशासनहीनता की स्थिति उत्पन्न कर देते हैं।

(5) यह योजना छात्रों में मानवीय गुणों का विकास करने में अधिक सफल नहीं होती है।

विद्यालय को चाहिए कि उपरोक्त योजनाओं में से अपने साधन एवं सुविधाओं को ध्यान में रखते हुए किसी एक योजना का चयन करे। किन्तु जो भी योजना चुनी जाये, उसके कार्यक्रम सोच-विचार कर बनाये जायें तथा उनका परिश्रम के साथ क्रियान्वयन हो तभी वांछित उद्देश्य प्राप्त हो सकेंगे।

अभ्यास-प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न

1. व्यापार पद्धति विषय का परिचय देते हुये व्यापार पद्धति शिक्षण के विशिष्ट उद्देश्यों का वर्णन कीजिये।
2. व्यापार पद्धति शिक्षण की विभिन्न शिक्षण योजनाओं का संक्षेप में परिचय दीजिये।
3. व्यापार पद्धति शिक्षण की घूर्णन योजना का विस्तार से वर्णन कीजिये।
4. व्यापार पद्धति शिक्षण की बैटरी योजना से आप क्या समझते हैं ? विस्तार से स्पष्ट कीजिये।

लघु उत्तरात्मक प्रश्न

1. व्यापार पद्धति शिक्षण के किन्हीं चार ज्ञानात्मक उद्देश्यों का उल्लेख कीजिये।
2. व्यापार पद्धति की सरकारी योजना का परिचय दीजिये।
3. व्यापार पद्धति शिक्षण के चार अभिरुच्यात्मक उद्देश्यों का लेखन कीजिये।
4. व्यापार पद्धति की घूर्णन योजना के लाभ एवं दोष लिखिये।
5. व्यापार पद्धति शिक्षण की कार्यालय प्रारूप योजना का परिचय दीजिये।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. विभिन्न प्रकार के पत्रों की तुलना व अन्तर कराना किस व्यापार पद्धति शिक्षण के उद्देश्य के अन्तर्गत आता है ?
   (अ) ज्ञानात्मक (ब) कौशलात्मक
   (स) अवबोधात्मक (द) अभिरुच्यात्मक
2. कार्यालय प्रारूप योजना के अन्तर्गत छात्रों को कार्यालय के विभिन्न कार्यों का .....किया जाता है।
3. किस योजना में छात्र एक ही प्रकार के यन्त्र पर या विभाग में कार्य करते हैं ?
   (अ) सहकारी योजना (ब) बैटरी योजना
   (स) कार्यालय प्रारूप योजना (द) घूर्णन योजना

उत्तर—1. (स) अवबोधात्मक, 2. आबंटन, 3. (ब) बैटरी योजना।

8

टंकण एवं आशुलिपि-शिक्षण

(TEACHING OF TYPE-WRITING AND SHORT-HAND)

आधुनिक युग में टंकण तथा आशुलिपि लेखन का बड़ा ही महत्त्व तथा उपयोगि है। टंकण तथा आशुलिपि लेखन दोनों ही रोजगारोन्मुख प्रशिक्षण हैं जिनकी आज व्यापारिक कार्यालयों में बहुत अच्छी माँग है। वर्तमान समय में जिसे टंकण आशुलिपि का अच्छा कौशल प्राप्त है वह लम्बे समय तक बेरोजगार नहीं रह सकता। बेरोजगारी के इस भयावह युग में टंकण तथा आशुलिपि के सहारे रोजगार पाने में सफलता मिलती है उससे छात्रों में इसकी लोकप्रियता बढ़ रही है। इसकी माँग के के कारण विद्यालयों में भी इस विषय को पढ़ाने की व्यवस्थायें बढ़ाई जा रही हैं। तथा आशुलिपि शिक्षण के लिये न केवल पुराने विद्यालयों में नई व्यवस्थायें की जा हैं वरंच इसके लिये नये विद्यालय स्थापित किये जा रहे हैं। राष्ट्र की औद्योगिक व्यावसायिक प्रगति के साथ-साथ नये-नये व्यापारिक कार्यालय अस्तित्व में आ रहे इन व्यावसायिक कार्यालयों की स्थापना के कारण टंकण तथा आशुलिपि का महत्त्व माँग तीव्र गति से बढ़ गई है। अतः आवश्यक है कि कम समय में अधिक से अधि छात्रों को इन कौशलों का प्रशिक्षण दिया जाय। टंकण तथा आशुलिपि शिक्षण के आधारों का अध्ययन वाणिज्य शिक्षण के लिये आवश्यक है।

टंकण-शिक्षण के उद्देश्य

(1) टंकण-यन्त्र की संरचना तथा उसके विभिन्न अंगों का परिचय देना।

(2) टंकण-यन्त्र के विभिन्न अंगों के कार्यों को स्पष्ट करना।

(3) टंकण-यन्त्र के द्वारा टंकण करने की विधि का ज्ञान कराना।

(4) टंकण कार्य में दक्षता का विकास करना।

(5) टंकण के प्रति नवीन एवं विकसित दृष्टिकोण का विकास करना।

(6) टंकण को व्यावहारिक जीवन में प्रयोग करने की अभिवृत्ति का विक करना।

(7) टंकण-यन्त्र में आई छोटी-मोटी खराबियों को स्वयं ही दूर कर सकने योग्यता का विकास करना तथा यन्त्र के रखरखाव को भली प्रकार कर सकने योग्यता का विकास करना।

(8) टंकण कार्य में गति एवं शुद्धता लाने की दक्षता का विकास करना।

टंकण-शिक्षण के सोपान

टंकण-शिक्षण के मूलतः दो सोपान हैं—

(1) कुंजी पटल का ज्ञान

(2) टंकण में दक्षता

कुंजी पटल का ज्ञान देने के लिए सामान्यतः नीचे लिखे चार उपागमों का प्रयोग किया जाता है—

(1) गृह पंक्ति उपागम

(2) अँगुली उपागम

(3) शब्द उपागम

(4) सम्पूर्ण पटल उपागम

नीचे इन चार उपागमों का संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है—

(1) गृह पंक्ति उपागम

अंग्रेजी भाषा के टंकण यन्त्र में कुंजी पटल में चार पंक्तियाँ होती हैं। सबसे ऊपर की पंक्ति में संख्याएँ तथा शेष नीचे की तीन पंक्तियों में अक्षर होते हैं। अक्षरों की तीन पंक्तियों में बीच की पंक्ति गृह पंक्ति होती है जिसमें A, s, d, f, g, h, i, j, k, l तथा ; होते हैं। गृह पंक्ति उपागम में सर्वप्रथम इसी पंक्ति के अक्षरों का ज्ञान छात्रों को कराया जाता है। इस उपागम में छात्र के उल्टे हाथ की सबसे छोटी अँगुली 'A' अक्षर पर तथा अँगूठे के पास वाली अंगुली 'F' अक्षर पर रहती हैं जो अपने आगे वाले अक्षर 'G' पर भी कार्य करती है। इसी प्रकार सीधे हाथ की कनिष्ठ अँगुली ';' चिन्ह पर तथा अँगूठे के पास वाली अँगुली अक्षर 'J' पर रहती है जो 'H' पर भी कार्य करती है।

गृह पंक्ति उपागम में छात्र सबसे पहले मध्य पंक्ति के अक्षरों को टाइप करने का अभ्यास करता है। इसके बाद ऊपर तथा नीचे की पंक्ति पर अँगुली चलाने का अभ्यास कराया जाता है। इस क्रम में अँगूठे के पास वाली अँगुली पर सबसे अधिक कार्य रहता है क्योंकि इसमें उल्टे हाथ की इस अँगुली पर F, G, R, T तथा B अक्षरों को टंकण करने का कार्य रहता है। ठीक इसी प्रकार सीधे हाथ की इस अँगुली पर भी पाँच अक्षर टंकित करने का कार्य रहता है। इसके अलावा संख्याओं को टंकित करने का भी इन पर कार्य रहता है।

(2) अँगुली उपागम

टंकण यन्त्र का प्रयोग करते समय दोनों हाथों की आठों अँगुलियाँ अलग-अलग अक्षर टंकित करने के लिए दायी होती हैं। उदाहरण के लिए उल्टे हाथ की कनिष्ठका (सबसे छोटी अंगुली) A, R तथा Z अक्षरों पर आघात लगाती है। इसी प्रकार हर अँगुली कुछ विशेष अक्षरों की कुंजियों पर आघात लगाने के लिए उत्तरदायी होती है। इस उपागम में एक अँगुली के हिस्से से टंकण के लिए जो अक्षर आते हैं उन सभी का एक साथ अभ्यास कराया जाता है जैसे उल्टे हाथ की संकेतिका (अँगूठे के पास वाली अँगुली) सबसे पहले F, G, R, T तथा B अक्षरों पर आघात लगाने का अभ्यास करती है। इसी प्रकार अन्य अँगुलियाँ भी अपने-अपने अक्षरों को टाइप करने का अभ्यास करती हैं।

जब एक अँगुली अपने अक्षरों को टाइप करने का अभ्यास कर लेती है तो दूसरी अ... द्वारा अभ्यास कराया जाता है।

(3) शब्द उपागम

जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है इस उपागम में पहले से ही पूरे के पूरे शब्द ... करने का अभ्यास कराया जाता है किन्तु यह ध्यान रखा जाता है कि प्रारम्भ में छा... ऐसे शब्द समूह टंकित करने को दिये जाते हैं जिनका टंकण अपेक्षाकृत सरल हो... जैसे—as, ass आदि। जैसे-जैसे छात्र शब्दों के टकण की दक्षता प्राप्त करता चला ... है। शब्दों की टंकण की दृष्टि से जटिलता वाले शब्दों की संख्या बढ़ती चली जा...

(4) सम्पूर्ण उपागम

सम्पूर्ण उपागम में टंकण-यन्त्र तथा उसके विभिन्न अंगों के कार्यों तथा उनके ... को स्पष्ट किया जाता है। तत्पश्चात् छात्र पूर्व ही अक्षर-पटल के सभी अक्षरों को ... करने का अभ्यास करते हैं। इस प्रकार छात्र इस उपागम में प्रारम्भ से ही सभी ... को टंकित करने का अभ्यास करते हैं। इस उपागम में एक निश्चित सैट को ... करने के लिए बार-बार अभ्यास (Drill) कराया जाता है।

टंकण कार्य में दक्षता

कुंजी पटल के ज्ञान के अलावा टंकण शिक्षण का दूसरा सोपान टंकण में ... का विकास करना है। ऊपर हमने टंकण के लिए कुंजी पटल के ज्ञान के चार उप... का अध्ययन किया। कुंजी पटल का ज्ञान हो जाने के बाद टंकण कार्य में दक्षता ... विकास करने की आवश्यकता होती है। टंकण कार्य में गति तथा शुद्धता का दि... करने के लिए नीचे लिखे चरण अपनाये जा सकते हैं—

(1) आघात अभ्यास चरण
(2) तकनीकी अभ्यास चरण
(3) गति अभ्यास चरण
(4) शुद्धता अभ्यास चरण
(5) एकाग्रता अभ्यास चरण

उपरोक्त पाँच चरणों में गुजरने के बाद ही कोई छात्र टंकण कार्य में कुशल... प्राप्त कर सकता है। इन पाँच चरणों का संक्षिप्त परिचय नीचे दिया गया है—

(1) आघात अभ्यास चरण

टंकण शिक्षण का सबसे पहला चरण है सही कुंजी पटल पर दिये अक्षरों पर ... रूप से आघात देना। आघात बहुत धीरे या बहुत जोर से किया जा सकता है अथ... आघात देते समय अँगुली लम्बी अवधि तक अक्षर पर रखी जा सकती है या अँगुली ... बहुत जल्दी ही उठाया जा सकता है या फिर कभी आघात जोर से लग जाता है ... कभी बहुत धीमा आघात लगता है इससे टंकण कार्य में एकरूपता तथा सुन्दरता ... आती है। अतः सबसे पहले छात्रों को आघात लगाने की सही तकनीकी बतानी चाहि... आघात कितने जोर से लगे तथा कुंजी पर कितनी देर अँगुली रखी जाय, ... टंकण-यन्त्र की बनावट पर निर्भर है। यदि कुंजी कड़ी है तो थोड़ा जोर से आघात ...

पड़ेगा। आघात लगाना सिखाने के लिए प्रदर्शन विधि ही सर्वोत्तम है। वैसे छात्र अपनी अँगुलियों की ताकत तथा यन्त्र की बनावट के हिसाब से आघात लगाना स्वयं अभ्यास से ही सीख जाता है।

(2) तकनीकी अभ्यास चरण

टंकण कार्य एक तकनीकी कार्य है इसलिए इस कार्य की तकनीक जानकर उस तकनीक का अभ्यास करना चाहिए। कागज लगाना, लीवर को आगे-पीछे करना, अन्तर-छड (Spacing rod) का सही प्रयोग करना, आगे-पीछे करने वाले अंग का सही प्रयोग करना, अन्तर (Space) की सही व्यवस्था करना आदि अनेक तकनीकी कार्य टंकणकर्त्ता को करने पड़ते हैं। इन कार्यों का पर्याप्त रूप से छात्रों से कराना आवश्यक है। इसके लिए शिक्षक प्रदर्शन तथा अभ्यास विधि का प्रयोग कर सकता है। छात्रों द्वारा टंकण-कार्य किया जा रहा है तब उनका निरीक्षण कर आवश्यक निर्देशन प्रदान कर सकता है।

(3) गति अभ्यास चरण

कुंजी ज्ञान तथा टंकण उपकरण की तकनीक का ज्ञान हो जाने के बाद टंकण गति में वृद्धि करने का समय आता है। छात्र अपनी गति बनाने के टंकण कार्य करता है। इस अवस्था पर ही छात्र को बताया जाता है कि कुंजी पर अँगुलियाँ कितने दबाव के साथ रहें, टंकण में गति कैसे लाई जाय। टंकण में गति लाने की सर्वोत्तम विधि अभ्यास है। छात्र समय तत्त्व को ध्यान में रखकर जितना अधिक गति अभ्यास करेगा उसकी टंकण गति उतनी ही बढ़ेगी। गति यन्त्र की स्थिति, अँगुलियों का स्वास्थ्य, सामान्य बौद्धिक योग्यता तथा ऐसे ही कतिपय अन्य कारणों पर बहुत कुछ निर्भर करती है।

(4) शुद्धता अभ्यास चरण

गति आ जाने के साथ-साथ टंकण कार्य में शुद्धता लाने की भी आवश्यकता पड़ती है। शुद्धता के लिए सही कुंजियों पर आघात आवश्यक है। कभी-कभी एक ही प्रकार की गलती बार-बार होती है जैसे कोई छात्र हर बार 'The' को hte अंकित करता है। या 'tion' को 'toin' अंकित करता है। इस प्रकार की त्रुटियाँ मनोवैज्ञानिक त्रुटियाँ हैं। उन्हें मनोवैज्ञानिक ढंग से ही दूर किया जा सकता है। इसके लिये कभी-कभी उस अक्षर को अनेक बार टंकित करने को भी कहा जा सकता है।

(5) एकाग्रता अभ्यास चरण

टंकण में गति एवं शुद्धता आने के बाद एकाग्रता तथा तन्मयता लाने की आवश्यकता होती है। एकाग्रता के लिये अध्यापक को चाहिये कि वह छात्रों में टंकण के प्रति आवश्यक तथा उचित अभिवृत्ति का विकास करे एवं उन्हें इस कार्य हेतु प्रेरणा प्रदान करता रहे। अभिवृत्ति तथा प्रेरणा प्रदान करने के शिक्षक विविध मनोवैज्ञानिक विधियों को अपना सकता है।

टंकण में गति एवं शुद्धता

टंकण कार्य एक कौशल कार्य है। इसमें केवल गति की ही आवश्यकता होती है वरन् इसमें गति के साथ ही साथ शुद्धता की भी आवश्यकता होती है। टंकण जल्दी

से जल्दी करना आवश्यक है। किन्तु वह जल्दी के साथ ही साथ ऐसा हो जिसमें बहुत कम हो। वैसे भी आधुनिक युग में जब हम टंकण गति की गणना करते उसमे भी टकण मे की गई अशुद्धियो के आधार पर हिसाब लगाया जाता है। टंकण की गणना के लिये सामान्यतः नीचे लिखी दो विधियों का प्रयोग किया जाता है।

(1) यथा-शब्द टंकण विधि

(2) उत्पादन टंकण विधि

यथा-शब्द टंकण विधि के अन्तर्गत वास्तविक रूप में टंकित शब्दों के आधार टंकण-गति की गणना की जाती है। इसके लिये तीन उप-विधियाँ प्रचलित हैं—

(1) सकल शब्द विधि—इस विधि में एक निश्चित समय में जितने शब्द टंकित किये जाते हैं उनमें कुल प्रयुक्त समय का भाग दे दिया जाता है। गति की गणना यह सबसे सरल विधि है। जैसे किसी छात्र ने 5 मिनट में 150 शब्द टंकित किये उसकी टंकण गति $\frac{150}{5} = 30$ शब्द प्रति मिनट हुई है। इस विधि में टंकण-त्रुटि का कोई हिसाब नहीं रखा जा जाता है।

(2) शुद्ध-शब्द विधि—इस विधि में कुल टंकित शब्दों में अशुद्ध टंकित शब्दों की संख्या घटाकर शेष में समय का भाग टंकण गति ज्ञात की जाती है। जैसे किसी छात्र ने 5 मिनट में 150 शब्द टंकित किये। इसमें 5 शब्द त्रुटिपूर्ण के तो उस छात्र की टंकण गति होगी।

$$\frac{150-5}{5} = \frac{145}{5} = 29 \text{ शब्द प्रति मिनट।}$$

शुद्ध शब्द विधि—इस विधि में अशुद्ध शब्दों के लिये दण्ड की व्यवस्था रहती है। यहाँ कुल टंकित शब्दों में से अशुद्ध टंकित शब्दों में दस का गुणा (यह अशुद्धि की सजा है) करके घटा देते हैं जैसे कोई छात्र पाँच मिनट में 280 शब्द टंकित करता है। इसमें वह सात गलती करता है तो सात में दस का गुणा करके 70 प्राप्त होंगे। फिर 280 में से घटाकर शेष में समय (5 मिनट) का भाग दे देंगे। यही टंकण गति होगी।

$$\frac{280-7\times10}{5} = \frac{280-70}{5} = \frac{210}{5} = 42 \text{ शब्द प्रति मिनट।}$$

इसी प्रकार से उत्पादन टंकण विधि में भी कर्म उप-विधियों का प्रयोग किया जाता है। इन उप-विधियों की चर्चा टंकण की किसी अच्छी पुस्तक में उपलब्ध हो सकती है।

ऊपर टंकण विधि के एक रूप की चर्चा केवल इसलिए की गई है जिससे छात्रों को यह पता चल जाय कि टंकण में गति के साथ-साथ शुद्धता भी परमावश्यक है।

टंकण-शिक्षण का कार्य करने वाले अध्यापक टंकण में शुद्धता तथा गति के लिये नीचे लिखे कार्य कर सकते हैं—

(1) पर्याप्त मात्रा में अभ्यास कराया जाय।

(2) एक ही साथ लम्बे समय तक अभ्यास न कराकर थोड़े-थोड़े अन्तराल से अभ्यास कराया जैसे लगातार तो घण्टे तक टंकण करने की अपेक्षा दिन में चार आधे-आधे घण्टे टंकण करना श्रेष्ठ है।

(3) शुद्ध तथा गति के साथ टंकण करने की प्रेरणा देना।

(4) उपयुक्त भौतिक सुविधाएँ तथा प्रकाश एवं वातायन की व्यवस्था करना।

(5) अभ्यास-अवधि को धीरे-धीरे बढ़ाया जाय।

(6) यह विश्लेषण किया जाय कि छात्र सामान्यतः किस प्रकार की त्रुटियाँ अधिक करता है। उन्हें सुधारने के विशेष प्रयास किये जायें।

आशुलिपि-शिक्षण

आशुलिपि का टंकण के साथ अटूट सम्बन्ध है। जो आशुलिपि जानता है तथा आशुलिपि में लिखता है वह टंकण कार्य भी अवश्य जानता है क्योंकि आशुलिपि को सामान्य लिपि में परिवर्तित करने के लिये टंकण का जानना आवश्यक है क्योंकि फिर आशुलिपि को पुनः हाथ से लिखकर सामान्य लिपि में लिखने से कोई लाभ नही है।

आशुलिपि-शिक्षण के उद्देश्य

(1) भाषा के आशुलिपि में लिखने का कौशल विकसित करना।

(2) आशुलिपि में लिखित विषय-वस्तु को पढ सकने की क्षमता का विकास करना।

(3) आशुलिपि में लिखित विषय-वस्तु को टंकित कर सकने की क्षमता का विकास करना।

(4) सही स्थानों पर विरामादि चिन्हों का प्रयोग करने की योग्यता का विकास करना।

(5) भाषा तथा ध्वनियों को समझ सकने की क्षमता विकसित करना।

(6) व्यावसायिक रूप से आशुलिपि का प्रयोग करना सिखाना।

आशुलिपि-शिक्षण की विधियाँ

आशुलिपि शिक्षण के लिये सामान्यतः दो पद्धतियों का प्रयोग किया जाता है—

(1) ग्रेग विधि अथवा परम्परागत क्रिया।

(2) ब्लेसले विधि अथवा व्यावहारिक विधि।

कुछ अध्यापक कभी-कभी इन दोनों ही विधियों के मिले-जुले रूप का भी प्रयोग करते हैं।

आशुलिपि-शिक्षण हेतु सुझाव

(1) छात्रों में आशुलिपि सीखने हेतु यथेष्ट मात्रा में प्रेरणा तथा रुचि उत्पन्न की जाय।

(2) आशुलिपि कक्षा में पर्याप्त प्रकाश तथा संवातन की व्यवस्था हो।

(3) मेज तथा कुर्सी छात्रों के शरीर के अनुसार हो।

(4) चॉक तथा डस्टर का यथासम्भव प्रयोग किया जाय।

(5) आशुलिपि प्लेटों का विकास कर उनका प्रयोग किया जाय।

(6) छात्रों को अधिकाधिक मात्रा में संयुक्ताकारों का अभ्यास कराया जाय।

(7) समय-समय पर छात्रों की प्रगति की जाँच तथा मूल्यांकन करते रहना चाहिए तथा परिणाम का ज्ञान छात्रों को करा देना चाहिये।

(8) आशुलिपि शिक्षण के लिये किसी प्रभावशाली पद्धति का प्रयोग हो।

(9) आशुलिपि के प्रति एक उचित दृष्टिकोण छात्रों में विकसित किया जाय।

(10) श्रुतिलेख की सामग्री का चयन सावधानीपूर्वक छात्रों के शारीरिक एवं
स्तर के अनुकूल होना चाहिये।

(11) छात्रों की आशुलिपि सीखने में यथासम्भव सहायता की जाए तथा
में जो भी अवरोध तथा कठिनाइयाँ आएँ उन्हें सावधानी के साथ दूर कर देना

अभ्यास-प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न

1. टंकण की उपयोगिता तथा इसके शिक्षण-उद्देश्यों की चर्चा कीजिए।
2. टंकण-शिक्षण के विभिन्न उपागमों का परिचय दीजिए।
3. आप अपने छात्रों में टंकण कार्य में दक्षता के विकास हेतु क्या कदम उठा
हैं ? चर्चा कीजिए।
4. आशुलिपि शिक्षक के उद्देश्यों की चर्चा करते हुये आशुलिपि शिक्षण को प्रभावी
हेतु कुछ सुझाव दीजिये।

लघु उत्तरात्मक प्रश्न

1. टंकण-शिक्षण के गृह-पंक्ति उपागम का संक्षिप्त में विवरण दीजिये।
2. टंकण-शिक्षण के उद्देश्यों की चर्चा कीजिये।
3. टंकण-शिक्षण में आघात अभ्यास चरण के महत्त्व पर प्रकाश डालिये।
4. टंकण-शिक्षण विधि में टंकण की शुद्धता गति का पता किस प्रकार लगा सकते
उदाहरण देकर स्पष्ट कीजिये।
5. आशुलिपि शिक्षण को प्रभावी बनाने हेतु कुछ सुझाव दीजिये।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. ..... तथा ..... लेखन दोनों ही रोजगारोन्मुख प्रशिक्षण हैं।
2. "रीतियाँ उन कार्यों के रूपों की द्योतक हैं जिनसे कुछ पूर्व निर्धारित उद्देश्यों
प्राप्ति होती है तथा कुछ कार्यों से परिपृष्ठ हमारी रक्षा होती है।" उपरोक्त परि
किसकी है ?
   (अ) स्ट्रेसर (ब) स्टोन्स तथा मोरिस
   (स) बी० ओ० स्मिथ (द) इनमें से कोई नहीं
3. "प्रश्न सबसे बड़ा उत्तेजक है और यह अध्यापक को शीघ्र उपलब्ध हो जाता
किसने कहा ?
   (अ) टी० रेमण्ट (ब) कोलविन
   (स) स्ट्रेसर (द) स्टोन्स
4. आशुलिपि का ..... के साथ अटूट सम्बन्ध है।

उत्तर—1. टंकण, आशुलिपि। 2. (स) बी० ओ० स्मिथ। 3. (ब) कोलविन। 4. त

वाणिज्य-शिक्षण के उपागम

(APPROACHES OF COMMERCE TEACHING)

प्रत्येक विषय के शिक्षण की एक प्रणाली तथा व्यवस्था होती है। इतना ही नहीं प्रत्येक शिक्षक का एक प्रारम्भिक बिन्दु या आधार भी होता है जहाँ से हम शिक्षण प्रारम्भ करते हैं अथवा उस आधार को लेकर हम आगे बढ़ते हैं। उदाहरण के लिए हम अंग्रेजी भाषा के शिक्षण को लें तो पाते हैं कि कुछ शिक्षक अंग्रेजी भाषा के शब्दों के अर्थ बताकर अंग्रेजी भाषा का ज्ञान कराते हैं, तो कुछ अंग्रेजी के वाक्यों को आधार बनाकर चलते हैं। आधुनिक समय में अंग्रेजी शिक्षण में संरचना उपागम (Structural Approach) को अधिक मान्यता मिली हुई है। ठीक इसी प्रकार वाणिज्य-शिक्षण के भी कुछ आधार या उपागम हैं, जिनको लेकर अलग-अलग शिक्षक वाणिज्य का अध्यापन कराते हैं। वाणिज्य शिक्षण के क्षेत्र में इस प्रकार के सामान्यतः नीचे लिखे उपागमों का प्रयोग किया जाता है—

(1) जर्नल उपागम (Journal Approach)।
(2) लेजर उपागम (Ledger Approach)।
(3) कैश-बुक उपागम (Cash-Book Approach)।
(4) बैलेन्स शीट या समीकरण उपागम (Balance Sheet or Equation Approach)।

इन उपागमों के अनुसार कुछ शिक्षक छात्रों को सबसे पहले जर्नल का ज्ञान कराकर पुस्तपालन का कराना पसन्द करते हैं तो कुछ दूसरे अध्यापक लेजर को प्रारम्भिक अवस्था में आधार बनाकर शिक्षण प्रारम्भ करते हैं। इसी प्रकार कुछ अन्य अध्यापक रोकड़-बही (Cash-Book) को तो कुछ अन्तिम खातों को लेकर वाणिज्य का शिक्षण प्रारम्भ करते हैं। नीचे इन्हीं चार उपागमों का परिचय दिया गया है—

1. जर्नल उपागम

(JOURNAL APPROACH)

शिक्षण-उपागम विषय-वस्तु को छात्रों के सम्मुख प्रस्तुत करने की एक व्यवस्था है। इसे हम वह विधि भी कह सकते हैं जिसको आधार बनाकर किसी विषय का शिक्षण प्रारम्भ किया जाता है। इसे किसी शिक्षण-परिस्थिति में विषय वस्तु का प्रारम्भिक व्यवस्थापन भी कहा जा सकता है। इस अर्थ में, जर्नल उपागम से तात्पर्य है वाणिज्य की विषय-वस्तु का जर्नल के माध्यम से प्रारम्भिक अवस्था में प्रस्तुतीकरण

करना। जर्नल उपागम से जब शिक्षण प्रारम्भ किया जाता है तब शिक्षक वाणिज्य
की प्रारम्भिक स्थिति में शिक्षक जर्नल का अर्थ, प्रारूप, प्रविष्टि के नियम आदि तथ्य
छात्रों को ज्ञान कराता है। दूसरे, शब्दों में, वह वाणिज्य का शिक्षण जर्नल
प्रारम्भ करता है। यहीं पर शिक्षक दोहरा-लेखा पद्धति (Double Entry System)
ज्ञान छात्रों को कराता है। यह उल्लेखनीय है कि आजकल भारतीय विद्यालय
सामान्यतः इसी उपागम का व्यापक रूप से प्रयोग किया जाता है।

विभिन्न उपागमों में वाणिज्य की विषय वस्तु प्रस्तुत करने की एक विधि
व्यवस्था तथा क्रम होता है। जर्नल उपागम में भी वाणिज्य की विषय वस्तु प्रस्तुत
का एक निश्चित क्रम या व्यवस्था होती है। जर्नल उपागम से शिक्षक विषय-वस्तु प्र
करने के लिए सामान्यतः नीचे लिखा क्रम अपनाता है—

(1) दोहरा लेखा प्रणाली का अर्थ स्पष्ट करना तथा तत् सम्बन्धित शब्दों
व्याख्या करना।

(2) डेबिट तथा क्रेडिट का अर्थ बताना।

(3) विभिन्न प्रकार के सौदों का अर्थ बताकर उनका वर्गीकरण करना सिखाना।

(4) विभिन्न प्रकार के सौदों के डेबिट तथा क्रेडिट पक्षों को स्पष्ट करना।

(5) सौदों की जर्नल में प्रविष्टियाँ करना तथा उनका विवरण लिखना सिखाना।

(6) सौदों की लेजर-बुक में प्रविष्टियाँ करना सिखाना।

(7) लेजर बहियों का जोड़ करके शेष निकालना सिखाना।

(8) तलपट बनाना सिखाना।

(9) अन्तिम खाते बनाना सिखाना।

(10) समापन प्रविष्टियाँ (Closing Entries)।

(11) प्रारम्भिक प्रविष्टियों (Opening Entries) का ज्ञान कराना।

उक्त क्रम से यह स्पष्ट होता है कि शिक्षक सर्वप्रथम पुस्तपालन विज्ञान की दोहरा लेखा प्रणाली के सामान्य ज्ञान से प्रारम्भ करके सभी प्रकार के अन्य खातों का ज्ञान कराता हुआ अन्तिम खातों पर पहुँचता है। इस उपागम में यह ध्यान रखा जाता है कि जिस प्रकार किसी कार्यालय में पहले जर्नल बही में सौदों की प्रविष्टियाँ होती हैं, फिर लेजर बहियों में प्रवृष्टियाँ होती हैं, फिर तलपट बनाया जाता है और अन्त में अन्तिम वार्षिक खाते बनाये जाते हैं, ठीक उसी प्रकार कक्षा में भी इसी क्रम में छात्रों को बताया जाता है।

जर्नल उपागम की विशेषतायें

जर्नल उपागम एक सरल तथा व्यावहारिक रूप से क्रमिक व्यवस्था में, छात्रों के सम्मुख विषय वस्तु के प्रस्तुतीकरण की विधि है। भारतीय विद्यालय में यह विधि बहुत प्रचलित है। इसका प्रमुख कारण इस उपागम की सरलता तथा इसके कतिपय अन्य गुण हैं। इस उपागम में प्रायः निम्नांकित गुण पाये जाते हैं—

(1) जर्नल उपागम विषय-वस्तु प्रस्तुत करने की बड़ी ही सरल प्रणाली है।

(2) जर्नल उपागम में बहीखाता-चक्र (Book-keeping to Cycle) का ठीक उसी क्रम में ज्ञान कराया जाता है जिस क्रम में कोई व्यावसायिक कार्यालय अपने सौदों का

लेखा अपनी पुस्तकों में करता है, इस दृष्टिकोण से यह उपागम तर्क-संगत तथा अधिक व्यावहारिक प्रतीत होता है।

(3) जर्नल उपागम विषय के चरण के अनुसार है।

(4) जर्नल उपागम में पहले दोहरा लेखा प्रणाली के आधारभूत सिद्धान्तों को स्पष्ट करके जर्नल में प्रविष्ट करना सिखाया जाता है जो छात्रों को पर्याप्त सरल लगता है।

उपरोक्त गुणों तथा विशेषताओं के होते हुए भी यह कहा जा सकता है कि जर्नल उपागम शिक्षण की दृष्टिकोण से मनोवैज्ञानिक नहीं है, क्योंकि जर्नल उपागम शिक्षण के मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आधारित नहीं है।

जर्नल उपागम में दूसरा दोष यह है कि इस उपागम के अन्तर्गत छात्र को बिना अपनी वर्तमान स्थिति को समझे, प्रारम्भ से लेकर अन्त का बहुत ही बड़ा तथा लम्बा रास्ता तय करना पड़ता है। इस लम्बाई के कारण छात्र को यह बात भी स्पष्ट नहीं हो पाती है कि वह कहाँ तथा किस दिशा से बढ़ रहा है तथा उसका अन्तिम लक्ष्य क्या है।

2. लेजर उपागम
(LEDGER APPROACH)

कुछ शिक्षक बहीखाता शिक्षण के लिए लेजर उपागम का प्रयोग करते हैं। इस उपागम में वे लेजर को आधार मानकर शिक्षण प्रारम्भ करते हैं। इस स्थिति में वे सर्वप्रथम दोहरा लेखा प्रणाली का परिचय देकर सीधे लेजर का अभ्यास अपने छात्रों को कराते हैं। तत्पश्चात् जर्नल का ज्ञान अपने छात्रों को कराते हैं। इस प्रकार, वे शिक्षण की व्यवस्था नीचे लिखे क्रम में अपनाते हैं—

(1) दोहरा लेखा प्रणाली का अर्थ एवं तत्त्वों का ज्ञान कराना।

(2) डेबिट एवं क्रेडिट पक्षों का ज्ञान कराना।

(3) लेजर बहियों का परिचय एवं उनके प्रारूप का ज्ञान देना।

(4) लेजर बहियों में सौदों की प्रविष्टि सिखाना।

(5) लेजर खातों के शेष निकालना सिखाना।

(6) लेजर खातों के शेष के आधार पर तलपट बनाना।

(7) जर्नल का ज्ञान देना।

(8) जर्नल में प्रविष्टयाँ करना सिखाना।

(9) जर्नल की प्रविष्टियों में विवरण लिखना सिखाना।

(10) अन्तिम खातों का निर्माण करना।

(11) अन्तिम प्रविष्टियाँ करना सिखाना।

(12) प्रारम्भिक प्रविष्टियों (Opening entries) करना सिखाना।

इस प्रकार हम देखते हैं कि लेजर उपागम व्यवस्था के अन्तर्गत शिक्षक सर्वप्रथम लेजर खातों का बनाना सिखाता है। लेजर खातों का अभ्यास कराने के बाद वह जर्नल में प्रविष्टियाँ करना सिखाता है। दूसरे शब्दों में शिक्षक सर्वप्रथम गौण प्रविष्टियों (Secondary entries) की बहियों का ज्ञान अपने छात्रों को कराता है। इस उपागम के आगे लिखे लाभ हैं—

(1) यह उपागम अपेक्षाकृत अधिक तर्कसंगत है।

(2) यह उपागम अधिक मनोवैज्ञानिक है क्योंकि छात्रों को सम्पत्ति तथा दायि को आसानी से समझाया जा सकता है।

(3) इस उपागम में छात्रों को सरलता से प्रेरणा दी जा सकती है।

2. दोष

समीकरण उपागम में कुछ दोष भी हैं जैसे—

(1) यह विषय-वस्तु का ज्ञान शुरू से न कराकर अन्त से प्रारम्भ करती है।

(2) बहीखाता चक्र को यहाँ उल्टा चलाना पड़ता है जिससे छात्रों को समझ कठिनाई होती है।

(3) इस उपागम से सीखने पर व्यावहारिक रूप में कार्य करने में कठिनाई आ है।

(4) इस उपागम से व्यावहारिक शिक्षा नहीं दी जा सकती है।

इन दोषों के बावजूद भी आज के वाणिज्य शिक्षक समीकरण उपागम अपेक्षाकृत अधिक उपयोगी तथा वैज्ञानिक समझते हैं इसलिये भारतीय विद्यालयों इसका प्रयोग धीरे-धीरे बढ़ रहा है।

अभ्यास-प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न

1. वाणिज्य-शिक्षण के विभिन्न उपागमों का संक्षिप्त परिचय दीजिये।
2. वाणिज्य-शिक्षण के जर्नल उपागम से आप क्या समझते हैं ? स्पष्ट कीजिये।
3. वाणिज्य-शिक्षण के खाता उपागम (Ledger Approach) का परिचय दीजिये।
4. वाणिज्य शिक्षण के समीकरण या बैलेन्स शीट उपागम के विविध पक्षों की च कीजिये।

लघु उत्तरात्मक प्रश्न

1. वाणिज्य शिक्षण के उपागमों से आप क्या समझते हैं ?
2. वाणिज्य शिक्षण के रोकड़ बही उपागम का परिचय दीजिये।
3. वाणिज्य-शिक्षण के समीकरण उपागम के गुण-दोषों का विवरण दीजिये।
4. जर्नल उपागम की कुछ प्रमुख विशेषतायें लिखिए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. जर्नल उपागम में भी.....की विषय-वस्तु प्रस्तुत करने का एक निश्चि क्रम या व्यवस्था होती है।
2. कुछ शिक्षक बहीखाता शिक्षण के लिए.....उपागम का प्रयोग करते है।
3. बेलेन्स शीट उपागम किस उपागम का दूसरा नाम है ?

(अ) रोकड़ बही उपागम (ब) समीकरण उपागम

(स) लेजर उपागम (द) जर्नल उपागम

उत्तर—1. वाणिज्य। 2. लेजर। 3. (ब) समीकरण उपागम।

10

वाणिज्य-शिक्षण की रीतियाँ या प्रविधियाँ (TECHNIQUES OF COMMERCE TEACHING)

शिक्षण एक सोद्देश्य तथा कठिन साध्य कार्य है। शिक्षण का मुख्य ध्येय पूर्व निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति करना है। पूर्व निश्चित शिक्षण उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु वह विभिन्न स्तरों पर शिक्षण कार्य करता है। शिक्षण के सामान्यतः तीन स्तर होते हैं—(i) स्मृति स्तर, (ii) अवबोध स्तर, (iii) चिन्तन या परावर्तन। शिक्षक किस स्तर के लिए शिक्षण कर रहा है यह बहुत कुछ इस बात पर निर्भर करता है कि शिक्षक किन शिक्षण उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु शिक्षण कार्य कर रहा है। शिक्षण के जो उद्देश्य होते हैं अध्यापक न केवल तदनुसार ही विषयवस्तु का प्रस्तुतीकरण करता है अपितु उसे उसके अनुसार ही विषयवस्तु के प्रस्तुत करने की विधियाँ, तकनीकियाँ तथा नीतियाँ अपनानी पड़ेंगी। वास्तव में शिक्षण कार्य किसी रणक्षेत्र से कम नहीं है। जिस प्रकार युद्ध क्षेत्र में विजय पाने के लिए सफल रण नीतियाँ अपनानी आवश्यक हैं, ठीक उसी प्रकार कक्षाकक्ष में सफल शिक्षण के लिए सुनिश्चित तथा उपयुक्त शिक्षण नीतियों का अपनाया जाना नितान्त आवश्यक है।

शिक्षण रीतियों का अर्थ—शिक्षण रीतियों के लिए शिक्षण से सम्बन्धित पुस्तकों में पृथक्-पृथक् शब्दों का प्रयोग पाया जाता है जैसे शिक्षण नीतियाँ, शिक्षण-युक्तियाँ, शिक्षण कलाएँ, शिक्षण कौशल आदि-आदि। यदि इन सभी शब्दों के स्वभाव को गम्भीरता के सन्दर्भ में देखें तो पाते हैं कि ये सभी विभिन्न शब्द एक ही बात के द्योतक हैं। वहाँ यह स्पष्ट कर देना सर्वथा उपयुक्त है कि शिक्षण पद्धति तथा शिक्षण रीति में आधारभूत अन्तर है। शिक्षण रीति को समझने के लिए शिक्षण पद्धति तथा शिक्षण रीति के अन्तर को समझ लेना आवश्यक है।

जहाँ तक शिक्षण पद्धतियों तथा शिक्षण रीतियों का प्रश्न है इन दोनों में आधारभूत अन्तर है। शिक्षण पद्धति शिक्षण के आधारभूत चरणों का व्यक्तिकृत मिश्रण है जिसका मुख्य उद्देश्य प्रभावोत्पादक ढंग से विषय सामग्री का छात्रों के सम्मुख प्रस्तुतीकरण करना है जबकि शिक्षण रीति एक ऐसा सूत्र, उपाय या सुझाव है जिससे किसी विशिष्ट शिक्षण बिन्दु को स्पष्ट किया जाता है अथवा शिक्षण पद्धति को प्रभावी बनाया जाता है। एक शिक्षण पद्धति के अन्तर्गत हम कई शिक्षण रीतियों का प्रयोग कर सकते हैं जैसे वाद-विवाद एक पद्धति है इसे और अधिक प्रभावोत्पादक बनाने हेतु हम प्रश्न, प्रस्तावना,

मूल्यांकन आदि शिक्षण रीतियों का प्रयोग कर सकते हैं। दूसरे शब्दों में किसी पद्धति को जो वास्तव में शिक्षण उद्देश्यों की प्राप्ति की विधि होती है, प्रभावी बनाने हेतु प्रयुक्त की जाने वाली रीतियाँ ही शिक्षण रीतियाँ कहलाती हैं।

शिक्षण रीति की परिभाषा—शिक्षण रीति क्या है इसे और अधिक स्पष्ट समझने के लिए यह उचित रहेगा कि विभिन्न विद्वानों ने शिक्षण रीति की जो परि है उनका अध्ययन किया जाय। इसी उद्देश्य से नीचे कतिपय विद्वानों द्वारा परिभाषाओं का उल्लेख किया गया है—

(1) स्टोन्स तथा मॉरिस (Stones and Morris)—"शिक्षण रीति पाठ की व योजना है जिसमें पूर्व निश्चित अधिगम व्यवहारों की रचना को सम्मिलित किया तथा इसमें रीतियों की क्रियान्वित हेतु आवश्यक शिक्षण रीतियों का भी उल्लेख जाता है।"

(2) बी० ओ० स्मिथ (B. O. Smith)—"रीतियाँ उन कार्यों के रूपों की जिनसे कुछ पूर्व निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति होती है तथा कुछ कार्यों से परिपृष्ठ रक्षा की जाती है।"

(3) स्ट्रेसर (Strasser)—"शिक्षण रीति वह योजना है जो शिक्षण-उद्देश्य व परिवर्तन विषयवस्तु कार्य विश्लेषण, अधिगम अनुभव तथा छात्रों के परिपृष्ठ अनुभ विशेष महत्त्व देती है।"

उपरोक्त परिभाषाओं का यदि हम विश्लेषण करें तो पाते हैं कि शिक्षण सामान्यतः निम्न विशेषताएँ पाई जाती हैं—

(1) शिक्षण रीति शिक्षण विधि को प्रभावी और सफल बनाती है।

(2) शिक्षण रीति शिक्षण उद्देश्यों के आधार पर चुनी जाती है।

(3) शिक्षण रीति में छात्र व्यवहारों के परिवर्तन पर विशेष बल दिया जाता

(4) शिक्षण रीति शिक्षण की एक व्यापक अध्यापन या योजना का पूर्व नि प्रतिमान है।

(5) शिक्षण रीतियाँ शिक्षण व्यवस्था को उन्नत बनाने में सहायक होती हैं।

(6) शिक्षण रीतियाँ प्रदत्त कार्य का विश्लेषण कर तदनुसार विविध शिक्षण प्रयुक्त करने पर बल देती हैं।

वाणिज्य-शिक्षण में प्रायः निम्नांकित शिक्षण रीतियों का प्रयोग किया जाता है—

(1) प्रश्न-रीति (Questioning Technique)
(2) कार्य निर्धारण रीति (Assignment Technique)
(3) कथन रीति (Narration Technique)
(4) उदाहरण रीति (Illustration Technique)
(5) परीक्षा रीति (Examination Technique)
(6) अभ्यास रीति (Drill Technique)
(7) प्रदर्शन रीति (Demonstration Technique)

1. प्रश्न रीति
(QUESTIONING TECHNIQUE)

प्रश्न शिक्षण की एक महत्त्वपूर्ण युक्ति है। अति प्राचीनकाल से शिक्षण में प्रयोग होता आया है। शिक्षण में प्रश्नों का विशेष महत्त्वपूर्ण स्थान है। पाठ्य-सामग्री को सरल तथा स्पष्ट करने में प्रश्नों का विशेष योगदान रहता है। बालकों को जो भी ज्ञान प्रदान किया गया है उसे छात्र कहाँ तक आत्मसात् कर पाये हैं प्रश्न पूछकर आसानी से ज्ञात किया जा सकता है। प्रश्नों को अच्छे ढंग से पूछना एक कला है। शिक्षक जितना उन प्रश्नों को पूछने की कलाओं में पारंगत होता जाता है उसका शिक्षण उतना ही प्रभावी होता जाता है। कुछ विद्वान इसलिए कहते हैं कि शिक्षण की निपुणता बहुत हद तक प्रश्न पूछने की कला पर निर्भर करती है। मनोविज्ञान की नवीन विचारधाराओं के अनुसार शिक्षा बालकों की रुचि, योग्यता, क्षमता व आवश्यकतानुसार होनी चाहिए। अध्यापक उसी आधार पर प्रश्नों के माध्यम से बालकों की रुचि, स्तर, योग्यता व आवश्यकता का पता लगा सकता है। प्रश्नों का महत्त्व छात्रों व अध्यापकों दोनों के लिए समान है। शिक्षण को सफल व प्रभावी बनाने के लिए प्रश्न पूछने की कला में निपुण होना चाहिए।

टी० रेमेण्ट के अनुसार, "प्रश्न करने की उत्तम शैली का विकास करना, प्रत्येक नए अध्यापक की सबसे बड़ी आकांक्षा होती है, चाहे इस कथन में पूर्ण सत्यता हो कि अच्छा प्रश्नकर्त्ता अच्छा शिक्षक होता ही है, परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं है कि अच्छे प्रश्न न करने वाला व्यक्ति अच्छा शिक्षक नहीं हो सकता है।"

कोलविन महोदय के अनुसार "प्रश्न सबसे बड़ा उत्तेजक है जो यह अध्यापक को शीघ्र उपलब्ध हो जाता है।"

प्रश्नों का शिक्षण कार्य में प्रयोग न केवल अपरिहार्य एवं अनिवार्य ही है अपितु अत्यन्त ही उपयोगी तथा प्रेरणादायक भी है। शिक्षण कार्य में प्रश्न एक ऐसी विधि के रूप में काम आते हैं। जो शिक्षण के पूर्व निर्धारित उद्देश्यों को प्राप्त करने में सहायक होते हैं। प्रश्नों के द्वारा ही शिक्षक कक्षा में अन्य उद्देश्यों को भी प्राप्त कर सकता है।

प्रश्नों के कार्य

कक्षाकक्ष में शिक्षण करते समय शिक्षक सामान्यतया निम्नांकित कार्यों के लिए प्रश्न पूछ सकता है। दूसरे शब्दों में कक्षाकक्ष में प्रश्न पूछने के निम्नांकित कार्य हो सकते हैं—

(1) उस क्षेत्र का पता लगाना जिसका छात्रों को ज्ञान हो अर्थात् छात्रों के पूर्व ज्ञान का पता लगाना।
(2) उन क्षेत्रों का पता लगाना जिसका छात्रों को ज्ञान नहीं है।
(3) छात्रों को प्रस्तुत पाठ के लिए तत्पर करना।
(4) छात्रों के पूर्व ज्ञान तथा प्रस्तुत पाठ में सम्बन्ध स्थापित करना।
(5) छात्रों को प्रेरणा प्रदान करना।
(6) पाठ का विकास करना।
(7) छात्रों की चिन्तन शक्ति का विकास करना।
(8) छात्रों की रुचि जाग्रत करना।

(9) छात्रों की कल्पना शक्ति का विकास करना।
(10) कक्षा में छात्रों को मानसिक रूप से उपस्थित रखना।
(11) अभ्यास तथा पुनरावृत्ति कार्यों के लिए।
(12) छात्रों की इस प्रकार सहायता करना कि विषयवस्तु को व्यवस्थित कर
(13) विषयवस्तु के महत्त्वपूर्ण बिन्दुओं पर बल देना।
(14) छात्रों का रुझान व अभिरुचि का पता लगाना।
(15) छात्रों का मूल्यांकन करना।
(16) शिक्षण कार्य तथा शिक्षण से सम्बन्धित अन्य विधियों व रीतियों
सफलता का मूल्यांकन करना।

उपरोक्त बिन्दुओं से स्पष्ट है कि कक्षा शिक्षण में प्रश्न पूछने की रीति
उपयोगी तथा महत्त्वपूर्ण है।

प्रश्नों के प्रकार

ऊपर हम देख चुके हैं कि कक्षा में प्रश्न अनेक उद्देश्यों से पूछे जाते हैं और
उद्देश्य से प्रश्न पूछे जाते हैं प्रश्न उसी प्रकार का हो जाता है जैसे यदि प्रश्न
विकास के लिए हो तो वह प्रश्न विकासात्मक होगा और यदि प्रश्न अभ्यास के
तो वह अभ्यास प्रश्न होगा। इसी प्रकार यदि शिक्षक छात्रों के पूर्व ज्ञान का पता
को प्रश्न पूछते हैं तो वह पूर्व ज्ञान प्रश्न होगा। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रश्न
प्रकार सामान्यतः इस बात पर निर्भर करते हैं कि प्रश्न किस उद्देश्य से पूछे
कक्षा में उद्देश्यों के अनुसार निम्नांकित प्रकार के प्रश्न पूछे जाते हैं—

(1) प्रस्तावना प्रश्न—प्रस्तावना प्रश्न निम्नलिखित उद्देश्यों की पूर्ति हेतु पूछे
हैं—

(i) छात्रों के पूर्व ज्ञान का पता लगाने के लिए।
(ii) छात्रों को प्रस्तुत पाठ के लिए तत्पर तथा प्रेरित करने के लिए।
(iii) छात्रों के पूर्व ज्ञान एवं नवीन ज्ञान में सम्बन्ध स्थापित करने के लिए।

इन प्रश्नों के द्वारा छात्रों में प्रस्तुत पाठ के लिए रुचि भी जाग्रत की जाती।
प्रस्तावना प्रश्न छात्रों के पूर्व ज्ञान से प्रारम्भ होकर एक शृंखलाबद्ध रूप में सरल
कठिन होकर नवीन पाठ के सम्बन्ध में छात्रों के सम्मुख एक समस्या निर्मित करते
नीचे प्रस्तावना प्रश्नों का एक उदाहरण दिया गया है—

(1) वस्तुओं के लेन-देन को क्या कहते हैं ?
(2) विक्रय किसे कहा जाता है ?
(3) क्रय-विक्रय में कितने पक्ष होते हैं ?

उपरोक्त सभी प्रश्नों में शृंखलाबद्धता होती है तथा प्रत्येक प्रश्न पूर्व प्रश्नों
तुलना में क्रमशः कठिन हो जाता है।

(2) विकासात्मक प्रश्न—विकासात्मक प्रश्नों के द्वारा पाठ का विकास किया
है। ये प्रश्न पाठ को आगे बढ़ाते हैं तथा पाठ में छात्रों की रुचि को बनाए रखता है।
प्रश्न शिक्षण क्रिया के अनिवार्य अंग हैं। इन्हीं के माध्यम से विषयवस्तु छात्रों के सम्मु
रखी जाती है। शिक्षक का कार्य यह भी देखना है कि छात्र विषयवस्तु को ग्रहण कर

हैं, उसे समझ रहे हैं, अपनी रुचि व ध्यान बनाये हुए हैं तथा इस कार्य में वे कितना
सफल हो रहे हैं। अतः विकास प्रश्न उन सभी उद्देश्यों की पूर्ति करते हैं।

(3) बोध प्रश्न—प्रस्तुत पाठ को समझने में छात्र कहाँ तक सफल हुए हैं यह
जानने के लिए बोध प्रश्न पूछे जाते हैं। इन प्रश्नों के द्वारा यह भी प्रयास किया जाता
है कि छात्रों ने जो नवीन ज्ञान प्राप्त किया है उसे वे एक व्यवस्थित रूप प्रदान कर
सकें। इससे निश्चित है कि बोध प्रश्न विषयवस्तु के उपरान्त ही प्रश्न पूछे जाते हैं।

(1) फाइल करना किसे कहते हैं ?
(2) पत्रों को फाइल क्यों करना चाहिए ?
(3) फाइलिंग की मुख्य विधियाँ कौन-कौन सी हैं ?

तुलनात्मक प्रश्न—शिक्षण के अवबोधात्मक उद्देश्य की परिपूर्ति हेतु सामान्यतः
तुलनात्मक प्रश्न पूछे जाते हैं। इन प्रश्नों के माध्यम से यह पता लगाया जाता है कि
छात्र दो तथ्यों के मध्य तुलना अथवा अन्तर कर सकते हैं अथवा नहीं। नीचे इस प्रकार
के कुछ प्रश्न दिये हुए हैं—

(1) देशी व्यापार और विदेशी व्यापार में क्या अन्तर है ?
(2) खड़ी फाइल और आड़ी फाइल प्रणाली में क्या अन्तर है ?
(3) हुण्डी और विनिमय पत्र में क्या अन्तर है ?

परिभाषा प्रश्न—जिन प्रश्नों के माध्यम से परिभाषायें निकलवाई जायें। वे परिभाषा
प्रश्न कहलाते हैं जैसे—

(1) चैक किसे कहते हैं ?
(2) अर्थशास्त्र की परिभाषा दीजिए।
(3) वाणिज्यिक भूगोल की परिभाषा दीजिए।

पुनरावृत्ति प्रश्न—एक प्रश्नों को पाठ के समाप्त होने पर पूछे जाते हैं। इन प्रश्नों
का उद्देश्य पाठ को दोहराना होता है। यदि बालक इन प्रश्नों के ठीक उत्तर देते हैं तो
इसका तात्पर्य होता है छात्रों ने ढंग से पाठ को आत्मसात् किया है।

(1) सूती कपड़ों की मिलों के लिए भारत का मेनचेस्टर किसे कहते हैं ?
(2) सूती कपड़े की मिलें अहमदाबाद में ज्यादा होने के क्या कारण हैं ?
(3) सूती कपड़े की मिलें किस राज्य में खोलनी चाहिए ?

अच्छे प्रश्नों की विशेषताएँ—प्रश्न रीति शिक्षण कार्य की सफलताओं के लिए एक
बहुत ही अच्छी एवं उपयोगी विदा है किन्तु यह तभी सफलतापूर्वक कार्य कर सकती है
जब कि पूछे गये प्रश्न अच्छे हों। अच्छे प्रश्नों में सामान्यतः निम्न विशेषताएँ होती हैं—

(1) स्पष्टता—अच्छे प्रश्नों की भाषा में स्पष्टता होती है। अच्छे प्रश्नों की भाषा से
छात्र चाहे उसका उत्तर जानता हो अथवा नहीं, इतना अवश्य जान लेता है कि क्या
पूछा गया है। यदि प्रश्न की भाषा ही अस्पष्ट है तो छात्र जानते हुए भी उसका उत्तर
नहीं दे सकता है। "बैंक ऑफ बड़ौदा के डाइरेक्टर का नाम क्या है" अस्पष्ट प्रश्न है।
ऐसे प्रश्न से उद्देश्य पूरा नहीं होता है।

(2) निश्चितता—अच्छे प्रश्नों का एक सुनिश्चित उत्तर होता है और उस उत्तर
के अलावा अन्य सभी उत्तर गलत होते हैं "क्या चेक लिखने वाले का खाता बैंक में
होना आवश्यक है।" अनिश्चित प्रश्नों के द्वारा पाठ का विकास सही रूप से नहीं हो
सकता है।

(7) अच्छा कार्य निर्धारण छात्रों में चिन्तन, मनन तथा विश्लेषण शक्ति का वि... करता है।

कार्य निर्धारण करना—कार्य का निर्धारण करते समय अध्यापक को कक्षा को सदैव ध्यान में रखना चाहिए। अध्यापक को देखना चाहिए कि कक्षा का मानसिक स्थिति स्तर समान है या असमान। यदि स्तर समान है तो सम्पूर्ण कक्षा को एक कार्य दे देना चाहिए। कार्य देने से पूर्व छात्रों को कार्य करने हेतु विभिन्न उपायों से प्रे... करना चाहिए। जिस कार्य को निर्धारित किया जाय वह अच्छा हो। जो भी कार्य दिया... उसके लिए आदेश नहीं दिया जाय वरन् कार्य नम्र एवं सहानुभूतिपूर्ण ढंग से दि... जाय। कार्य निर्धारण में समय तत्त्व का भी ध्यान रखा जाय। कार्य निर्धारण करते स... यह भी ध्यान रखा जाय कि जो कार्य दिया जा रहा है उसके लिए सम्बन्धित पुस्त... अन्य आवश्यक सामग्रियाँ भी हैं या नहीं। अन्त में यह भी पता लगाते रहना चाहि... छात्र निर्धारित कार्य को किस सीमा तक सम्पादित करने में सफल रहे हैं। वे कि... सीख पाये, उनके व्यवहार में क्या वांछित परिवर्तन हुए ?

3. कथन रीति

वाणिज्य शिक्षण में कथन रीति अत्यन्त उपयोगी है ? वांछित शिक्षण में कथन री... का बड़े व्यापक रूप से प्रयोग किया जाता है। अध्यापक द्वारा पूछे जाने पर जब छा... किसी प्रश्न का उत्तर नहीं दे पाते हैं तो अध्यापक कथन के द्वारा उस प्रश्न का उत्त... छात्रों को प्रदान करता है। इस प्रकार कथन रीति प्रश्न रीति की कमियों को दूर करत... है।

कथन रीति में उपरोक्त गुणों के साथ ही साथ कुछ दोष होते हैं। कथन रीति का सबसे प्रमुख दोष है कि यह छात्रों को कक्षा में निष्क्रिय श्रोता मात्र बना देती है। इससे कक्षा में नीरसता आ सकती है, इसलिए अध्यापक को इस रीति का प्रयोग करते समय सामान्यतया निम्न बिन्दुओं को ध्यान में रखना चाहिए—

(1) इतना ही कथन दिया जाय जितना आवश्यक हो।

(2) सरल, सुगम एवं सुबोध भाषा का प्रयोग किया जाय।

(3) छात्रों के मानसिक स्तर के अनुरूप कथन दिया जाय।

(4) आवश्यक सहायक सामग्री के द्वारा कथन को आकर्षक बनाया जाय।

(5) कथन तार्किक रूप से व्यवस्थित किया जाय।

(6) कथन के समय छात्रों को लिखने का अवसर दिया जाय।

(7) कथन करते समय पूर्व निर्धारित उद्देश्यों को ध्यान में रखा जाए।

4. उदाहरण रीति

उदाहरण वह क्रिया है जिसके माध्यम से अध्यापक किसी घटना, विचार या वस्तु का उल्लेख कर उसका सम्बन्ध किसी नवीन एवं अज्ञात विचार, घटना या वस्तु से स्थापित करता है, और इस प्रकार इस नवीन एवं अज्ञात विचार, घटना, वस्तु को अधिक रोचक एवं बोधगम्य बनाता है। उदाहरण का दूसरा कार्य किसी सूक्ष्म विचार को स्थूल रूप प्रदान करना है। सूक्ष्म विचार सीखने के दृष्टिकोण से कठिन होता है और स्थूल विचार सरल होता है। उदाहरण के द्वारा सूक्ष्म विचार को स्थूलता प्रदान की जाती

है अर्थात् विषय वस्तु को सरलता प्रदान की जाती है। छात्र सूक्ष्म, दुरूह तथा जटिल विषय का आत्मसात् करने में असफल रहते हैं। ऐसे विषयों को स्पष्ट करने हेतु उदाहरण रीति का प्रयोग किया जाता है। उदाहरण के उद्देश्य-शिक्षण कार्य में उदाहरण रीति का प्रयोग निम्न उद्देश्यों की पूर्ति हेतु किया जाता है—

(1) छात्रों का ध्यान विषय वस्तु की ओर आकर्षित करने हेतु,

(2) ज्ञात विचार, वस्तु एवं घटना का सम्बन्ध अज्ञात विचारों, वस्तुओं तथा घटनाओं से स्थापित करने हेतु,

(3) छात्रों को प्रेरणा प्रदान करने हेतु,

(4) विषय वस्तु को बोधगम्य बनाने हेतु,

(5) छात्रों के अनुभवों को विकसित करने हेतु।

उदाहरणों के प्रकार

वाणिज्य शास्त्र शिक्षण में प्रायः नीचे लिखे दो प्रकार के उदाहरणों का प्रयोग किया जाता है—

(1) **मौखिक उदाहरण**—मौखिक उदाहरण वे उदाहरण हैं जो शिक्षक द्वारा मौखिक रूप से छात्रों के सम्मुख प्रस्तुत किये जाते हैं। इन उदाहरणों से अध्यापक छात्रों के मस्तिष्क पर विषय वस्तु का मौखिक चित्र अंकित करता है। यहाँ पर शिक्षक ज्ञात का अज्ञात से सम्बन्ध मौखिक रूप से स्थापित करता है इसके लिए अध्यापक या तो ज्ञात एवं अज्ञात में समानता का वर्णन करता है या असमानता का। मौखिक उदाहरण प्रस्तुत करते समय अध्यापक को अपनी भाषा का विशेष ध्यान रखना चाहिए, उदाहरण देते समय अध्यापक की भाषा सरल, स्पष्ट तथा ओजपूर्ण होनी चाहिए। शिक्षक को लम्बे उदाहरण कभी भी नहीं देने चाहिए। अच्छा हो जो उदाहरण दिये जाएँ वे जीवन से सम्बन्धित हों।

(2) **प्रदर्शनात्मक उदाहरण**—ये उदाहरण स्थूल वस्तुओं से सम्बन्धित होते हैं। इस प्रकार के उदाहरणों में हम सामान्यतः निम्नांकित उदाहरणों का प्रयोग करते हैं—

(1) चित्र एवं रेखाचित्र

(2) प्रतिरूप

(3) चार्ट

(4) ग्राफ

(5) श्यामपट पर खींचे गए चित्रादि

(6) प्रयोग

(7) अन्य श्रव्य-दृश्य सामग्रियाँ

5. अभ्यास रीति

शिक्षण में अभ्यास का बहुत महत्त्व है। यह रीति थॉर्नडाइक के अभ्यास के नियम पर आधारित है। इस नियम के अनुसार बालक किसी प्रश्न, तथ्य या समस्या की जितनी बार आवृत्ति करेगा वह उतना ही अधिक मस्तिष्क में स्थायी बनता जायेगा। **एम० पी० मुफात** के अनुसार "अभ्यास के द्वारा छात्रों में आदतों का निर्माण, कुशलताओं की प्राप्ति तथा उनको किसी परीक्षा के लिए तत्पर बनाया जा सकता है।"

अभ्यास रीति का वाणिज्य शास्त्र में काफी हद तक प्रयोग किया जाता। वाणिज्य शास्त्र के पुस्तपालन तथा बहीखाता आदि विषयों में इसका विशेष स्थान। इनमें अभ्यास रीति का जितना प्रयोग किया जाता है उतनी ही ज्ञान में सफलता मि जाती है। पुस्तपालन में तथा लेखा कार्य में जनरल, लेजर, रोकड़ आदि लिखना रीति के द्वारा आसानी से सिखाया जा सकता है। इसी प्रकार व्यापार पद्धति में, कार्यों में, आशुलिपि एवं टंकन में अभ्यास रीति बड़ी लाभदायक सिद्ध होती है। अभ्यास का जितना सहारा लिया जाता है उतनी ही सफलता प्राप्त होती है।

6. प्रदर्शन

शिक्षण में प्रदर्शन की रीति का अपना महत्व है। प्रदर्शन का अर्थ है कर दिखाना। शिक्षक अनेक तथ्यों को पहले स्वयं करके छात्रों को दिखाता है। इससे छा किसी कार्य को सही रूप से करने की विधि सीखते हैं तथा उन्हें इस बात का भी ज्ञा होता है कि किसी कार्य के क्या परिणाम होते हैं। प्रदर्शन के द्वारा अध्यापक पूर्व स्थापि अनेक तथ्यों व सिद्धान्तों की प्रामाणिकता को भी छात्रों के सम्मुख प्रदर्शन करके सि कर सकता है। प्रदर्शन के बाद छात्र प्रदर्शित क्रिया को स्वयं करके अपने ज्ञान को स्थायित्व देते हैं तथा कौशल का विकास करके करते हैं।

वैसे तो प्रदर्शन का विज्ञान व वाणिज्य विषयों में बड़ा महत्त्व है जिनमें क्रिया कौशल के विकास पर बल देने की प्रमुखता होती है। पुस्तपालन, बहीखाता व टंकण आदि विषयों में इसका बड़ा महत्त्व है। किन्तु आज सैद्धान्तिक विषयों में भी प्रदर्शन का प्रयोग दिनोंदिन बढ़ता जा रहा है। शिक्षण के दौरान अध्यापक आदर्श शिक्षण प्रक्रिया का प्रदर्शन करता है। जिन विद्यालयों में साधन सुविधाएँ उपलब्ध हैं तथा उनके अध्यापकों में सफल व प्रभावी शिक्षण की लगन है वे प्रदर्शन रीति का सफलता एवं प्रभाव के रूप में प्रयोग करते हैं।

प्रदर्शन से लाभ—प्रदर्शन से निम्नांकित लाभ हैं—

(1) छात्र अवलोकन एवं निरीक्षण करना सीखते हैं।

(2) छात्रों को सिद्धान्तों तथा कारण-परिणाम सम्बन्धों की प्रामाणिकता सिद्ध करके दिखाई जा सकती है।

(3) छात्रों में कौशल का विकास सम्भव है।

(4) सहायक सामग्री का अधिकतम प्रयोग सम्भव है।

(5) छात्र करके सीखते हैं।

(6) प्रदर्शन से कक्षा में अनुशासन व छात्र सक्रियता को बढ़ावा मिलता है।

(7) छात्र विभिन्न उपकरणों का प्रयोग सीखते हैं।

(8) प्रदर्शन से व्यावहारिक शिक्षण सम्भव है।

प्रदर्शन के सम्बन्ध में सुझाव

(1) प्रदर्शित वस्तु या क्रिया छात्रों के मनोशारीरिक स्तर के अनुरूप हो।

(2) सभी छात्र सुविधापूर्वक प्रदर्शन की प्रत्येक क्रिया को देख सकें।

(3) प्रदर्शन के पूर्व व उपरान्त की तैयारियों व क्रियाओं से छात्रों को परिचित करा दें।

(5) बीच-बीच में छात्रों से प्रश्न पूछे जायें ताकि जिज्ञासा शान्त होती रहे।

(6) प्रदर्शन में विशिष्ट उपकरण प्रयोगित हो तो छात्रों को उसके बारे में बतला दें।

(7) प्रदर्शन के उद्देश्य पहले से निश्चित कर लिये जायें।

(8) प्रदर्शन के बाद छात्रों का प्रयोग करने के अवसर दिये जाये।

(9) यदि एक बार के प्रयोग से वांछित कौशल न आये तो उसे दोहरायें।

(10) प्रदर्शन के समय उपलब्ध साधनों का पूरा-पूरा उपयोग किया जाय।

अभ्यासार्थ प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न

1. शिक्षण रीतियों से आप क्या समझते हैं ? वाणिज्य-शिक्षण में कौन-कौन सी रीतियों का प्रयोग किया जाता है ?
2. अध्यापक को प्रश्न पूछते समय किन-किन बातों को ध्यान में रखना चाहिए ? अच्छे प्रश्न की क्या विशेषता होती है ?
3. वाणिज्य-शिक्षण की शिक्षण रीतियों पर आलोचनात्मक विवरण लिखिए।
4. उदाहरण देने के क्या उद्देश्य होते हैं ? अच्छे उदाहरण की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

लघु उत्तरात्मक प्रश्न

1. प्रदर्शन रीति को प्रभावी बनाने हेतु कुछ सुझाव दीजिये।
2. कथन करते समय शिक्षक को किन-किन बातों को ध्यान में रखना चाहिये ?
3. अच्छे प्रश्नों की प्रमुख विशेषतायें बताइये।
4. छात्रों के लिये कार्य निर्धारित करते समय आप किन-किन बातों को ध्यान में रखेंगे ?

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. शिक्षक के सामान्यतः तीन स्तर होते हैं—
   (1) स्मृति स्तर। (2) अवबोध स्तर। (3) .... ।
2. छात्रों के पूर्व ज्ञान का पता लगाने के लिए किस प्रकार के प्रश्न पूछे जाते हैं ?
   (अ) विकासात्मक प्रश्न (ब) तुलनात्मक प्रश्न
   (स) परिभाषा प्रश्न (द) प्रस्तावना प्रश्न
3. अच्छे प्रश्नों की भाषा में............................होती है।
4. अच्छे प्रश्न छात्रों की आयु, योग्यता, स्तर, रुचि के अनुसार होते हैं—
   (अ) सत्य (ब) असत्य

उत्तर—1. चिन्तन या परावर्तन। 2. (द) प्रस्तावना प्रश्न। 3. स्पष्टता। 4. (अ) सत्य।

11

वाणिज्य-शिक्षण के नये आयाम

(NEW DIMENSIONS OF COMMERCE TEACHING)

हम जानते हैं कि शिक्षा एक गत्यात्मक (Dynamic) प्रक्रिया है अतः इसमें ... बहुमुखी परिवर्तन होते रहते हैं। शिक्षण शिक्षा का ही एक अंग है। जब शि... अवधारणा में परिवर्तन होते हैं तो शिक्षण प्रक्रिया में भी परिवर्तन होना स्वाभाविक है ... कारण शिक्षण, प्रक्रिया में भी परिवर्तन होते रहते हैं। दूसरे बहुत से शिक्षाशास्त्री ... तथा मनोवैज्ञानिक भी कक्षा शिक्षण के सम्बन्ध में विभिन्न दृष्टिकोण से शोधकार्य ... विभिन्न प्रकार के परिणाम निकलते रहते हैं। जिनके आधार पर भी शिक्षण-प्रक्रि... समय-समय पर आवश्यक परिवर्तन हो जाते हैं। इन परिवर्तनों तथा शोध कार्य ... परिणामस्वरूप शिक्षण के नये-नये आयाम उभर कर विकसित होते हैं। आधुनिक ... वाणिज्यशास्त्र शिक्षण के क्षेत्र में इन्हीं कारणों से कुछ नये आयाम विकसित हु... प्रस्तुत अध्याय में इसी प्रकार के कतिपय आयामों का उल्लेख किया जा रहा है—

1. सूक्ष्म-शिक्षण
(MICRO-TEACHING)

सूक्ष्म-शिक्षण अथवा अध्यापन एक ऐसी प्रशिक्षण प्रक्रिया है जिसका मुख्य ... शिक्षण प्रक्रियाओं को प्रभावी रूप से विकास करना होता है। शिक्षण की ... आधुनिकतम तकनीक के द्वारा शिक्षण के विभिन्न कौशलों तथा दक्षताओं का विकास ... परिमार्जन किया जाता है। इससे विधि के द्वारा अध्याय को विभिन्न शिक्षण प्रक्रियाओं ... ज्ञान भी प्रदान किया जाता है।

बुश ने सूक्ष्म शिक्षण को परिभाषित करते हुए लिखा है "सूक्ष्म-शिक्षण अध्याप... शिक्षा की वह प्रविधि है जो शिक्षक को स्पष्ट रूप से परिभाषित शिक्षण कौशलों ... आधार पर पूर्ण नियोजित ढंग से निर्मित पाठों के आधार पर पाँच से दस मिनट ... समय में कुछ छात्रों को पढ़ाने के अवसर प्रदान करती है तथा प्रायः वीडियो ... रिकार्डर के प्रयोग के अवसर प्रदान करती है।"

मैक कालम तथा **लिड्रू** के अनुसार "सूक्ष्म शिक्षण परिस्थितियों में प्रविष्ट होने ... पूर्व दक्षता प्राप्त कर लेने तथा कक्षा-कक्ष कौशलों का विकास कर लेने का अवसर ... सूक्ष्म-शिक्षण है।"

एलन या **ईब** के शब्दों में "सूक्ष्म-शिक्षण एक ऐसी नियन्त्रित प्रविधि है जो कि... एक विशिष्ट अध्यापन व्यवहार पर ध्यान केन्द्रित करने तथा नियन्त्रित परिस्थितियों ...

शिक्षणाभ्यास को सम्भव बनाती है।" **पीक** तथा **टकर** के सूक्ष्म शिक्षण को परिभाषित करते हुए लिखा है कि "सूक्ष्म शिक्षण विशुद्ध रूप से विशिष्ट शिक्षण कौशल की पहचान के लिये प्रत्यक्षीकृत व्यवहारों का इन शिक्षण कौशलों में विकास को संभावी बनाने की दृष्टि से वीडियो टेप-प्रतिपुष्टि का सम्मिश्रण है।"

डा. सिंह के अनुसार—"सूक्ष्म-शिक्षण में विशिष्ट कक्षा-कक्ष व परिस्थितियाँ निहित होती हैं जो सीमित आकार, क्षेत्र तथा समयावधि से सम्बन्धित होती हैं।"

क्लिफ्ट आदि ने सूक्ष्म-शिक्षण की परिभाषा देते हुए लिखा है "सूक्ष्म शिक्षण शिक्षक-प्रशिक्षण की वह प्रविधि है जो शिक्षण परिस्थिति को सरल बनाती है। शिक्षणाभ्यास को विशिष्ट कौशल तक सीमित रखती है तथा शिक्षण-समय तथा कक्षाकार को घटा देती है।"

डेविड यंग ने "सूक्ष्म-शिक्षण को एक ऐसी प्रविधि बतलाया है जिसके द्वारा नव-शिक्षक तथा अनुभवी शिक्षक दोनों ही अपनी शिक्षण कला को परिमार्जित करने के अवसर प्राप्त करते हैं।"

सूक्ष्म-शिक्षण की **एम. बी. बुच** ने बड़ी ही व्यापक तथा सर्वग्राही परिभाषा दी है। **डा. बुच** सूक्ष्म शिक्षण की परिभाषा देते हुए लिखते हैं "सूक्ष्म शिक्षण अध्यापक शिक्षा की एक ऐसी विधि है जो प्रायः वीडियो टेप पर अपने परिणामों को देखने के साथ ही पाँच से दस मिनट तक के समय में वास्तविक छात्रों के छोटे से समूह को सावधानीपूर्वक विकसित पाठ को नियोजित विधि से सुस्पष्ट रूप से परिभाषित शिक्षण-दक्षताओं के विकास हेतु अवसर प्रदान करती है।"

सूक्ष्म-शिक्षण की विशेषतायें—सूक्ष्म-शिक्षण के ऊपर कई परिभाषाएँ दी हैं। इन परिभाषाओं का यदि विश्लेषण किया जाए तो उस विश्लेषण से सूक्ष्म-शिक्षण की निम्नलिखित विशेषताएँ स्पष्ट होंगी—

(1) सूक्ष्म-शिक्षण वास्तविक शिक्षण है।

(2) सूक्ष्म-शिक्षण का उद्देश्य विशिष्ट शिक्षण दक्षताओं का विकास करना है।

(3) सूक्ष्म-शिक्षण में अध्यापन कार्य हेतु कक्षा का आकार पाँच से दस छात्रों तक सीमित कर दिया जाता है।

(4) सूक्ष्म-शिक्षण में कक्षा कालांश पाँच से दस मिनट तक का होता है।

(5) सूक्ष्म-शिक्षण में पाठ्य-वस्तु की मात्रा व जटिलता घटा दी जाती है।

(6) सूक्ष्म-शिक्षण में शिक्षण कौशलों की संख्या कम कर दी जाती है।

(7) सूक्ष्म-शिक्षण में प्रतिपुष्टि की आवश्यकता होती है।

(8) सूक्ष्म-शिक्षण का उद्देश्य प्रभावी शिक्षण है।

(9) सूक्ष्म-शिक्षण अत्यन्त ही अधिक व्यक्तिगत शिक्षण प्रविधि है।

सूक्ष्म शिक्षण के सिद्धान्त—**एलन** तथा **रियान** ने सूक्ष्म-शिक्षण के निम्नलिखित पाँच आधारभूत सिद्धान्त बतलाए हैं—

(1) वास्तविक अध्ययन का सिद्धान्त।

(2) कक्षा शिक्षण की हासिल जटिलताओं का सिद्धान्त।

(3) विशिष्ट कौशल के विकास का सिद्धान्त।

(4) नियन्त्रित अभ्यास का सिद्धान्त।

(5) प्रतिपुष्टि का सिद्धान्त।

इन सिद्धान्तों के आधार पर कहा जा सकता है कि सूक्ष्म-शिक्षण किन्हीं काल्प कृत्रिम अथवा व्यावहारिक परिस्थितियों में शिक्षण करना नहीं है। इस शिक्षण प्रवि द्वारा वास्तविक रूप में वास्तविक छात्रों को वास्तविक पाठ्यक्रमानुसार शिक्षण करते हैं। दूसरे सिद्धान्त के अनुसार सक्ष्म-शिक्षण के अंतर्गत शिक्षण की जटिलता कम से कम बनाया जा सकता है, जिसमें शिक्षण कार्य सरल हो जाता है। शिक्षण जैसा कि हम अध्ययन कर चुके हैं एक जटिल तथा कष्टसाध्य कार्य है। सूक्ष्म शिक्ष द्वारा शिक्षण कार्य की जटिलताओं को दूर किया जाता है। जटिलताओं को दूर कर लिए कई उपाय काम में लाये जाते हैं जैसे एक समय में एक ही उद्देश्य की प्राप्ति प्रयास करना आदि। सूक्ष्म-शिक्षण एक समय में केवल एक ही शिक्षण-उद्देश्य की प्राप्ति के प्रयास करता है। सामान्य शिक्षण के समान सूक्ष्म-शिक्षण एक ही कक्षा-का ज्ञानात्मक, अवबोधात्मक तथा सच्चात्मक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए नहीं दौड़ता ही नहीं सूक्ष्म-शिक्षण एक कालांश में सम्पूर्ण ज्ञानात्मक उद्देश्य की प्राप्ति के प्रयास करता अपितु ज्ञानात्मक की भी एक सुपरिभाषित अंग को ही प्राप्त करने के प्र करता है जैसे किसी एक तथ्य का केवल प्रत्यास्मरण।

सूक्ष्म-शिक्षण का अगला सिद्धान्त नियन्त्रित अभ्यास का है। इस सिद्धान्त अनुसार छात्राध्यापक जिन अभ्यास प्रक्रियाओं को सम्पादित करते हैं वे बड़े ही नियन्त्रित तथा पूर्व नियोजित ढंग से की जाती हैं। इस प्रकार सूक्ष्म शिक्षण व्यर्थ तथा सम्बन्धहीन अभ्यास क्रियाओं की पूर्ण अवहेलना करता है।

सूक्ष्म-शिक्षण में छात्राध्यापक को यह ज्ञात रहता है कि उसके शिक्षण के परि क्या रहे। यदि छात्राध्यापक को परिणामों का ज्ञान न होगा तो उसे प्रतिपुष्टि के कठिनाई आयेगी साथ ही सूक्ष्म-शिक्षण के लिये प्रतिपुष्टि का होना भी अनिवार्य है। 1968 में **माइयर** ने सूक्ष्म-शिक्षण के निम्नलिखित **सात सिद्धान्तों** का उल्लेख किया-

(1) क्या पढाना है इस सम्बन्ध में निर्णय लेते समय छात्र की अभिक्षमताओं ध्यान में रखना चाहिए।

(2) छात्र की आन्तरिक अभिप्रेरणा प्रदान की जाय।

(3) उद्देश्यों का वास्तविक परिस्थितियों के अनुसार निर्धारण किया जाय।

(4) एक समय में एक उद्देश्य के एक अंग की प्राप्ति के ही प्रयास किये जाये

(5) अपने व्यवहारों के परिमार्जन हेतु छात्राध्यापक का सक्रिय, सहयोग आवश्यक है।

(6) छात्राध्यापक को अपने कार्य के लिए निस्पादन की सफलता व उपलब्धि का बराबर ज्ञान प्राप्त होता रहे।

(7) शिक्षण-कौशल के स्थायी होने से पूर्व ही छात्राध्यापक को उसके शिक्षण दोषों से अवगत करा दिया जाय।

सूक्ष्म-शिक्षण की आधारभूत मान्यतायें

सूक्ष्म-शिक्षण का विचार जब पहले-पहल विकसित किया गया तो उनके अग्रलिखित पाँच आधारभूत मान्यतायें निश्चित की गईं—

(1) सूक्ष्म-शिक्षण के द्वारा छात्राध्यापकों का विकास न किया जा कर उनके शिक्षण-कौशल का विकास किया जाता है।

(2) सूक्ष्म-शिक्षण कक्षा के आकार कक्षा-कालांश की अवधि तथा अध्यापन विषय-वस्तु को अत्यन्त ही सीमित व घटाकर कक्षाकक्ष की जटिलताओं को कम कर देती है।

(3) सूक्ष्म-शिक्षण एक समय में केवल एक ही उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्रयास करती है इसके लिये उद्देश्यों का सूक्ष्म-निर्धारण आवश्यक है। इससे एक समय में एक ही शिक्षण-कौशल का विकास किया जाता है।

(4) सूक्ष्म-शिक्षण प्रतिपुष्टि के द्वारा अत्यन्त ही नियन्त्रित कक्षा शिक्षण के अभ्यास की अनुमति प्रदान करती है। छात्राध्यापक प्रतिपुष्टि के कारण बड़े ही नियन्त्रित व नियोजित ढंग से शिक्षण अभ्यास करता है।

(5) सूक्ष्म-शिक्षण इस बात पर आधारित है कि छात्राध्यापकों को प्रतिपुष्टि का बराबर ज्ञान मिलता रहे। प्रतिपुष्टि के द्वारा उन्हें अपनी कमजोरियों तथा दोषों का निरन्तर ज्ञान प्राप्त रहता है। इस ज्ञान के आधार पर वे अपने शिक्षण में से धीरे-धीरे इन दोषों को दूर करते रहते हैं और जब सभी दोष दूर हो जाते हैं तब शिक्षा-कौशल को स्थापित प्रदान व करने के प्रयास किये जाते हैं।

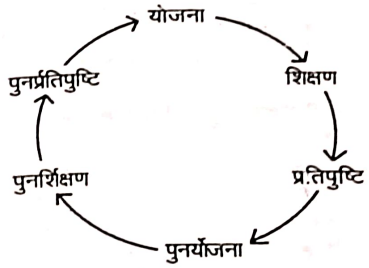

सूक्ष्म-शिक्षण चक्र—सूक्ष्म-शिक्षण में सम्पूर्ण शिक्षण एक चक्र के रूप में सम्पादित किया जाता है। इस चक्र को निम्न प्रकार से प्रदर्शित कर सकते हैं—

सूक्ष्म-शिक्षण के चक्र विभिन्न सोपानों को निम्न प्रकार से भी प्रदर्शित किया जा सकता है—

योजना Plan → शिक्षण Teach → प्रतिपुष्टि Feedback → पुनर्योजना Replan → पुनर्शिक्षण Reteach → पुनर्प्रतिपुष्टि Refeedback

इस चक्र से स्पष्ट है कि यदि पुनः प्रतिपुष्टि के भी बाद वांछित शिक्षण कौशल का विकास नहीं हो पाता है तो फिर प्रारम्भ से ही सम्पूर्ण चक्र प्रारम्भ किया जाता है। सूक्ष्म-शिक्षण चक्र के इन विभिन्न पक्षों को ही सूक्ष्म-शिक्षण के सोपान भी कहा जाता है।

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण परिषद के डॉ. एल. सी. सिंह ने सूक्ष्म-शिक्षण के अग्रांकित सोपानों का उल्लेख किया है—

(1) अर्थ स्पष्टीकरण—डॉ. सिंह के अनुसार सूक्ष्म-शिक्षण प्रविधि का सबसे सोपान शिक्षण प्रशिक्षको तथा छात्राध्यापकों को सूक्ष्म-शिक्षण का एवं प्रयोग विधि सैद्धान्तिक ज्ञान प्रदान करना है। इस प्रकार के प्रारम्भिक ज्ञान के आधार पर सूक्ष्म-शिक्षण का बास्तविक प्रयोग कर सकते हैं।

(2) शिक्षण-कौशलों की चर्चा—शिक्षण-प्रशिक्षकों तथा छात्राध्यापकों को सूक्ष्म-शिक्षण कर अर्थ स्पष्ट हो जाए तो उन सबको मिलकर उन शिक्षण-कौशलों चर्चा करनी चाहिए जिनका विकास उन्हें करना है। इस सम्बन्ध में इतना कहा सकता है कि इस स्तर पर कम से कम पाँच शिक्षण कौशलों को निश्चित कर चाहिये जिसका विकास करना है। शिक्षण कौशलों का विकास करने के लिए बड़ौदा एम. एस. विश्वविद्यालय के शिक्षा के उच्च स्तरीय अध्ययन केन्द्र द्वारा प्रकाशित शिक्षण कौशलो की पुस्तिका की सहायता ली जा सकती है। इसके अलावा कुछ विद्वानों द्वारा दिये गये शिक्षा कौशलों का उल्लेख प्रस्तुत अध्याय के अन्तर्गत ही आगे पृष्ठो में किया गया है।

(3) आदर्श-पाठ का प्रस्तुतीकरण—जिन शिक्षण-कौशलों का विकास करना उनका जब निर्धारण हो जाय तब छात्राध्यापकों के सम्मुख किसी प्रशिक्षित तथा अनुभवी शिक्षकों, प्रशिक्षकों के द्वारा उनमें से क़िसी एक या दो शिक्षण-कौशलों को ध्यान रखकर प्रदर्शन-पाठ देना चाहिए।

(4) सूक्ष्म-पाठ योजनाओं का निर्माण—इसके बाद छात्राध्यापकों का वास्तविक शिक्षण के लिए सूक्ष्म-पाठ योजनायें बनानी होती हैं। एक सूक्ष्म-पाठ योजना शिक्षण-बिन्दु से सम्बन्धित होती है तथा इतनी लम्बी होती है जिसे 5 से 10 मिनट कालान्तर में ही पूरा कर दिया जाय। प्रस्तुत पाठ के अन्त में एक सूक्ष्म-पाठ योजना नमूना दिया गया है।

(5) सूक्ष्म शिक्षण का निर्धारण—सूक्ष्म-शिक्षण के लिए सामान्यतः निम्नलिखित व्यवस्था का निर्माण किया जाता है—

शिक्षण—	6 मिनट	छात्र संख्या—	10
प्रतिपुष्टि—	6 मिनट	निरीक्षक—	1 या 2
पुनर्योजना—	12 मिनट		
पुनर्शिक्षण—	6 मिनट		
पुनः प्रतिपुष्टि—	6 मिनट		
योग	36 मिनट		

(6) अभिरूपित परिस्थितियाँ—अभिरूपित परिरिस्थितियों में पहले छात्राध्यापक कुछ साथी ही छात्र बन जाते हैं तथा उनमें से कोई एक छात्राध्यापक सूक्ष्म-शिक्षण द्वारा अपने ही साथियों को शिक्षा प्रदान करता है। यहाँ भूमिका निर्वाह का सहारा लिया जाता है।

(7) शिक्षण-कौशलों का अभ्यास—इस सोपान के अन्तर्गत छात्राध्यापक विभिन्न शिक्षण कौशलों का वास्तविक शिक्षा के माध्यम से अभ्यास करके विकास करते हैं। इस स्तर पर वे विभिन्न शिक्षण-कौशलों का विकास करते हैं। जैसे प्रश्न पूछना, पुनर्बलन, उदाहरण देना, उत्तर देना, व्याख्या करना, प्रेरणा प्रदान करना आदि।

(8) प्रतिपुष्टि—सूक्ष्म-शिक्षण के शिक्षण तथा पुनर्शिक्षण काल के बाद शिक्षक-प्रशिक्षकों द्वारा अविलम्ब प्रतिपुष्टि प्रदान की जाती है। यह प्रतिपुष्टि प्रदर्शन पाठ निश्चित व निर्धारित शिक्षण/कौशलों के सन्दर्भ में हो सकती है।

(9) शिक्षण-समय—जिस शिक्षण-चक्र का पहले उल्लेख किया गया है उसे पूरा करने में करीब 35-36 मिनट का समय लग जाता है। एक अध्यापक एक समय में एक पूरा चक्र समाप्त करना पड़ता है।

सरल शब्दों में सूक्ष्म-शिक्षण के लिये निम्न प्रक्रिया से गुजरना पड़ता है—

(1) सबसे पहले शिक्षक-प्रशिक्षक तथा छात्राध्यापक मिलकर कुछ शिक्षण कौशलों को परिभाषित करते हैं।

(2) छात्राध्यापक के सम्मुख शिक्षक-प्रशिक्षक या कोई अन्य दक्ष व्यक्ति सूक्ष्म-प्रशिक्षण विधि के द्वारा कुछ छात्रों को पढा कर प्रदर्शन करता है अथवा किसी भी चलचित्र द्वारा यह प्रदर्शन किया जा सकता है।

(3) छात्राध्यापक सूक्ष्म-पाठ योजनायें बनाना सीखते हैं।

(4) छात्राध्यापक वास्तविक रूप से 5-10 छात्रों की कक्षा को 5-6 मिनट के कालांश में कोई एक शिक्षण-बिन्दु पढ़ाता है तथा निरीक्षकगण उसके शिक्षण का अवलोकन करते हैं।

(5) छात्राध्यापक ने जो कुछ पढाया है उस पर वाद-विवाद व चर्चा होती है अर्थात् छात्राध्यापक के शिक्षण की समालोचना की जाती है उससे छात्राध्यापक को अपने शिक्षण की कमजोरियों का पता चल जाता है।

(6) अपने पूर्व-शिक्षण की आलोचनाओं के प्रकाश में छात्राध्यापक दुबारा सूक्ष्म-पाठ योजना बनाता है।

(7) दुबारा बनी पाठ-योजना के आधार पर छात्राध्यापक पुनःशिक्षण कार्य करता है।

(8) पुनः शिक्षण की पुनः आलोचना की जाती है।

(9) इस प्रकार की आलोचनाओं के आधार पर छात्राध्यापक पुनः पाठ योजना बनाता है और पुनः पढ़ाता है। यह क्रम उस समय तक चलता रहता है जब तक कि छात्राध्यापक पूर्व-निर्धारित शिक्षण-कौशलों का स्थायी रूप से विकास नहीं कर लेता है।

सम्भावित शिक्षण-कौशल—सूक्ष्म शिक्षण के द्वारा सामान्यतः जिन शिक्षण-कौशलों का विकास किया जा सकता है। **एलन** या **रियान** ने निम्न सूची दी है—

(1) उद्दीपक परिवर्तन	(2) व्यवस्था पूर्ति
(3) समाप्ति	(4) मौन तथा अशाब्दिक उपाय
(5) पुनर्बलन	(6) प्रश्न पूछना
(7) खोजपूर्ण प्रश्न	(8) विभिसारी प्रश्न
(9) प्रतिच्छित व्यवहार	(10) उदाहरण देना
(11) भाषण देना	(12) उच्च स्तरीय प्रश्न करना
(13) योजित पुनरावृत्ति	(14) विचार संचार

मेरठ विश्वविद्यालय के डॉ. आर. ए. शर्मा ने अपनी पुस्तक "टेक्नोलोजी ऑफ टीचिंग" में अग्रांकित बाइस सम्भावित शिक्षण-कौशलों का उल्लेख किया है—

(1) उद्दीपक परिवर्तन
(2) विन्यास प्रेरण
(3) समापन
(4) मौन तथा अशाब्दिक संकेत
(5) पुनर्बलन की दक्षता
(6) प्रश्नों में धारा प्रवाह
(7) खोज पूर्ण-प्रश्न
(8) व्यवहार पुनर्पहचान
(9) उदाहरण
(10) व्याख्या
(11) छात्र सहक्रिया
(12) उद्देश्य लेखन
(13) लेखन-पट प्रयोग
(14) कक्षा व्यवस्था
(15) श्रव्य-दृश्य सामग्री प्रयोग
(16) गृह-कार्य प्रदान करना
(17) समायोजन पाठ
(18) उत्तर स्तरीय प्रश्न
(19) विभिसारी प्रश्न
(20) भाषण देना
(21) योजित पुनरावृत्ति
(22) विचार संचार की पूर्णतः

सूक्ष्म शिक्षण के लाभ

(1) सूक्ष्म-शिक्षण शिक्षण-कौशल के विकास में होने वाले अपव्यय तथा जटिलता को दूर करता है।

(2) सूक्ष्म-शिक्षण छात्राध्यापकों के कक्षाकक्ष व्यवहार को परिमार्जित करता है।

(3) सूक्ष्म-शिक्षण की सहायता से उद्देश्य आधारित शिक्षण सम्भव है।

(4) सूक्ष्म-शिक्षण के द्वारा विभिन्न शिक्षण-कौशलों का विकास सरलता से हो जाना सम्भव है।

(5) इससे पूर्व-सेवाकालीन एवं उत्तर-सेवाकालीन दक्षताओं का विकास सम्भव है।

(6) सूक्ष्म-शिक्षण के द्वारा अभिप्रेरण तथा पुनर्बलन का प्रयोग सम्भव है।

(7) सूक्ष्म-शिक्षण से शिक्षणाभ्यास का गुणात्मक विकास होता है।

(8) सूक्ष्म-शिक्षण द्वारा कक्षाकक्ष की परिस्थितियों का नियन्त्रण सम्भव है।

(9) वैज्ञानिक उपकरणों के द्वारा छात्राध्यापक को उसकी त्रुटियों का ज्ञान उपलब्ध कराया जा सकता है।

(10) सूक्ष्म-शिक्षण के द्वार। प्रतिपुष्टि के द्वारा छात्राध्यापक को शिक्षणाभ्यास में परिमार्जन करने हेतु प्रेरित किया जा सकता है।

(11) सूक्ष्म-शिक्षण में अधिक सफल व विश्वसनीय पर्यवेक्षण हो सकता है।

(12) सूक्ष्म-शिक्षण वास्तविक तथा अभिरूपित दोनों ही प्रकार की परिस्थितियों में सम्भव है।

(13) इससे छात्राध्यापक को प्रशिक्षण अधिक व्यक्तिनिष्ठ बनाता है।

(14) यह बृहत कक्षाकार दीर्घ समय तथा लम्बे पाठों से उत्पन्न जटिलताओं व विलष्टताओं को दूर करता है।

(15) सूक्ष्म-शिक्षण समय व साधनों की दृष्टि से अपेक्षाकृत अधिक मितव्ययी होता है।

(16) सूक्ष्म-शिक्षण में छात्राध्यापक वीडियो टेप आदि के द्वारा अपनी त्रुटियों को स्वयं ही सप्रमाण देखकर उन्हें दूर करने के प्रयास करता है।

सूक्ष्म-शिक्षण की सीमाएँ—सूक्ष्म-शिक्षण की निम्नलिखित सीमायें या दोष हैं—

(1) लघु-कक्षा की परिस्थितियाँ वास्तविक कक्षा की परिस्थितियों से भिन्न होती हैं इसलिए जो छात्राध्यापक सूक्ष्म-शिक्षण से कुछ शिक्षण कौशलों का विकास कर लेते हैं तो उन कौशलों का वे वास्तविक कक्षा में सफलतापूर्वक नहीं कर सकते हैं क्योंकि वास्तविक कक्षा की कक्षा-आकार समय तथा पाठ्यवस्तु के सन्दर्भ में जटिलतायें अधिक होती हैं। उदाहरण के लिए 5-10 छात्रों की कक्षा में अनुशासन स्थापित करने हेतु अपनाई गई विधियाँ 50-60 छात्रों में सफलतापूर्वक कार्य नहीं कर सकती है।

(2) सूक्ष्म शिक्षण से छात्राध्यापक वास्तविक शिक्षण की गहराइयों को नहीं छू पाता है।

(3) कुछ विद्वानों का मत है कि सूक्ष्म शिक्षण छात्राध्यापकों में प्रभावोत्पादकता का पर्याप्त विकास नहीं कर पाता है।

(4) इसमें कौशलों व विषयवस्तु पर बहुत अधिक महत्त्व दिया जाता है।

(5) समय की दृष्टि से यह अधिक व्ययशाली है।

(6) सूक्ष्म-शिक्षण में छात्रों के मूल्यांकन, निदान तथा सधारात्मक शिक्षण का कोई प्रावधान नहीं होता है।

2. दल-शिक्षण
(TEAM-TEACHING)

दल-शिक्षण की विभिन्न विद्वानों ने अलग-अलग शब्दों में एक ही भाव को प्रदर्शित करते हुए कई परिभाषाएँ दी हैं। दल-शिक्षण का अर्थ स्पष्ट करने के उद्देश्य से नीचे कुछ विद्वानों की परिभाषायें दी जा रही हैं—

शैपलिन तथा **ओल्ड**—"दल शिक्षण अनुदेशात्मक संगठन का वह प्रकार है जिसमें शिक्षण प्रदान करने वाले व्यक्तियों को कुछ छात्र सुपुर्द कर दिए जाते हैं। शिक्षण प्रदान करने वालों की संख्या दो या उससे अधिक होती है जिन्हें शिक्षण का दायित्व सौंपा जाता है तथा जो एक छात्र-समूह को सम्पूर्ण विषयवस्तु या उसके किसी महत्त्वपूर्ण अंग का एक साथ शिक्षण करते हैं।"

कार्ल आलसन—यह एक ऐसी शैक्षणिक परिस्थिति है जिसमें अतिरिक्त ज्ञान व कौशल से युक्त दो या अधिक अध्यापक पारस्परिक सहयोग से किसी शीर्षक के शिक्षण

की योजना बनाते है तथा एक ही समय में एक छात्र समूह को विशिष्ट अनुदेश
लोचवान कार्यक्रम तथा सामूहिक विधियों का प्रयोग करते हैं।

दल-शिक्षण की विशेषताएँ—शैपलिन तथा ओल्ड ने दल-शिक्षण में निम्नलि
विशेषताएँ बताई है—

(1) दल-शिक्षण अनुदेशात्मक संगठन का एक विशिष्ट प्रकार है जो पूरी तरह
औपचारिक होता है।

(2) दल-शिक्षण शिक्षक दल को सामूहिक उत्तरदायित्व प्रदान करता है।

(3) दल-शिक्षण में अध्यापक दल द्वारा अनौपचारिक ढंग से की गई अनुदेशन
क्रियाये सम्मिलित की जा सकती हैं।

(4) अनुदेशात्मक व्यवस्था ऐसी होती है जो सम्पूर्ण विद्यालय व्यवस्था के
समन्वित हो सके।

(5) दल-शिक्षण के लिये निश्चित संख्या में कुछ शिक्षण कर्मचारी होते हैं तथा
निश्चित संख्या में कुछ छात्र अनुदेश हेतु प्रदान किये जाते हैं। इससे शिक्षण कर्मचा
तथा छात्रों में एक विशिष्ट प्रकार के सम्बन्ध स्थापना पर बल दिया जाता है।

(6) दल-शिक्षण के लिए एक साथ दो या दो से अधिक अध्यापक कक्षाक
छात्रों को अनुदेशन प्रदान करने जाते हैं।

(7) दल-शिक्षण व्यवस्था के अन्तर्गत अनुदेशन पूरी तरह से पूर्व नियोजित
व्यवस्थित होता है।

(8) प्रत्येक शिक्षक को कुछ सामूहिक तथा कुछ व्यक्तिगत उत्तरदायित्व
किये जाते हैं।

(9) सभी अध्यापक तथा अन्य शिक्षा कर्मचारी पूर्ण पारस्परिक सहयोग के
कार्य करते हैं।

(10) सभी अध्यापकों तथा शिक्षण कर्मचारियों के कार्य किसी एक विशिष्ट
वस्तु या उसके किसी एक महत्वपूर्ण अंग से सम्बन्धित अनुदेशन प्रदान करने त
सीमित रहती है।

(11) कक्षा-कक्ष में गये सभी अध्यापकों तथा अन्य कर्मचारियों की स्थिति पहले से
निश्चित कर दी जाती है इनमें से किसी को एक संयोजक, किसी को वरिष्ठ अध्या
किसी को अध्यापक तो किसी को कनिष्ठ अध्यापक जैसी स्थितियाँ प्रदान की जाती

(12) आवश्यकता पड़ने पर दल-शिक्षण हेतु विद्यालय के बाहर के कुछ विशेष
की सहायता व सहयोग भी लिया जा सकता है।

(13) एक दल में कितने सदस्य हों, निश्चित नहीं होता है। दल शिक्षण
आवश्यकता—आधुनिक युग में दल-शिक्षण की दिनोंदिन आवश्यकता बढ़ती जा रही
इसके निम्नलिखित कारण हैं—

(1) शिक्षकों का अभाव—प्रथम और विशेष तौर पर द्वितीय विश्वयुद्ध के
शिक्षकों की संख्या में कमी आई। अनेक शिक्षक अच्छे वेतन प्राप्त करने की दृष्टि
अन्य व्यवसायों में चले गये जिनके स्थान पर अपेक्षाकृत कम योग्यता वाले शिक्षक

इस प्रकार शिक्षकों को अभाव संख्यात्मक तथा गुणात्मक दोनों ही दृष्टिकोणों से हुआ।
इस अभाव को—विशेष तौर से गुणात्मक विकास को दूर करने हेतु दल-शिक्षण की
आवश्यकता हुई।

(2) छात्र संख्या में वृद्धि—पिछले दशकों में कक्षाओं में छात्रों की संख्या पर्याप्त
मात्रा में बढ़ी है। जिन कक्षाओं में सामान्यतः 20-25 छात्र होते थे आज उन्हीं कक्षाओं में
60-65 छात्र पाये जाते हैं।

एक अकेले अध्यापक के लिए इतने छात्रों को सँभालना, अनुशासन में रखना तथा
उनकी शैक्षिक आवश्यकताओं की पूर्ति करना सम्भव नहीं है इसलिए आवश्यकता इस
बात की अनुभव हुई कि कक्षा में 60-65 छात्रों का मुकाबला करने के लिए एक अकेले
अध्यापक को न भेजा जाय, अपितु कई अध्यापक मिलकर एक दल के रूप में कक्षा में
जायें और छात्रों की शैक्षिक आवश्यकताओं की पूर्ति करें।

(3) विज्ञान की प्रगति—विज्ञान की प्रगति का स्पष्ट प्रभाव शिक्षा कला पर पड़ता
है। विज्ञान ने शिक्षा जगत को आज विविध प्रकार के शिक्षण यन्त्र तथा वैज्ञानिक
उपकरण प्रदान किए हैं। कक्षा कक्ष में इनका प्रयोग अकेला अध्यापक नहीं कर सकता
है। उसे इनके प्रयोग के लिए लिपिक, टेकनीशियन तथा विद्युत कर्मचारी आदि की
आवश्यकता पड़ती है। इन व्यक्तियों की उपस्थिति के कारण शिक्षक न केवल अपना
कार्य अधिक सुगमता से ही करता है अपितु उसके कारण शिक्षण कार्य पर चिंतन करने
के लिये अधिक समय, श्रम भी उपलब्ध हो जाता है।

(4) पाठ्यक्रमों में परिवर्तन—पिछले तीन चार दशकों में विश्व के प्रायः प्रत्येक
राष्ट्र की शिक्षा व्यवस्था में उल्लेखनीय परिवर्तन हुए हैं। शिक्षा जगत के इन परिवर्तनों
में सबसे महत्त्वपूर्ण परिवर्तन पाठ्यक्रमों में हुआ है। शैक्षणिक विषयों की संख्या बढ़ी है,
नये-नये विषयों का विकास हुआ है, विषयों में विशिष्टीकरण और भी सूक्ष्म हुआ है तथा
विषयों का महत्त्व भी दब गया है। पाठ्यक्रम के इस बदलाव के कारण शिक्षण भी कठिन
हो गया। अब यह कठिन लगता है कि एक शिक्षक इन नवीन तकनीकी विषयों का
अकेला ही सफलतापूर्वक ज्ञान प्रदान कर सकेगा।

(5) ज्ञान में वृद्धि—पिछले कुछ वर्षों में विभिन्न विषयों से सम्बन्धित ज्ञान में भी
उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। प्रत्येक विषय की व्याख्या व विवेचना वैज्ञानिक सिद्धान्तों के
आधार पर ही की जाने लगी है। इतना ही नहीं आज ज्ञान की खोज भी बड़ी तीव्र गति
से हो रही है। इसलिए छात्रों को नवीनतम ज्ञान देने की आवश्यकता होती है। एक
अकेला शिक्षक अपने छात्रों को नवीनतम ज्ञान नहीं दे सकता है, क्योंकि प्रत्येक
अध्यापक के ज्ञान की मात्रा सीमित होती है। विषयों के विशिष्टीकरण के कारण भी
आज प्रत्येक अध्यापक का भी विशिष्टीकरण हो गया है। दल-शिक्षण से विशिष्टीकृत
ज्ञान प्रदत्त करने में सहायता मिलती है।

(6) नवीन शिक्षण-योजनाओं का विकास—विगत कुछ वर्षों से विभिन्न विद्वानों ने
कुछ विशिष्ट शिक्षण-योजनाओं का विकास किया। इनमें **विनेट** का प्लान तथा **डाल्टन**
प्लान का नाम विशेष रूप से लिया जा सकता है। इस प्रकार की शिक्षण योजनाएँ
व्यक्तिगत विभिन्नताओं के अनुसार शिक्षण कार्य करने पर बल देती हैं। अकेला शिक्षक

न तो एक कक्षा के सभी छात्रों की व्यक्तिगत विभिन्नताओं का पता ही कर सकता, न यह उन सब की विभिन्नीकृत आवश्यकताओं की पूर्ति ही कर सकता है। कक्षा का उत्तरदायित्व एक साथ कई अध्यापकों को सौंपा जाता है।

(7) व्यक्तिगत विभिन्नताओं की स्वीकृति—मनोविज्ञान ने शिक्षा के क्षेत्र में ... दी है। इन्हीं क्षेत्रों में एक क्षेत्र व्यक्तिगत विभिन्नताओं का है। अब बालक शिक्षा के लिए नहीं अपितु शिक्षा बालक के लिए है। इस तथ्य के अनुसार बालक की जो क्षमताएँ तथा प्रवृत्तियाँ आदि हैं उसी उसी के अनुसार शिक्षा दी जानी चाहिए। आज औसत मन्द बुद्धि, तीव्र बुद्धि तथा मेधावी आदि सभी प्रकार के बालकों के लिए पृथक्-पृथक् प्रकार की शिक्षा की व्यवस्था की जाती है। इन सब प्रकार के बालकों के लिये पृथक्-पृथक् प्रकार की शिक्षण-विधियाँ अधिक उपयुक्त होती हैं, इस उद्देश्य से दल-शिक्षण आवश्यक हो गया है।

(8) शिक्षा तकनीकी का विकास—पिछले कुछ वर्षों में शिक्षा-तकनीकी का विकास होना भी एक प्रमुख घटना है। इस सम्बन्ध में शैक्षिक दूरदर्शन का नाम विशेष रूप से लिया जा सकता है। शैक्षिक दूरदर्शन के अलावा अभिक्रमित अधिगम का भी इसी में विकास किया गया। इन सबके विकास का स्पष्ट प्रभाव विद्यालय-संगठन पर पड़ा। इन सबका उपयोगी ढंग से प्रयोग हो सके, इसके लिए दल-शिक्षण अनिवार्य है। फाउन्डेशन के एक प्रतिवेदन में इस सम्बन्ध में कहा गया है "शैक्षिक दक्षताओं का ... दल शिक्षण की सहायता से सरल हो गया है।"

दल के सदस्य—दल-शिक्षण के लिए अध्यापकों तथा अन्य कर्मचारियों के एक दल की आवश्यकता होती है इस दल में कुल कितने सदस्य हों तथा कौन-कौन सदस्य हों, यह बहुत कुछ विद्यालय के स्तर, विद्यालय के पास उपलब्ध साधन तथा विषय-वस्तु की विशेषता पर निर्भर करता है। उदाहरण के लिए एक साधनहीन प्राथमिक विद्यालय में दो या तीन अध्यापक ही दल का गठन कर लेते हैं, जबकि किसी साधन सम्पन्न उच्च माध्यमिक विद्यालय में कई श्रेणी के अध्यापक बिजली-मिस्त्री, तकनीकी व्यक्ति तथा एक दो लिपिकीय कर्मचारी मिलकर दल का गठन कर सकते हैं। जिन व्यक्तियों के पास साधन उपलब्ध होते हैं, वहाँ दल निम्नलिखित व्यक्तियों का दल गठित किया जाता है—(1) प्रधानाध्यापक, (2) दल संयोजक, (3) वरिष्ठ अध्यापक, (4) कनिष्ठ अध्यापक, (5) प्रयोगशाला सहायक, (6) लिपिक, (7) शरीर शिक्षा अध्यापक, (8) कला अध्यापक तथा व संगीत अध्यापक। इसमें भी यह बहुत कुछ उपलब्ध साधनों पर निर्भर करता है कि विभिन्न स्तरों के अध्यापकों की संख्या कितनी हो। संयोजक दो या तीन हो सकते हैं जो विभिन्न क्षेत्रों से सम्बन्धित कार्यों का समन्वय करेंगे। इसी प्रकार वरिष्ठ व कनिष्ठ अध्यापकों की संख्या भी कम या अधिक हो सकती है। दल-शिक्षण व्यवस्था में दल के विभिन्न सदस्यों की क्या स्थिति रहती है इसका निर्धारण करने के लिए विभिन्न विद्वानों प्रशासकों तथा विद्यालयों ने अपने-अपने प्रारूप विकसित कर रखे हैं। लैवि-संगठन शिक्षण दल प्रारूप का एक ऐसा ही नमूना दिया गया है। यह प्रारूप सैपलिन तथा ओल्ड ने अपनी "पुस्तक टीक टीचिंग" में दिया है।

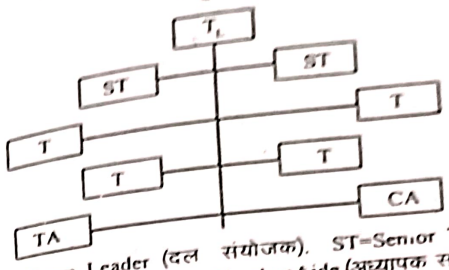

(1) लघु रूप

लघुरूप

इसमें TL=Team Leader (दल संयोजक), ST=Senior Teacher (वरिष्ठ अध्यापक) T = Teacher (अध्यापक) TA = Teacher Aide (अध्यापक सहायक) तथा CA = Clerical Aide (लिपिकीय सहायक)

(2) बृहत रूप

बड़े विद्यालयों के लिये लैवि-संगठन शिक्षा दल के एक बृहत प्रारूप का भी विकास किया गया, यह प्रारूप नीचे दिया जा रहा है—

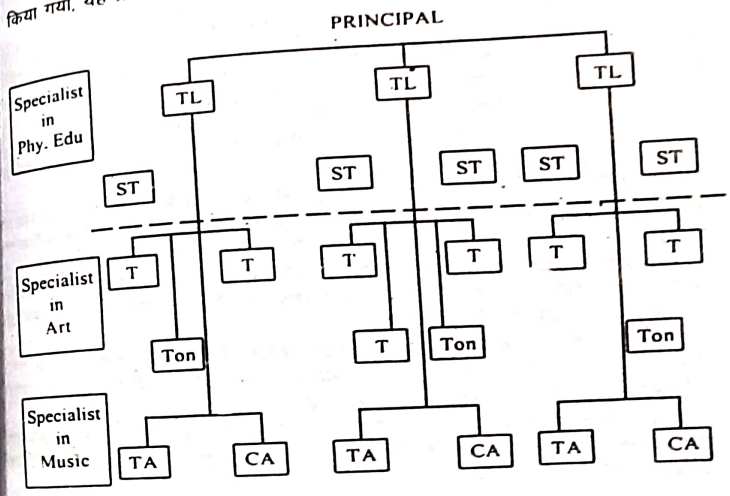

इस प्रारूप में दल का गठन सीधे प्राचार्य की देखरेख में हुआ है ... संयोजक है जो पृथक्-पृथक् क्षेत्रों से सम्बन्धित मामलों का संयोजन करेंगे ... संयोजक को एकाधिक विशिष्ट अध्यापक दिए गये हैं। जहाँ तक भारतीय विद्यालयों का प्रश्न है वहाँ आर्थिक तथा व्यवस्थागत कारणों से इतने बृहत् स्तर के दल का गठन नहीं किया जा सकता है। भारतीय विद्यालयों में लघु-आकार के दल ही गठित किये जा सकते हैं। इन लघु-दलों में एक दल नेता, एक दो सहयोगी अध्यापक तथा ... सहायक रखे जा सकते हैं। दल नेता तो कुछ भी विषयवस्तु पढ़ा सकता है ... सम्बन्धित विषयानुसार आवश्यक मात्रा में सहयोगी अध्यापकों की आवश्यकता ... तथा एक लिपिक तथा एक ऐसे चपरासी की आवश्यकता पड़ती जो थोड़ा बहुत ... का काम भी जानता हो। यही व्यक्ति श्रव्य-दृश्य सामग्री का दल नेता के निर्देशन में प्रयोग करेगा। इस दल के प्रारूप का हम निम्न प्रकार से व्यक्त कर सकते हैं—

विभिन्न विषयों से सम्बन्धित सहयोगी अध्यापक	दल नेता प्रमुख शिक्षक	लिपिकीय सहायक	सामान्य सहायक
छात्र			

दल शिक्षण के लाभ—दल-शिक्षण के निम्नलिखित लाभ हैं—

(1) अनुदेशन में वृद्धि—दल-शिक्षण के अन्तर्गत एक साथ कक्षा में कई अनुभवी प्रतिष्ठित अध्यापक जाते हैं। इतने अध्यापकों के होते कक्षा में अनुशासनहीनता की समस्या उत्पन्न नहीं होती है।

(2) विशिष्टीकृत अनुदेशन सम्भव—दल-शिक्षण के अन्तर्गत विभिन्न विषयों के कार्यों के विशिष्ट अध्यापक तथा व्यक्ति दल का गठन करते हैं। ये विशिष्ट व्यक्ति अपने-अपने विषयों से सम्बन्धित विशिष्ट अनुदेशन प्रदान करते हैं। इससे छात्रों को विभिन्न विषयों की आधुनिकतम जानकारी प्राप्त होती है।

(3) वार्ताओं के लिए अवसर—दल-शिक्षण में वाद-विवाद को प्रमुख स्थान दिया जाता है। इससे छात्रों तथा अध्यापकों को विषय सम्बन्धी उपयोगी वार्ता करने का अवसर मिलता है।

(4) नियोजित शिक्षण संभव—दल-शिक्षण व्यवस्था के अन्तर्गत जब दल के सदस्य कक्षाकक्ष में शिक्षण हेतु आते हैं तो अपने विभिन्न कार्यों तथा विषयवस्तु के प्रस्तुतीकरण की पूरी तरह योजना बना लेते हैं। इससे नियोजित शिक्षण सम्भव है।

(5) श्रव्य-दृश्य सामग्री का उचित प्रयोग—दल-शिक्षण व्यवस्था के अन्तर्गत श्रव्य-दृश्य सामग्री का अधिक प्रयोग करना सम्भव होता है। अतः इस प्रकार की सामग्री के समस्त लाभ दल-शिक्षण को भी प्राप्त होते हैं।

(6) मानवीय सम्बन्धों की स्थापना—दल-शिक्षण व्यवस्था के अन्तर्गत छात्र तथा शिक्षकों के मध्य अधिक निकट सम्बन्ध स्थापित होने की सम्भावना होती है। इससे छात्र का सन्तुलित सामाजिक विकास सम्भव होता है।

(7) लोचनशीलता—दल-शिक्षण के सभी कार्यों में लोच होती है। यह एक अध्यापक तथा कर्मचारी वर्ग तथा सहायक सामग्री तथा अन्य व्यवस्थाओं के सम्बन्ध में अधिक लोचवान नीति अपनाती है।

(8) शिक्षकों के ज्ञान में वृद्धि—दल-शिक्षण व्यवस्था के अन्तर्गत शिक्षक को न केवल छात्रों की उपस्थिति में पढ़ाना पड़ता है अपितु उन्हें अन्य अध्यापकों तथा कर्मचारियों की उपस्थिति में भी पढ़ाना पड़ता है।

दल-शिक्षण की सीमायें

एक ओर दल-शिक्षण के इतने सारे गुण या लाभ हैं वहीं दूसरी ओर इसकी अपनी कुछ सीमायें तथा दोष भी हैं। नीचे इन्हीं सीमाओं का उल्लेख किया है—

(1) सहयोग की भावना अनिवार्य—दल-शिक्षण की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि दल के सभी सदस्य परस्पर सहयोग की भावना से कार्य करें। सामान्यतया दल के सदस्यों में वांछित मात्रा में सहयोग की भावना कम ही पायी जाती है। परिणामस्वरूप दल-शिक्षण अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने में सफल नहीं रहता है।

(2) स्वतन्त्र शिक्षण का हनन—कुछ ऐसे सफल शिक्षक होते हैं जो अकेले ही बहुत ही प्रभावी शिक्षण अपने छात्रों को प्रदान करते हैं। दल-शिक्षण ऐसे सफल शिक्षकों को निराश करती है क्योंकि यहाँ वे सफल शिक्षण का श्रेय स्वयं नहीं ले पाते हैं।

(3) समन्वय स्थापना में कठिनाई—तीव्र व्यक्तिगत विभिन्नताओं के कारण अनेक बार दल संयोजक को विभिन्न शिक्षकों तथा अन्य कर्मचारियों के कार्यों में समन्वय करने में कठिनाई हो जाती है। इनके कार्यों में जब तक समन्वय नहीं होगा तब तक दल-शिक्षण सफल नहीं हो सकता है।

(4) आर्थिक भार—दल-शिक्षण के लिये विद्यालय को अनेक प्रकार की व्यवस्थायें व साधन जुटाने पड़ते हैं। परिणामस्वरूप इन पर काफी व्यय विद्यालय को करना पड़ता है। इससे उन पर आर्थिक भार अधिक हो जाता है।

(5) अतिरिक्त व्यवस्था की आवश्यकता—दल-शिक्षण के लिये न केवल अतिरिक्त धन की ही आवश्यकता पड़ती है अपितु कुछ अन्य अतिरिक्त व्यवस्थायें भी करनी पड़ती हैं जिनके लिये बहुत अधिक मात्रा में धन की आवश्यकता पड़ती है। जैसे दल-शिक्षण के लिये काफी बड़े-बड़े कमरों की आवश्यकता पड़ती है।

कुछ सुझाव—दल-शिक्षण को सफलता प्रदान करने के लिये कुछ बातें आवश्यक होती हैं। इन बातों को सुझाव के रूप में नीचे दिया जा सकता है—

(1) दल का गठन—दल-शिक्षण के लिये दल का गठन बड़ी सावधानी से करना चाहिये। दल के सदस्यों का चुनाव करते समय निम्न बातें ध्यान में रखी जायें—

(i) दल के सदस्य विभिन्न विषयों से सम्बन्धित हों।

(ii) उनकी क्षमतायें तथा योग्यतायें पृथक्-पृथक् हों।

(iii) दल के विभिन्न सदस्यों की स्थिति को सुनिश्चित क्रम दिया जाय।

(iv) प्रत्येक सदस्य के दायित्व सदस्य को स्पष्ट हो।

(v) प्रत्येक सदस्य के कार्यों में समन्वय स्थापित किया जाय।

(2) पर्याप्त व्यवस्था—दल-शिक्षण के लिए पर्याप्त बड़े कमरे, सहायक सामग्री तथा अन्य वस्तुओं तथा उपकरणों की पूर्ण व्यवस्था पहले से ही कर लीजिए।

(3) व्यवस्थित नियोजन—दल-शिक्षण का कार्य प्रारम्भ करने से पूर्व विषयवस्तु पाठ सामग्री आदि की पूर्ण व्यवस्थित योजना पहले से ही बना लेनी चाहिए।

(4) समय तत्त्व का निर्धारण—दल-शिक्षण में समय तत्त्व का भी पर्याप्त महत्व है अतः सभी क्रियाओं का निर्धारण समय तत्त्व के संदर्भ में कर लेना चाहिये तथा क्रिया के लिए समय निश्चित कर देना चाहिए। इस हेतु सुविचार समय चक्र ठीक रहता है।

(5) निरीक्षण की व्यवस्था—सम्पूर्ण दल तथा दल के प्रत्येक सदस्य के कार्य केवल निरीक्षण करने की ही व्यवस्था हो अपितु उनके कार्यों का मूल्यांकन करने व्यवस्था कर लेनी चाहिए। मूल्यांकन के द्वारा दल शिक्षण की सफलता का भी मूल्य करना चाहिए।

संक्षेप मे आज कक्षाओं, छात्रों की विशेषताओं तथा विषयों के बाहुल्य कठिनाई स्तर को देखते हुये कहा जा सकता है कि दल-शिक्षण आज भी आवश्यक तथा अनिवार्यता है किन्तु हमे यह देखना है कि दल-शिक्षण को गम्भीरता के साथ जाय और दल में केवल वही शिक्षक तथा अन्य कर्मचारी सम्मिलित किये जायें जो पूर्ण सहयोग प्रदान कर सकते हैं। यह बहुत कुछ दल के नेता पर भी निर्भर करता कि वह अन्यों का किस प्रकार तथा किस सीमा तक सहयोग प्राप्त कर सकता है। नेता ऐसा हो जिसमें यथेष्ठ मात्रा में नेतृत्व गुण हो।

3. अभिक्रमित अनुदेशन
(PROGRAMMED INSTRUCTIONS)

सुसान मार्कले ने अभिक्रमित अध्ययन की परिभाषा देते हुए लिखा है "यह स्वीकृति छात्र के व्यवहारों पर शैक्षणिक घटनाओं के मापन योग्य एवं अपेक्षाकृत प्रभाव है पुनः उत्पन्न किये जा सकने वाले क्रम में लाये जाते हैं।"

संक्षेप में यह शिक्षण प्रदान करने की व्यक्तिनिष्ठ पद्धति है जिसमें छात्र अ सक्रियता के साथ अपनी गति के अनुसार अधिगम करता है और साथ ही अपने के परिणाम ज्ञात करता हुआ प्रतिपुष्टि भी प्राप्त करता चलता है। इस प्रकार अनुदेशन के शिक्षक की उपस्थिति अनिवार्य नहीं होती है।

अभिक्रमित अधिगम की विशेषताएँ

(1) अभिक्रमित अधिगम पाठ्यवस्तु को अत्यन्त ही तार्किक एवं नियंत्रित खण्डों में विभक्त करके छात्रों के सम्मुख प्रस्तुत करती है।

(2) यह श्रव्य-दृश्य साधनों का प्रयोग न होकर अनुदेशन तकनीकी का एक अं

(3) यह छात्रों के अपनी स्वयं की क्षमताओं, योग्यताओं तथा गति से अ करने के अवसर प्रदान करती है। यह अधिगम की अत्यन्त ही व्यक्तिनिष्ठ पद्धति

(4) यह छात्रों को स्वः मूल्यांकन के अवसर प्रदान करती है किन्तु यह मूल्यांकन विधि नहीं है वरन् यह अत्यन्त ही आधुनिक शिक्षण कौशल है।

(5) यह उद्देश्य आधारित शिक्षण पद्धति है जिसमें पाठ्य-पुस्तक कुछ विशि उद्देश्यों को ध्यान में रखकर प्रस्तुत की जाती है।

(6) यह छात्रों के सम्मुख विषयवस्तु की समस्या के रूप से प्रस्तुत करती है कि यह समस्या समाधान पद्धति नहीं है वरंच यह अनुदेशन समस्याओं का एक नया रू जिसका प्रमुख उद्देश्य छात्र व्यवहारों में वांछित परिवर्तन लाना है।

(7) यह छात्रों को आन्तरिक तथा बाह्य सक्रियता प्रदान करने की एक विधि है जिससे छात्र अध्ययन अध्यापन प्रक्रिया में अत्यन्त ही सक्रिय रहते हैं।

(8) यह पद्धति शिक्षण प्रक्रिया में अध्यापक उपस्थिति की अनिवार्यता को कम करती है।

(9) सफल शिक्षण सफल अभिक्रमिकों पर निर्भर करती है।

अभिक्रमित अधिगम के सिद्धान्त—अधिगम को इस नवीन पद्धति का सामान्य परिचय प्राप्त कर लेने के उपरान्त अब हम इसके प्रमुख सिद्धान्तों की चर्चा करेंगे। अभिक्रमिक अधिगम के निम्नलिखित सिद्धान्त हैं—

(1) लघु सोपानों का सिद्धान्त—इस सिद्धान्त के अनुसार जिस विषयवस्तु का अधिगम करना है उस विषय-वस्तु का विस्तृत विश्लेषण कर लिया जाता है तथा सम्पूर्ण विषय को छोटे-छोटे खण्डों में विभक्त कर दिया जाता है। विषय-वस्तु को लघु खण्डों में विभाजित करते समय यह ध्यान रखा जाता है कि प्रत्येक विभाजित खण्ड का कोई अर्थ हो तथा प्रत्येक खण्ड अधिगमकर्त्ता को कोई नवीन ज्ञान या सूचना देने की योग्यता रखता हो। तकनीकी भाषा में अभिक्रमित अधिगम के इन लघु खण्डों को "फ्रेम" के नाम से पुकारा जाता है। छात्र अत्यन्त सक्रियता के साथ एक समय में एक "फ्रेम" को सीखता है। यहाँ यह विशेषता होती है कि छात्र जब तक एक फ्रेम को नहीं सीख लेगा तब तक आगे का फ्रेम नहीं सीखा जा सकता है।

(2) प्रतिपुष्टि का सिद्धान्त—इसे सम्पुष्टि का सिद्धान्त भी कहा जाता है। इस सिद्धान्त के अनुसार अधिगमकर्ता को तुरन्त ही उसके प्रत्युत्तरों की शुद्धता या अशुद्धता का ज्ञान कराकर उसकी प्रतिपुष्टि या सम्पुष्टि कर दी जाती है। अभिक्रमक तुरन्त ही छात्र के परिणामों का ज्ञान प्रदान करता है। यदि उसका प्रत्युत्तर सही है तो छात्र को आगे का "फ्रेम" सीखने के लिए दे दिया जाता है। प्रत्युत्तर गलत होने पर उसी फ्रेम पर पुनः कार्य करने को कहा जाता है।

(3) सक्रिय प्रत्युत्तर का सिद्धान्त—अभिक्रमित अध्ययन के इस सिद्धान्त के अनुसार छात्र को "फ्रेम" का अधिगम करने में अत्यन्त ही सक्रियता से कार्य करना चाहिए तथा जब भी फ्रेम पूरा हो जाय उसे तुरन्त ही प्रत्युत्तर प्रदान करना चाहिए। उसके द्वारा प्रत्युत्तर ही उसकी सफलता तथा असफलता का द्योतक होता है। अभिक्रमित अध्ययन पद्धति की मान्यता है कि छात्र तभी अच्छा सीखता है जब वह सक्रिय रहकर सीखी विषयवस्तु का प्रत्युत्तर प्रदान करे।

(4) स्वगति का सिद्धान्त—अभिक्रमित अधिगम सीखने के पूर्णरूपेण व्यक्तिनिष्ठ पद्धति है इसलिए इस पद्धति में प्रत्येक छात्र को यह अवसर प्रदान किया जाता है कि वह अपनी योग्यता, दक्षता तथा कौशल के अनुसार धीरे-धीरे या जल्दी-जल्दी अधिगम कर सके यहाँ जब तथा जितनी देर में छात्र एक "फ्रेम" को सीखकर उसका सही प्रत्युत्तर दे देगा तभी उसे आगामी "फ्रेम" सीखने को दिया जायेगा। यदि वह जल्दी-जल्दी सीखता है तो उसे फ्रेम भी उसी गति से दिये जायेंगे।

(5) छात्र परीक्षण का सिद्धान्त—अभिक्रमित अधिगम का यह पाँचवाँ सिद्धान्त है, इस सिद्धान्त के अनुसार शिक्षक अपने छात्रों का समय-समय परीक्षण करता है। अभिक्रमित पद्धति अधिगम के अन्तर्गत प्रत्येक छात्र फ्रेम का लिखित उत्तर देता है। शिक्षक 50 उत्तरों की जाँच करता है। इस जाँच से वह छात्र की कमजोरियों का पत लगाता है तथा उन्हें दूर करने के लिए नये फ्रेमों का निर्माण करता है।

इन सिद्धान्तों के अनुसार अधिगम करते समय छात्रों को इन पाँच क्रि... गुजरना पड़ता है—(1) पहले वह "फ्रेम" को पढ़ता है, (2) फिर फ्रेम का प्रत्युत्तर ... है, (3) उसके बाद अपने प्रत्युत्तर की जाँच करता है, यहाँ पर ही प्रतिपुष्टि ... (4) इसके बाद वह आगे बढ़ता है और (5) अन्त में वह अपने प्रत्युत्तरों का ... रखकर जाँच हेतु प्रस्तुत करता है। इसे हम निम्न प्रकार से लिख सकते हैं—

Reads पढ़ता है → Writes लिखता है → Checks जाँचता है → Advances आगे बढ़ता है → Records प्रतिवेदन ...

अभिक्रमित अधिगम के उद्देश्य—अभिक्रमित अधिगम का विकास ... निम्नलिखित उद्देश्यों की पूर्ति करने के लिए किया गया—

(1) करके सीखने का उद्देश्य—अब यह स्थापित हो चुका है कि स्वयं करके ... गया ज्ञान अधिक स्थायी व प्रभावी होता है। इसलिए अभिक्रमित अधिगम पद्धति ... चेष्टा करती है कि छात्र की इस प्रकार से सहायता की जाय कि वह उसे करके ... के अधिकाधिक अवसर प्राप्त हों। संक्षेप में, अभिक्रमित अधिगम का प्रथम उद्देश्य ... को ऐसे अवसर प्रदान करना है जिनसे वह करके सीखे।

(2) स्वगति का उद्देश्य—अभिक्रमित अधिगम पद्धति अधिगम की शुद्ध व्यक्ति... पद्धति है अतः छात्रों के ऐसे अवसर प्रदान करने की चेष्टा करती है जिनसे वह ... गति से आगे बढ़ सकें। इस प्रकार अभिक्रमित अधिगम का दूसरा उद्देश्य छात्रों ... अधिगम हेतु ऐसे अवसर प्रदान करना है जिसमें वह अपनी योग्यताओं, दक्षताओं ... क्षमताओं के अनुसार अधिगम की गति बनाए रखे।

(3) अध्यापक उपस्थिति की समाप्ति—अभिक्रमित अधिगम पद्धति का ... उद्देश्य छात्रों को ऐसे अवसर विषय वस्तु तथा परिस्थितियाँ प्रदान करना है जि... अन्तर्गत वह अध्यापक की अनुपस्थिति में भी बिना किसी कठिनाई के न केवल ज्ञान ... प्राप्त कर सके, अपितु अपने प्राप्त ज्ञान की जाँच भी करता चले और आगामी वि... वस्तु का ज्ञान प्राप्त करने हेतु प्रेरित भी होता रहे।

(4) तार्किक तथा नियोजित ढंग से विषय वस्तु का प्रस्तुतीकरण—अभिक्र... अध्ययन का एक उद्देश्य यह भी है कि छात्रों के सम्मुख पाठ्य-वस्तु को अत्यन्त ही तार्कि... नियन्त्रित नियोजित तथा क्रमबद्ध रूप में प्रस्तुत किया जाय। इससे छात्र न केवल क्रमब... ज्ञान ही प्राप्त करते हैं अपितु के तार्किक विधि से भी ज्ञान प्राप्त करते हैं।

(5) स्वमूल्यांकन का उद्देश्य—अभिक्रमित अधिगम का विकास इस उद्देश्य से कि... गया कि छात्र अपने अधिगम का स्वयं ही मूल्यांकन कर सके। छात्र को न केवल अप... निष्पत्तियों का ही पता चलता है वरन् वह अपनी निष्पत्तियों का साथ ही साथ मूल्यांक... भी करता चलता है और अभिक्रमित अधिगम इस कार्य हेतु उन्हें अवसर प्रदान करने ... चेष्टा करता है।

अभिक्रमित-अधिगम वस्तु का निर्माण—हम ऊपर अध्ययन कर चुके हैं कि ... अभिक्रमित अधिगम के लिए पाठ्य-वस्तु को तार्किक एवं क्रमबद्ध रूप से अर्थ पूर्ण ... खण्डों में विभक्त करना पड़ता है। इस कार्य को सफलतापूर्वक सम्पन्न करने के लि... कुछ निश्चित सोपानों या चरणों की आवश्यकता पड़ती है। इन विभिन्न सोपानों को ... आगे लिखे वर्ग तथा उपवर्गों में विभक्त कर सकते हैं—

1. **तैयारी**
   (1) इकाइयों या शीर्षक का चयन
   (2) छात्र के सम्बन्ध में मान्यता निर्धारण
   (3) उद्देश्य लेखन
   (4) कसौटी परीक्षण निर्माण
   (5) पाठ्य-वस्तु का विकास
2. **अभिक्रमिक लेखन**
   (1) फ्रेम लेखन
   (2) फ्रेम तारतम्यता निर्धारण
   (3) अनुदेशन कौशल का निर्धारण
3. **परीक्षण तथा पुनरावृत्ति का मूल्यांकन**

नीचे इन सभी सोपानों का सामान्य परिचय दिया जा रहा है—

(1) इकाई अथवा शीर्षक चयन—अभिक्रम का निर्माण करने के लिए सर्वप्रथम किसी इकाई अथवा शीर्षक का चयन किया जाता है, जिसमें से फ्रेम बनाने हैं। प्रारम्भिक अवस्था में छोटी या सरल इकाई तथा शीर्षक का चयन किया जाना चाहिए। इस सम्बन्ध में निम्नांकित तथ्य ध्यान में रखना चाहिए—

(1) जिस इकाई या शीर्षक का चयन किया जाय, अभिक्रम बनाने वाले को उसका विस्तृत ज्ञान होना चाहिये।
(2) चयनित शीर्षक सरल तथा रोचक हो।
(3) चयनित शीर्षक ऐसा हो जिसका लघु-खण्डों में विभाजन सम्भव हो।
(4) शीर्षक अधिक लम्बा न हो, प्रारम्भ में छोटी-छोटी इकाइयाँ ली जायें।
(5) विषय-वस्तु तार्किक रूप में प्रस्तुत की जाय।

(2) छात्र सम्बन्धी योग्यतायें—अभिगम के लिये फ्रेमों का निर्माण करने से पूर्व छात्रों के सम्बन्ध में आवश्यक मान्यतायें ज्ञात कर लेनी चाहिए। उदाहरण के लिए छात्रों की आयु, रुचि पूर्व-ज्ञान, उनकी योग्यताएँ आदि बातों का निर्धारण कर लेना चाहिए। इस प्रकार छात्रों की भाषा तथा उसका स्तर आदि का भी अभिक्रमिक हो ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिए।

(3) उद्देश्य-निर्धारण—अभिक्रमों के निर्माण में उद्देश्य-निर्धारण बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है। अभिक्रमों के निर्माण से पूर्व उद्देश्यों का निर्धारण आवश्यक रूप से कर लेना होता है क्योंकि अभिक्रम के द्वारा इन्हीं उद्देश्यों को प्राप्त करने के प्रयास किये जाते हैं। इन उद्देश्यों से ही अभिक्रम के इरादों का पता चलता है और यही उद्देश्य अभिक्रम के स्तर का निर्धारण करते हैं। यहाँ उद्देश्यों का निर्धारण सदैव व्यवहार परिवर्तन के सन्दर्भ में किया जाता है। अतः केवल ज्ञानात्मक कौशलात्मक आदि कहने से काम नहीं चलता है, उद्देश्य स्पष्टीकरण के साथ हों।

(4) कसौटी परीक्षण का निर्माण—कसौटी परीक्षण के द्वारा हम यह पता करते हैं कि छात्र ने व्यवहारगत उद्देश्यों को प्राप्त कर लिया है अथवा नहीं। यह हमारे अभिक्रम

आवश्यकताओं के प्रकार—आवश्यकतायें तीन प्रकार की होती है— आरामदायक तथा विलासितापूर्ण। जो वस्तुयें जीवन की रक्षा तथा रखरखाव ... अनिवार्य होती है उनकी आवश्यकता.................होती है।

अनिवार्य आवश्यकता—भोजन, मकान एवं कपड़ा हमारे जीवन के लिए ... अतः इनकी आवश्यकता.................आवश्यकता कहलायेगी।

अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति जीवन की.................के लिए अनिवार्य ...

आरामदायक आवश्यकताएँ—हमारी कुछ आवश्यकताएँ जीवन को आरामदायक बनाने हेतु होती हैं। इस प्रकार की आवश्यकतायें.................कहलाती हैं। आरा...

स्वादिष्ट भोजन, सुन्दर मकान तथा कीमती कपड़े हमें आराम देते हैं ... इनकी आवश्यकता.................आवश्यकता कहलायेगी।

(आराम...)

आरामदायक आवश्यकतायें हमारे शरीर को स्वस्थ रखती हैं तथा का... बढ़ाती हैं, इसलिए इन आवश्यकताओं की पूर्ति से हमारी.................बढ़ती है। (का...)

विलासितापूर्ण आवश्यकता—कुछ आवश्यकताओं की पूर्ति हम विलासपूर्ण ... व्यतीत करने के लिए करते हैं। इनको हम.................आवश्यकतायें कहते हैं।

(विला...)

एक अध्यापक अपना विलासी जीवन व्यतीत करने हेतु कार, फ्रिज आदि ... है। इनकी आवश्यकता उसके लिए.................है।

(विला...)

एक प्रसिद्ध डॉक्टर के लिए आरामदायक है अध्यापक के लिए विला... इसलिए एक चीज किसी के लिए.................तो दूसरे के लिए.................हो सकती है।

(आरामदायक/विला...)

4. दूरदर्शन पर शिक्षण
(TEACHING ON TELEVISION)

आधुनिक युग में दूरदर्शन का शिक्षण के क्षेत्र में व्यापक तथा सफल प्रयोग हो ... है। शिक्षण के क्षेत्र में दूरदर्शन का प्रयोग सामान्यतः दो रूपों में पाया जाता है। प्र... रूप में इसका विशिष्ट प्रयोग उन बड़े एवं आर्थिक रूप से सम्पन्न विद्यालयों में देखने ... मिलता है। जहाँ एक ही विषय की कई कक्षाएँ एक साथ पृथक्-पृथक् कमरों में च... हैं। यहाँ विद्यालय के पास दूरदर्शन कैमरा होते हैं। किसी कक्ष में एक अध्यापक छा... को पढ़ाता है तथा दूसरे कमरों में टेलीविजन पर टेलीविजन कैमरा के माध्यम ... शिक्षण-कार्य किया जाता है। यहाँ केवल एक कमरे में शिक्षक शिक्षण करता है जिस... प्रसारण दूसरे कमरों में टेलीविजन पर किया जाता है। इन कमरों में बैठे छा... टेलीविजन के माध्यम से अध्ययन करते हैं।

दूरदर्शन-शिक्षण के दूसरे रूप में देश के दूरदर्शन केन्द्र विद्वान एवं कुश... अध्यापकों से पाठ तैयार कराकर या उनके वास्तविक शिक्षण को ही एक निश्चित स... दूरदर्शन पर प्रसारित करते हैं, जिसे राष्ट्र के या प्रदेश के विद्यालयों में प्रदर्शित कि... जाता है। इस प्रकार की व्यवस्था में अपेक्षाकृत बहुत ही कम आर्थिक साधनों ... आवश्यकता पड़ती है। कार्यक्रमों का दूरदर्शन पर प्रसारण करने में जो भी व्यय होता ...

वह दूरदर्शन विभाग वहन करता है, विद्यालयों को केवल दूरदर्शन पर क्रम करने तथा बिजली आदि पर सामान्य व्यय करना पड़ता है।

वाणिज्य-शिक्षण दूरदर्शन की अपनी विशिष्ट उपादेयता है।

वाणिज्य-शिक्षण में दूरदर्शन के लिये प्रयोग बड़ी सरलता तथा सफलता के साथ किया जा सकता है। दूरदर्शन पर आर्थिक सिद्धान्तों, आर्थिक संगठनों तथा आर्थिक क्रियाकलापों पर वाद-विवाद, उनकी कार्यप्रणाली का प्रदर्शन तथा अनेक आर्थिक मुद्दों, तथ्यों तथा प्रत्ययों का स्पष्टीकरण उच्च कोटि के विद्वानों तथा शिक्षकों के द्वारा सफलतापूर्वक किया जा सकता है। दूरदर्शन के द्वारा विशिष्ट उद्योगों, खनिज क्षेत्रों, पशु धन, कृषि-सम्पदा आदि के सम्बन्ध में चित्रमय विवरण प्रस्तुत कर वाणिज्य शिक्षण को प्रभावी तथा मनोरंजक बनाया जा सकता है।

दूरदर्शन के उपयोग

वाणिज्य शिक्षण के लिये दूरदर्शन का प्रयोग करते समय कुछ आवश्यक बातें ध्यान में रखनी चाहिए, जैसे—

1. कार्यक्रमों का चयन

वाणिज्य शिक्षण के लिए दूरदर्शन कार्यक्रमों का चयन बड़ी सावधानी तथा सतर्कता से किया जाना चाहिए। इसके लिए निम्नांकित तथ्यों की ओर विशेष तौर पर ध्यान देना चाहिए—

(1) कार्यक्रम छात्रों के पाठ्यक्रम से प्रत्यक्ष रूप से सम्बन्धित हो।

(2) दूरदर्शन कार्यक्रमों की एक व्यापक तथा विस्तृत योजना बनाई जाय।

(3) कार्यक्रमों के लिये विभिन्न विद्वानों की भी सूची बनाई जाय।

(4) कार्यक्रमों को प्रसारित करने का निश्चित तथा सुविधाजनक समय निश्चित हो जिसकी जानकारी विद्यालय अधिकारियों तथा छात्रों को हो।

2. कार्यक्रमों की तैयारी

दूरदर्शन कार्यक्रमों की सफलता बहुत बड़ी मात्रा में इस बात पर निर्भर करती है कि इन कार्यक्रमों के लिए सम्बन्धित अधिकारियों ने किस स्तर की पूर्व तैयारियाँ की हैं। वाणिज्य शिक्षण के लिए दूरदर्शन कार्यक्रमों के प्रसारण के लिए यह आवश्यक है कि सभी प्रकार की आवश्यक तैयारियाँ पूरी कर ली जायें। दूरदर्शन कार्यक्रमों के प्रसारण की तैयारियों को हम मुख्य रूप से दो वर्गों में विभक्त कर सकते हैं—

(1) प्रसारण सम्बन्धी तैयारियाँ तथा (2) प्रसारण-ग्रहण करने से सम्बन्धित छात्रों की तैयारियाँ। जो भी कार्यक्रम प्रसारित होते हैं उनके प्रभावी प्रसारण के लिए भी आवश्यक तैयारियाँ कर ली जायें तथा आवश्यक संसाधन जुटा लिये जायें। इसी प्रकार छात्र भी आवश्यक कागज, कलम आदि लेकर दूरदर्शन के सम्मुख ऐसे स्थान पर बैठें जहाँ से वे सुविधापूर्वक देख व सुन सकें। यहाँ छात्रों की उत्सुकता तथा शंकाओं के समाधान करने की पूर्व-तैयारी कर लेनी चाहिये।

3. दूरदर्शन कार्यक्रमों का प्रस्तुतीकरण

वाणिज्य शिक्षण के लिये दूरदर्शन कार्यक्रमों के प्रसारण के समय आगे लिखी बातें ध्यान में रखनी आवश्यक हैं—

(1) विषय-वस्तु छात्रों के स्तर एवं पाठ्यक्रम के अनुसार हो।

(2) अधिक लम्बे कार्यक्रम प्रस्तुत न किये जायें। सामान्यतः एक कार्यक्रम चालीस मिनट की अवधि का होना चाहिये।

(3) दूरदर्शन सैट के सामने छात्रों के बैठने की समुचित, पर्याप्त तथा व्यवस्था होनी चाहिए।

(4) कमरे में जहाँ दूरदर्शन कार्यक्रमों का प्रसारण प्रदर्शित हो रहा है, प्रकाश की व्यवस्था हो।

(5) आवाज (Volume) ऐसा हो जिससे सभी छात्र सुविधापूर्वक सुन सकें।

(6) कार्यक्रम प्रसारण के समय कक्षा में वाणिज्य शिक्षक उपस्थित रहे जो की शंकाओं का समाधान करता जाय तथा कक्षा पर नियंत्रण भी रखे।

4. कार्यक्रमों का मूल्यांकन

दूरदर्शन कार्यक्रमों के मूल्यांकन की भी समुचित व्यवस्था हो जिससे इस कार्य की सफलता का पता चल सके तथा इन्हें और अधिक सफल बनाने के लिये प्रयास किये जा सकें।

दूरदर्शन शिक्षण से लाभ

वाणिज्य शिक्षण के क्षेत्र में दूरदर्शन प्रसारण बड़े उपयोगी हैं। इससे नीचे लिखे लाभ प्राप्त होते हैं—

(1) शिक्षण में सरसता, प्रभावकता तथा मनोरंजन आता है।

(2) छात्रों को प्रेरणा प्राप्त होती है।

(3) दूरदर्शन कार्यक्रम उच्च कोटि के विद्वानों के द्वारा तैयार किये जाते हैं।

(4) दूरदर्शन कार्यक्रमों में हम ऐसे दृश्य उपस्थित कर सकते हैं जो ज्ञान प्रदान करने में बड़े सहायक होते हैं, जैसे बाढ़ से हानियाँ, वनों से लाभ, की कार्य-प्रणाली आदि।

(5) इससे ज्ञान सम्बन्धी विस्तृत जानकारी प्राप्त होती है।

(6) दूरदर्शन से विषय से सम्बन्धित नवीनतम अन्वेषण तथा खोजों के सहज ही छात्रों तक पहुँचाये जा सकते हैं।

(7) एक ही साथ बहुत बड़ी संख्या में छात्रों को शिक्षण प्रदान किया जा सकता इससे समय, श्रम व साधनों की बचत होती है।

उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि वाणिज्य शिक्षण के लिए दूरदर्शन प्रसारण बड़े उपयोगी तथा लाभप्रद होते हैं।

5. कम्प्यूटर द्वारा शिक्षण
(TEACHING BY COMPUTER)

शिक्षा तथा शिक्षण के क्षेत्र में आज कम्प्यूटर की उपयोगिता सभी स्वीकार करते हैं। कम्प्यूटर की सहायता से शिक्षण व्यावहारिक, उपयोगी, रोचक तथा आधुनिक बनता है। कम्प्यूटर की उपयोगिता के कारण ही आज इसके शिक्षण की व्यवस्था छोटी कक्षाओं से ही प्रारम्भ की जाती है। माध्यमिक शिक्षा बोर्ड तथा विश्वविद्यालयों ने भी विभिन्न कक्षाओं के लिये कम्प्यूटर शिक्षा अनिवार्य कर दी है।

कम्प्यूटर से तात्पर्य
(MEANING OF COMPUTER)

कम्प्यूटर को सामान्य भाषा में पर्सनल कम्प्यूटर (Personal Computer—PC) कहा जाता है। यह एक ऐसा इलेक्ट्रॉनिक उपकरण है जो विभिन्न प्रकार की रचनाओं को एकत्रित कर उनका मुद्रण (Printing) कर सकता है या उनकी संख्या तथा विश्लेषण कर आवश्यक परिणाम देता है। उसे क्या करना है यह कम्प्यूटर को दिये गये कमाण्ड्स (आदेशों) पर निर्भर करता है। कम्प्यूटर में उपरोक्त विशेषताओं के अलावा एक विशेषता मेमोरी (Memory) की भी होती है। मैमोरी के कारण यह दी गई सूचनाओं, आदेशों तथा प्रदत्तों का संग्रहण (Store) करने की अद्भुत क्षमता रखता है। कम्प्यूटर को हम एक ऐसा यंत्र कह सकते हैं जिसमें उच्च स्तरीय संगणक (Calculator), टंकण-यंत्र (Type writer), टेलीविजन तथा मेमोरी का अनोखा संगम होता है।

इस अद्भुत संगम के कारण कम्प्यूटर मानव मस्तिष्क से कहीं अधिक तीव्रगति संगणना तथा विश्लेषण कर सकता है। इसके द्वारा की गई गणनायें न केवल तीव्र गति से होती हैं वरन् उनमें शुद्धता की मात्रा भी अधिक होती है। कम्प्यूटर द्वारा की गयी गणनाओं में त्रुटियों की सम्भावना नगण्य होती है।

कम्प्यूटर एक ऐसा उच्च स्तरीय संगणक (Calculator) है जो एक सामान्य कैलकुलेटर से कहीं अधिक बेहतर कार्य कर सकता है। साधारण कैलकुलेटर में तथ्यों का संग्रह करके रखने की क्षमता नही होती है। साथ ही सामान्य कैलकुलेटर में ग्राफ बनाने की क्षमता, त्रुटियों को शुद्ध करने की क्षमता, एनीमेशन तथा ध्वनि पैदा करने की क्षमता भी नहीं होती है। कैलकुलेटर की मदद से हम इलैक्ट्रॉनिक गेम्स खेल कर अपना मनोरंजन भी नहीं कर सकते हैं जबकि कम्प्यूटर में ये सभी सुविधायें उपलब्ध होती हैं।

कम्प्यूटर टाइप राइटर से भी बेहतर होता है क्योंकि यह कई भाषा में टाइप कर सकता है, कई प्रकार के अक्षर टाइप कर सकता है, अक्षरों को नार्मल, बोल्ड, इटालिक आदि रूप दे सकता है, ऊपर नीचे टाइप कर सकता है, अशुद्धियों को सरलता से एडिट कर दूर किया जा सकता है, इसके द्वारा निकाले गये प्रिन्ट अपेक्षाकृत अधिक साफ-सुथरे होते हैं तथा इससे एक ही प्रति की अनेक प्रतियाँ निकाली जा सकती हैं। टाइप राइटर ग्राफ आदि नहीं बना सकता जबकि कम्प्यूटर से यह सब कार्य सहज ही किये जा सकते हैं। उपरोक्त विवेचन से हमें कम्प्यूटर में निम्नांकित विशेषताएँ नजर आती हैं—

(1) तीव्र गति (High Speed) से गणना आदि करना।

(2) शुद्धता (Accuracy) से कार्य करना।

(3) सार्वभौमिकता (Versatility) के रूप में कार्य करना।

(4) संग्रह की क्षमता (Storage Capacity)।

(5) स्वचालन (Automation)।

(6) उच्च सक्षमता (High Degree of Deligency)।

नीचे इन्हीं छः विशेषताओं की संक्षिप्त व्याख्या की गई है—

(1) तीव्र गति (High Speed)—कम्प्यूटर एक सुन्दर कैलकुलेटर है जो बड़ी गति के साथ जटिल से जटिल समस्याओं की व्याख्या, दुरुह, कार्यों तथा संगणनाओं को सम्पन्न करने की क्षमता रखता है। कम्प्यूटर गणना करने के लिय सेकण्ड्स से भी कम

समय लेता है। उदाहरण के लिये कम्प्यूटर 20 अंकों वाली संख्या का जोड़ सेकण्ड (10^{-6} सेकण्ड) में करने की क्षमता रखता है। जिन गणनाओं को सम्पन्न करने में मनुष्य एक पूरा दिन लगाता है वे ही गणनायें कम्प्यूटर कुछ ही सेकण्ड्स में पूरा कर सकता है। कुछ गणनायें (जैसे कनालीकल सहसम्बन्ध ज्ञात करना) करना मनुष्य के वश में नहीं है, वे गणनायें कम्प्यूटर द्वारा सहज ही की जा सकती है।

(2) शुद्धता (Accuracy)—यदि मनुष्य कम्प्यूटर को कमाण्ड देने में त्रुटि न करे तो कम्प्यूटर द्वारा सम्पन्न की जाने वाली गणनाओं में शुद्धता पाई जाती है। यदि मनुष्य ठीक से कमाण्ड दें तथा कम्प्यूटर या उसके किसी अंग में कोई यांत्रिक खराबी न हो तो इसे इलैक्ट्रिकल उपकरण द्वारा त्रुटि करने की सम्भावना ही समाप्त हो जाती है। कम्प्यूटर गणनादि का कार्य पूरी शुद्धता के साथ करता है।

(3) सार्वभौमिकता (Versatility)—सार्वभौमिकता को हम यहाँ दो रूप दे सकते हैं—(1) इसके व्यापक उपयोग हो सकते हैं, तथा (2) कम्प्यूटर एक साथ कई कार्य करने की क्षमता रखता है। कम्प्यूटर विशेष योग्यता वाले व्यक्तियों के लिये पृथक्-पृथक् कार्य करने की क्षमता रखता है। वह पल-पल में विभिन्न कार्य कर सकता है, अभी हम कोई पत्र लिख रहे होते हैं तो अगले ही पल वेतन बनाने का कार्य भी कम्प्यूटर से कर सकते हैं। इतना ही नहीं कम्प्यूटर सामान्य मनोरंजन कार्यों से लेकर जटिल क्रियाओं तक को सार्वभौमिक रूप से हल कर सकता है।

(4) संग्रहण क्षमता (Storage Capacity)—कम्प्यूटर में तथ्यों तथा सूचनाओं का संग्रह कर सकने की क्षमता होती है। इसे सरल शब्दों में कह सकते हैं कि कम्प्यूटर के पास मेमोरी (Memory) होती है जो एक सामान्य कैलकुलेटर या टाइप राइटर में नहीं होती है। मनुष्य की तुलना में कम्प्यूटर की स्मरण-शक्ति (Memory) कहीं बहुत अधिक होती है। मनुष्य सामान्यतः पुरानी घटनाओं तथा सूचनाओं को कालान्तर में भूल जाता है किन्तु कम्प्यूटर ऐसा नहीं करता, वह बड़े लम्बे समय तक सूचनाओं को बनाये रखता है।

(5) स्वचालन (Automation)—कम्प्यूटर में एक बार तथ्य तथा सूचनायें आने के बाद कम्प्यूटर को जो निर्देश (कमाण्ड) दिये जाते हैं उन निर्देशों के अनुसार कम्प्यूटर स्वतः ही उस समय तक कार्य करते रहता है जब तक कि कार्य पूरा नहीं हो जाता। स्वचालन के कारण कम्प्यूटर को बार-बार कमाण्ड नहीं देने पड़ते हैं तथा कार्य करने की गति भी तेज रहती है।

(6) उच्च सक्षमता (High Degree of Deligency)—कम्प्यूटर एक ऐसा इलेक्ट्रॉनिक उपकरण है जो लम्बे समय तक लगातार कार्य कर सकता है। सामान्य अन्य उपकरणों के समान यह गर्म नहीं होता, थकता नहीं है और एक ही प्रकार का कार्य करते-करते ऊबता नहीं है। साथ ही लम्बे समय तक कार्य करते रहने पर भी इसके द्वारा सम्पन्न किये गये कार्यों की शुद्धता पर भी कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता है।

कम्प्यूटर की उपयोगिता
(UTILITY OF COMPUTERS)

आज के युग में कम्प्यूटर का महत्त्व बहुत ही अधिक बढ़ गया है। जीवन के हर क्षेत्र में आज किसी न किसी रूप में कम्प्यूटर का उपयोग हो रहा है। कम्प्यूटर के विभिन्न क्षेत्रों में हो रहे अनुप्रयोगों को आगे परिचयात्मक रूप में प्रस्तुत किया गया है-

(1) व्यापार के क्षेत्र में (In Business)—व्यापार तथा व्यवसाय के क्षेत्र में आज कम्प्यूटरों का व्यापक प्रयोग हो रहा है। व्यापार के क्षेत्र में कम्प्यूटर का प्रवेश सन् 1954 में ही हो गया था। आज अनेक सॉफ्टवेयर व्यवसाय, व्यापार, एकाउण्ट्स आदि के क्षेत्र के लिये उपलब्ध हैं। इनके उपयोग से कार्यालय प्रबन्धन में सरलता आई है, अनेक व्यावसायिक कार्य तुरन्त ही किये जा सकते हैं, अनेक प्रकार की व्यावसायिक सूचनायें मात्र कुछेक 'की' (Key) दबाने से ही प्राप्त हो जाती हैं। वेतनों का निर्धारण, वेतन बिल बनाना, उनका सभी प्रकार का हिसाब रखना बड़ा ही सरल व सुगम हो गया है। व्यापार का उत्पादन, व्यय, लाभ आदि कम्प्यूटर की सहायता से सहज ही ज्ञात किये जा सकते हैं। आज हम कम्प्यूटर की सहायता से विभिन्न प्रकार के व्यावसायिक प्रोफार्मा, विवरणिका, सूचीयन, सारणी योग तथा अन्य गणनायें सेकण्डों में कर मकते हैं। इतना ही नहीं कम्प्यूटर की मेमोरी में अनेक प्रकार की सूचनायें डाल कर हम आवश्यकता पड़ने पर भविष्य में इनका उपयोग कर सकते हैं। व्यवसाय, उनके किसी अंग, प्रणाली या व्यवस्था में होने वाले परिवर्तनों का हम कम्प्यूटर की सहायता से सहज ही पता लगा सकते हैं।

कम्प्यूटर की सहायता से हम विभिन्न प्रकार के एकाउण्ट केश बुक लेजर पी. एण्ड एल., एकाउन्ट, बैलेन्स शीट, सेल्स रजिस्टर, परचेज बुक तथा बैंक विवरण सहजता तथा शुद्धता एवं गति के साथ तैयार कर सकते हैं। पुस्तपालन के रख-रखाव के लिये अनेक सोफ्टवेयरों का विकास हो चुका है। टेली (Tally) एक ऐसा ही सोफ्टवेयर है जो पुस्तपालन के लिये अत्यन्त ही उपयोगी है। टेली (Tally) सोफ्टवेयरों के ज्ञान से छात्र साधारण प्रविष्टियों से लेकर अत्यन्त ही क्लिष्ट तथा उच्च स्तरीय खाते तैयार कर सकता है।

पुस्तपालन के अलावा टकण-कार्य के लिये भी कम्प्यूटर बड़ा उपयोगी है। यह साधारण टंकण-यंत्र से कई दृष्टिकोणों से श्रेष्ठ है जैसे—

(1) साधारण टंकण में हम अक्षर के साइज तथा आकार नहीं बदल सकते हैं जबकि कम्प्यूटर के द्वारा टंकण करते समय हम अक्षरों (Fonts) का आकार तथा प्रकार बदल सकते हैं।

(2) कम्प्यूटर द्वारा किया जाने वाला टंकण, अपेक्षाकृत साधारण टंकण से कहीं अधिक सुन्दर होता है।

(3) मानीटर के स्क्रीन पर ही सभी त्रुटियों को शुद्ध करके सही मुद्रण संभव है जबकि साधारण टंकण में काट-छाँट करनी पड़ती है।

(4) कम्प्यूटर द्वारा टंकण कार्य शीघ्रता से करना सम्भव है।

(5) इससे विविध भाषाओं में एक साथ टंकण सम्भव है।

(6) कम्प्यूटर में स्मृति होने से टंकण कार्य और भी सुगम हो जाता है।

(7) कम्प्यूटर से एक्सेल (Excel) साफ्टवेयर से ग्राफ, रेखाचित्र, सारणी आदि सफलता से बन जाते हैं।

(8) कम्प्यूटर गणनायें (Calculation) भी सरलता से कर सकता है।

अतः वाणिज्य शिक्षण में कम्प्यूटर की उपयोगिता दिनोंदिन बढ़ती जा रही है।

कम्प्यूटर के प्रयोग ने बैंकों के कार्य को भी सुगम व सरल बना दिया है। एक बटन दबाते ही किसी ग्राहक के खाते का पूरा चित्र हमारे सामने आ जाता है। बैंक के

12

वाणिज्य-शिक्षण की सहायक सामग्री

(AIDS OF TEACHING COMMERCE)

"Visual divices of many kinds may serve in making the abstract con... and in arousing interest in studies that would otherwise be unreal and d...
—Bining and Bin...

परम्परागत शिक्षा का आधार पुस्तकें तथा अध्यापक द्वारा प्रदत्त भाषण हो... इसमें छात्र कक्षा में एक निष्क्रिय श्रोतामात्र रह जाता था, उसे पुस्तकों में छपे काले-क... अक्षरों में रुचि लेनी पड़ती थी, परन्तु ये छात्र को विशेष कुछ कहने में असमर्थ होते... ये अक्षर छात्र को प्रभावपूर्ण रूप से कुछ सिखलाने में असक्षम माने जाते हैं। इन कार... से प्रसिद्ध शिक्षाविदों ने परम्परागत शिक्षा के विरुद्ध आवाज उठाई एवं शिक्षा को पुस्त... एवं रटे-रटाये भाषणों की चहारदीवारी से बाहर करने का प्रयास किया।

आधुनिक शिक्षा विचाराधाराओं के अनुसार बालक सक्रिय होकर शिक्षा प्राप्त कर... है। यथार्थ में ज्ञानेन्द्रियाँ ज्ञानार्जन के मुख्य द्वार होती हैं अतः इन्हें सक्रिय रखने... लिए अनेक विधियों, रीतियों व साधनों का उपयोग किया जाता है। ये विभिन्न साध... ही शिक्षण की सहायक सामग्री कहलाते हैं। दूसरे शब्दों में वे सामग्रियाँ जो शिक्षा क... सरल, सुगम, आकर्षक, हृदयग्राही तथा बोधगम्य बनाती हैं शिक्षा की सहायक सामग्... कहलाती हैं।

शैक्षिक सामग्रियों की सहायता से अमूर्त, जटिल एवं सूक्ष्म बातों को मूर्त, सरल... बनाकर पाठ को अधिक क्रियात्मक एवं व्यावहारिक बनाया जाता है। वाणिज्य एक... प्रायोगिक विषय है इस विषय का विषय क्षेत्र अपने में टंकन, आशुलिपि, बुक-कीपिंग... बैंकिंग, व्यापार पद्धति आदि को अपने में समेटे हुए है, उपरोक्त सभी विषय क्षेत्रों को... स्पष्ट व व्यावहारिक बनाने हेतु अनेकानेक सहायक सामग्रियों की आवश्यकता होती है।

वाणिज्यशास्त्र शिक्षण की सहायक सामग्री

(AIDS OF TEACHING COMMERCE)

वाणिज्यशास्त्र शिक्षण में उपयोग होने वाली सहायक सामग्रियों का विभाजन निम्न प्रकार किया जा सकता है—

(1) परम्परागत सहायक सामग्री (Traditional Aids)
(2) प्रदर्शनात्मक सहायक सामग्री (Visual Aids)

(3) श्रव्य साधन (Audio Aids)
(4) श्रव्य-दृश्य सामग्री (Audio-visual Aids)
(5) अन्य सहायक सामग्री (Other Aids)

परम्परागत सहायक सामग्री

(TRADITIONAL AIDS)

(अ) श्यामपट—शिक्षण कला में श्यामपट का प्रयोग अति प्राचीन काल से होता चला आ रहा है और आज भी बड़े व्यापक रूप से न केवल परम्परागत विद्यालयों में अपितु सभी प्रगतिशील विद्यालयों में भी श्यामपट का स्थान अति महत्त्वपूर्ण है। अध्यापक को श्यामपट की अनेक स्थानों पर आवश्यकता पड़ती है। अध्यापक रेखाचित्र बनाने, ग्राफ बनाने, ऑकड़े लिखने व अन्य कार्यों हेतु श्यामपट का प्रयोग कर पाठ को सरल, सुगम, बोधगम्य तथा आकर्षक बना सकता है। अध्यापक प्रायः निम्नांकित कार्यों के लिए श्यामपट का प्रयोग कर सकता है—

(1) रेखाचित्र, ग्राफ, मानचित्र आदि बनाने हेतु।
(2) छात्रों का ध्यान आकर्षित करने हेतु।
(3) प्रमुख तथ्यों का उल्लेख करने हेतु।
(4) छात्रों से अभ्यास कराने हेतु।
(5) उदाहरण देने हेतु।
(6) छात्रों की दृश्य शक्ति का उपयोग करने हेतु।

शिक्षण कार्य में श्यामपट का अनेक स्थलों पर बड़े लाभप्रद रूप में प्रयोग किया जा सकता है, किन्तु श्यामपट के प्रयोग से ये लाभ तभी प्राप्त हो सकते हैं जब श्यामपट का प्रयोग उचित प्रकार से किया जाय। वाणिज्य के अध्यापकों को श्यामपट का प्रयोग करते समय प्रायः निम्नांकित बातों की तरफ ध्यान रखना चाहिए—

(1) श्यामपट ऐसे स्थान पर रखा जाय जहाँ से सभी छात्र श्यामपट को सुविधापूर्वक देख सकें।

(2) श्यामपट पर पर्याप्त प्रकाश हो परन्तु प्रकाश का परावर्तन (Reflection) नहीं होना चाहिए।

(3) श्यामपट पर जो भी लिखा जाय, सीधी पंक्ति में लिखा जाय।

(4) श्यामपट पर जो भी लिखा जाय स्पष्ट व साफ शब्दों में हो।

(5) लिखते समय कक्षानुशासन का विशेष ध्यान रखा जाय।

(6) श्यामपट का आवश्यकता से अधिक प्रयोग नहीं किया जाय।

वाणिज्यशास्त्र का शिक्षक श्यामपट का प्रयोग निम्न बातों के लिए कर सकता है—

(1) व्यापार पद्धति में बीजक तथा बिक्री विवरण के प्रश्नों को बतलाने, उनके खानों को खींचने, डेबिट तथा क्रेडिट नोटों को समझाने, चैक, बिल, हुण्डी, बैंक ड्राफ्ट आदि को बनाने व बतलाने के लिये।

(2) पुस्तपालन तथा लेखाक्रम में विभिन्न पुस्तकों का उपयोग, लैजर, रोकड़ पुस्तक में प्रविष्टियाँ करना सिखाने के लिये।

(3) वाणिज्य अर्थशास्त्र में ग्राफ-तालिकाएँ बनाने के लिए, माँग पूर्ति के चित्र अंकित करने के लिए।
(4) वाणिज्य भूगोल में चित्र-मानचित्र-तालिकाएँ आदि बतलाने के लिए।
(5) टंकन एवं आशुलिपि में संकेतों को समझाने हेतु।
(6) महत्त्वपूर्ण प्रश्नों के उत्तर के लिये।
(7) कक्षा कार्य या गृह कार्य देने के लिये।

(ब) तालिकाएँ (Tables)—वाणिज्यशास्त्र शिक्षण में तालिकाओं का विशेष है। इसमें विभिन्न वस्तुओं से सम्बन्धित आँकड़े व वस्तु की मात्रा को दर्शाने आवश्यकता पड़ती है। व्यापार संगठन में पंचवर्षीय योजनाओं में उद्योग-कृषि-व्यापार ब्यौरा देने के लिए अध्यापक को आँकड़े तालिकाओं द्वारा ही बतलाने पड़ते हैं। प्रयोग तुलनात्मक अध्ययन में विशेष सहायक होता है। वाणिज्य अर्थशास्त्र में तालिकाओं का विशेष महत्त्व होता है। तालिकाओं के द्वारा हर स्तर का छात्र वर्षानुसार प्रगति, लाभ-हानि की जानकारी आसानी से प्राप्त कर सकता है।

(स) पत्रिकाएँ (Journals and Magazines)—वाणिज्यशास्त्र के शिक्षण में पत्र-पत्रिकाओं का भी विशेष महत्त्व है। बाजार समाचार व बाजार समीक्षा पढ़ाते समय पत्र-पत्रिकाओं की बड़ी उपयोगिता रहती है। ये बाजार की स्थिति व अग्रिम स्थिति की भी जानकारी प्रदान करते हैं। ये न केवल देश की आर्थिक एवं व्यापारिक नीति की जानकारी प्रदान करते हैं अपितु अन्तर्राष्ट्रीय बाजार की स्थिति व अनुसन्धानों से भी परिचित कराते हैं।

प्रदर्शनात्मक सामग्री
(VISUAL AIDS)

प्रदर्शनात्मक सामग्री वे सामग्रियाँ हैं जिसे अध्यापक छात्रों के सम्मुख प्रदर्शित करके पाठ को आकर्षक एवं हृदयग्राही बनाने की चेष्टा करता है। इस प्रकार की सहायक सामग्री में हम विभिन्न प्रकार के चित्र, मानचित्र, ग्राफ, चार्ट, रेखाचित्र, प्रतिरूप आदि सम्मिलित करते हैं। नीचे इनके प्रयोग के सम्बन्ध में उपयोगी बातों का उल्लेख किया गया है—

(अ) प्रतिरूप (Model)—वाणिज्य शिक्षण में प्रतिरूपों का बड़ा महत्त्व है, प्रतिरूप का महत्त्व छोटी कक्षाओं में और भी अधिक है। जिन वस्तुओं को कक्षा में वास्तविक रूप में नहीं दिखाया जा सकता है या जो वास्तविक रूप में उपलब्ध नहीं हो तो उनका प्रतिरूप कक्षा में प्रदर्शित किया जा सकता है। मॉडल में वस्तु के भाग भी प्रदर्शित किये जा सकते हैं, जो मूल वस्तु में दिखाई नहीं देते हैं। वाणिज्य में अध्यापक कई मशीनों का मॉडल प्रदर्शित कर सकता है।

शिक्षक को प्रतिरूप के प्रयोग के सम्बन्ध में निम्न बातों को ध्यान में रखना चाहिए—
(1) प्रतिरूप वास्तविक वस्तु से मिलता-जुलता होना चाहिए।
(2) समय से पूर्व प्रतिरूप को कक्षा में प्रदर्शित नहीं करना चाहिए।
(3) प्रतिरूप के वे अंग अवश्य रखे जायें जो वास्तविक वस्तु में अधिक महत्त्वपूर्ण होते हैं।

(4) प्रतिरूप की बाह्य रचना एवं सज्जा वास्तविक रूप के अनुरूप हो।
(5) प्रतिरूप आकर्षक होना चाहिए।
(6) प्रतिरूप को कक्षा में ऐसे स्थान पर रखा जाय। जहाँ से सभी छात्र उसे आसानी से देख सकें।
(7) अध्यापक को प्रतिरूप के अंग एवं कार्यों का सरल, स्पष्ट तथा पर्याप्त भाषा से छात्रों को समझाना चाहिए।

(ब) चित्र (Picture)—यदि प्रतिरूप उपलब्ध न हो तो अध्यापक चित्र प्रदर्शित करके विषय-वस्तु को स्पष्ट कर सकता है। चित्र कक्षा के सम्मुख उस समय ही प्रदर्शित किये जाते हैं, जब मूल वस्तु तथा उसका प्रतिरूप कुछ भी उपलब्ध न हो। ये छात्रों की तर्कशक्ति व चिन्तन शक्ति को भी विकसित करते हैं। वाणिज्य में अनेक मशीनों के प्रतिरूप नहीं दिखाये जा सकते हैं, अतः चित्र का प्रदर्शन आवश्यक हो जाता है।

चित्रों से लाभ
(1) चित्र विषय-वस्तु को आकर्षक व रोचक बनाते हैं।
(2) चित्रों द्वारा अर्जित ज्ञान अधिक स्थायी होता है।
(3) चित्र छात्रों के ज्ञान को विषय वस्तु में केन्द्रित करते हैं।
(4) चित्र वास्तविकता के अधिक नजदीक होते हैं।

प्रयोग (Uses)—चित्रों का प्रयोग करते समय निम्न बातों को विशेष रूप से ध्यान में रखा जाये—
(1) चित्र आकर्षक हों किन्तु चटकीले न हों।
(2) चित्र छात्रों की आयु के अनुसार हों।
(3) चित्रों के आकार कक्षा के आकार के अनुसार हों।
(4) चित्र यथासमय प्रस्तुत किये जायें, कार्य पूरा होते ही हटा लिए जायें।

(स) मानचित्र (Maps)—देश के विभिन्न राज्यों, पड़ौसी देशों की स्थिति और विश्व के देशों की स्थिति का बोध करने के लिए मानचित्र का प्रयोग किया जाता है। इनका व्यापक रूप से प्रयोग नहीं किया जा सकता है। जहाँ भी इनका प्रयोग करना हो सावधानी से इनका प्रयोग करना चाहिए। इनका प्रयोग करते समय निम्न सावधानियाँ रखनी चाहिए—
(1) मानचित्र में शुद्धता एवं स्थान का विशेष ध्यान रखा जाय।
(2) मानचित्र कक्षा के आकार के अनुसार हो।
(3) मानचित्र स्पष्ट हो।
(4) मानचित्र में पैमाना दिया होना चाहिए।
(5) मानचित्र पर छात्रों से कार्य कराया जाये।
(6) मानचित्र का प्रयोग आवश्यकता होने पर ही किया जाय, उपयोग के बाद हटा दिया जाये।
(7) मानचित्र को उपयुक्त स्थान पर लटकाया जाये।

(द) ग्राफ रेखाचित्र रेखाकृति एवं चार्ट (Graph Sketches, Diagrams and Charts)—वाणिज्य का अध्यापक वाणिज्यिक अर्थशास्त्र, आर्थिक भूगोल आदि उपविषयों

के अध्यापन के समय ग्राफ का उपयोग सांख्यिकी में करता है तथा
अध्यापक रेखाचित्रों द्वारा सरलता से समझा सकता है। वाणिज्य
रेखाचित्र, रेखाकृति एवं चार्ट का विशेष महत्त्व है। इनका उपयोग करते
को निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखना चाहिए—

(1) ग्राफ एवं चार्ट का प्रयोग छोटी कक्षाओं में नहीं करना चाहिए।
(2) ग्राफ को बनाते समय नियमों को ध्यान में रखना चाहिए।
(3) रेखाचित्र एवं रेखाकृति कक्षा के आकार के अनुरूप हो।
(4) सभी चीजें स्पष्ट एवं सरल हों।
(5) ग्राफ का पैमाना स्पष्ट होना चाहिए।

श्रव्य साधन
(AUDIO AIDS)

(अ) रेडियो—वर्तमान युग में रेडियो का प्रयोग शिक्षा के क्षेत्र में भी दिनोंदि
रहा है। आकाशवाणी केन्द्र विभिन्न स्तरों के छात्रों के लिए विभिन्न प्रकार के
कार्यक्रम प्रस्तुत करते हैं। आकाशवाणी से समय-समय पर बजट सम्बन्धी,
सम्बन्धी वार्ता प्रसारित होती रहती है। इन कार्यक्रमों द्वारा छात्र तथा शिक्षक दोनों
ही ज्ञान प्राप्त होता है तथा उनका दृष्टिकोण विशाल होता है।

गुण—वाणिज्य-शिक्षण में रेडियो की उपयोगिता निम्न प्रकार से है—

(1) रेडियो द्वारा देश की आर्थिक नीति, आयात-निर्यात नीति का बोध कराना
(2) विकास योजनाओं व आर्थिक नीति की जानकारी देना।
(3) बाजार भाव व समीक्षा की जानकारी देना।
(4) ग्रामीण ऋण व औद्योगिक ऋण की जानकारी देना।
(5) कृषि, खनिज, उद्योगों से परिचित कराना।
(6) इन कार्यक्रमों से छात्र व शिक्षक दोनों के ही दृष्टिकोणों में विशालता
है।
(7) योग्य व्यक्तियों की विचारधाराओं से छात्र नवीनतम विचारों से अवगत
है।
(8) कार्यक्रम मनोवैज्ञानिक विधि से प्रस्तुत किये जाते हैं। फलतः अत्यन्त
एवं बोधगम्य होने चाहिए।
(9) रेडियो से एक ही समय में बहुत बड़े समुदाय को शिक्षा प्रदान की जा
है।
(10) रेडियो कार्यक्रम कक्षा शिक्षण की कमियों को पूरा करते हैं।
(11) रेडियो कार्यक्रम राष्ट्रीय शिक्षा में एकता लाते हैं।

कुछ सुझाव (Some Suggestions)

रेडियो द्वारा शिक्षा प्रदान करना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है किन्तु इतना महत्त्वपूर्ण
हुए भी इसकी कुछ सीमाएँ हैं जैसे जिज्ञासा होने पर प्रश्न नहीं पूछ सकते हैं, प्रस
को दोहराया नहीं जा सकता है। मौसम की खराबी में प्रसारण अस्पष्ट हो जाता

प्रसारण का समय विद्यालय समय से मेल नहीं खाता है। इन कमियों को दूर करने के लिए निम्न सुझावों को ध्यान में रखना चाहिए—

(1) रेडियो कार्यक्रम के सम्बन्ध में पूर्ण जानकारी आकाशवाणी केन्द्र से प्राप्त कर ली जाय।
(2) रेडियो कार्यक्रम के लिए छात्रों में पूर्ण रुचि जाग्रत की जाय।
(3) छात्रों के बैठने की सुव्यवस्था की जाय।
(4) अच्छे रेडियो की व्यवस्था हो।
(5) कार्यक्रम के अन्त में वाद-विवाद या अन्य विधि से कार्यक्रम की विवेचना की जाय।
(6) रेडियो कार्यक्रम से छात्र कितने लाभान्वित हुए इसका मूल्यांकन किया जाय।

(ब) टेपरिकॉर्डर—टेपरिकॉर्डर का भी वाणिज्य-शिक्षण में विशेष महत्त्व है। कुछ सीमा तक उसका प्रयोग वाणिज्य-शिक्षण में किया जाना चाहिए। रेडियो का उपयोग प्रत्येक समय सम्भव नहीं, जब छात्र खेलकूद या परीक्षा में व्यस्त हों इन कार्यक्रमों को टेप करके रखा जा सकता है तथा आवश्यकतानुसार छात्रों को सुनाया जा सकता है। टेपरिकॉर्डर रेडियो प्रसारण के दोषों को पर्याप्त मात्रा में सुधार सकता है।

श्रव्य-दृश्य सामग्री
(AUDIO-VISUAL AIDS)

श्रव्य-दृश्य सामग्री वह सामग्री है जिसका देखने एवं सुनने दोनों में उपयोग होता है। शैक्षिक दृष्टिकोण से इस प्रकार की सामग्री अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। क्योंकि यह सामग्री हमारी मानसिक शक्तियों को दो प्रकार से प्रभावित करती है—देखकर एवं सुनकर। मस्तिष्क पर इसका प्रभाव अधिक समय तक स्थायी रहता है। क्योंकि ये सामग्रियाँ आँखें व कान में समन्वय स्थापित करती हैं। इस प्रकार की सामग्री में प्रमुख रूप से चलचित्र तथा टेलीविजन को सम्मिलित करते हैं।

(अ) चलचित्र—शिक्षा में चलचित्रों का बड़ा महत्त्व एवं उपयोगिता है। चलचित्रों में छात्र व्यक्तियों को वास्तविक परिस्थितियों में कार्य करते हुए देखते हैं। चलचित्रों से अनेक ऐसी वस्तुएँ दिखलाई जाती हैं जो अन्य किसी विधि से नहीं दिखलाई जा सकती हैं। चलचित्रों के द्वारा सुदूर एवं पूर्व की शताब्दियों से सम्बन्धित ज्ञान सहज ही प्रदान किया जा सकता है। चलचित्रों से शिक्षण कार्य में उपलब्ध लाभों को निम्न प्रकार से अंकित कर सकते हैं—

(1) चलचित्रों में गति होती है और गति में तारतम्यता होती है फलतः ज्ञान में भी तारतम्यता लायी जा सकती है।
(2) कई वस्तुओं को अन्य साधनों से उतने प्रभावपूर्ण ढंग से प्रस्तुत नहीं कर सकते हैं जितनी सरलता व सहजता से चलचित्रों से प्रस्तुत कर सकते हैं।
(3) चलचित्र छात्रों को वास्तविकता का बोध कराते हैं।
(4) चलचित्रों की गतिशीलता छात्रों के ध्यान को आकर्षित कर लेती है।
(5) चलचित्र सामान्य बुद्धि व मन्द बुद्धि छात्रों के लिए उपयोगी हैं।

चलचित्र-शिक्षण के सोपान

जेरोलिमिक ने अपनी पुस्तक में चलचित्रों के प्रदर्शन करने के सम्बन्ध में सोपानों का वर्णन किया है—

1. स्वयं की तैयारी

(1) चलचित्र का चयन करें।
(2) चलचित्र के स्तर को देखें।
(3) चलचित्र की विषय-वस्तु का पूर्वाध्ययन करें।
(4) प्रदर्शन की योजना बनायें।
(5) उपलब्ध हो तो फिल्म गाइड प्रयोग करें।
(6) चलचित्र पाठों को सुरक्षित रखें।

2. कक्षा-कक्ष की तैयारी

(1) शीर्षकादि श्यामपट पर लिखें।
(2) सज्जा को व्यवस्थित करें।
(3) बैठने की व्यवस्था को देखें।

3. कक्षा की तैयारी

(1) चलचित्र की आवश्यकता बतायें।
(2) प्रेरित करें।
(3) असाधारण शब्दों का अध्ययन करें।
(4) मुख्य बिन्दुओं का उल्लेख करें।
(5) छात्रों के प्रश्नों को लिखें।

4. चलचित्र प्रदर्शन

(1) एक अध्यापक, एक कक्षा, एक चलचित्र।
(2) प्रकाश केन्द्रित करें।
(3) ध्वनि स्तर देखें।
(4) टूट-फूट देखें।

5. निष्कर्ष एवं अनुगमन

(1) छात्रों एवं शिक्षक के प्रश्नों का विवेचन करें।
(2) अनुगमन क्रियायें करें।
(3) नाटकीयकरण करें।
(4) अनुसन्धान करें।
(5) निष्कर्षों का मूल्यांकन करें।

(आ) टेलीविजन—टेलीविजन रेडियो का ही एक सुधारा हुआ रूप है। इस प्रकार टेलीविजन का उसी प्रकार उपयोग किया जा सकता है जैसे रेडियो का। अन्तर केवल इतना है कि रेडियो यदि दिखलाई नहीं दे तो कोई बात नहीं पर टेलीविजन ऐसे स्थान

पर रखा जाय जिससे उसे सब देख सकें। टेलीविजन के आगामी भाग पर एक पर्दा लगा रहता है जिस पर कार्यक्रम प्रस्तुत करने वालों के चित्र भी आते रहते हैं। इसकी वार्ताएँ अधिक प्रभावकारी होती हैं।

लाभ

(1) प्रतिदिन नये-नये कार्यक्रम प्रसारित होते हैं।
(2) कुछ विशेष बातों व क्रियाओं में यह अधिक उपयोगी होता है।
(3) इसमें दोनों ज्ञानेन्द्रियों कान, आँख को शिक्षण प्राप्त होता है।

अन्य सहायक सामग्रियाँ
(OTHER AIDS)

(1) शिक्षा यात्राएँ (Educational Excursions)—शिक्षा यात्राएँ बाह्य पाठ होते हैं। वाणिज्य के अध्ययन में व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए यात्राएँ अत्यन्त महत्वपूर्ण होती हैं। लोकसभा में बजट प्रक्रिया को दिखाया जा सकता है, औद्योगिक प्रतिष्ठानों के क्रियाकलापों का ज्ञान कराया जा सकता है। शैक्षिक यात्राओं में वास्तविक कार्य देखकर उनके सम्बन्ध में छात्र वास्तविक ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

शिक्षा यात्राओं से लाभ

(1) शिक्षा यात्राएँ छात्रों के अनुभव को बढ़ाती हैं।
(2) शिक्षा यात्राएँ प्रत्यक्ष अनुभव प्रदान करती हैं।
(3) नवीनतम ज्ञान प्रदान करती हैं।
(4) शिक्षा यात्राएँ वास्तविकता का बोध करती हैं।
(5) प्रत्यक्ष ज्ञान अधिक स्थायी होता है।
(6) शिक्षा यात्राएँ अत्यन्त रोचक तथा स्वस्थ वातावरण प्रदान करने वाली होती हैं।

शिक्षा यात्राओं का संचालन

(1) सर्वप्रथम यात्रा का उद्देश्य निर्धारित किया जाय।
(2) उचित स्थान का चयन किया जाय।
(3) यात्रा के लिए उचित अधिकारियों से पूर्वाज्ञा प्राप्त कीजिए।
(4) दिन व समय निर्धारित कीजिए।
(5) यात्रा-स्थल पर ठहरने, खाने-पीने की व्यवस्था पहले करनी चाहिए।
(6) प्रत्येक छात्र को एक-एक डायरी दी जाय।
(7) छात्रों को छोटे-छोटे समूहों में बाँटा जाय।
(8) छात्रों द्वारा अर्जित ज्ञान का विविध विधि से मूल्यांकन किया जाय।
(9) छात्रों की शंकाओं का यथाविधि निराकरण किया जाय।
(10) छात्रों की यात्रा का विस्तृत विवरण सफलता-असफलता की रिपोर्ट बनाकर संचित कर ली जाय जिससे आगे सावधानी रखी जा सके।

(2) निरीक्षण—वाणिज्यशास्त्र का अध्यापक छात्रों को अलग-अलग नगरों के कारखानों, औद्योगिक प्रतिष्ठानों, बैंकों का निरीक्षण करने व व्यावहारिक ज्ञान प्रदान

करने के लिए छात्रों को निरीक्षण हेतु ले जाता है। इससे छात्रों को व्यावहारिक ... प्राप्ति होती है। वाणिज्य के छात्रों को व्यापारिक प्रतिष्ठानों का ज्ञान आवश्यक ... वहाँ उन्हें लेजर, कैशबुक आदि का ज्ञान कराया जा सकता है। इसी प्रकार ... पोस्ट ऑफिस के कार्यों का भी निरीक्षण कराया जा सकता है। इस प्रकार ... छात्रों को सुगमता से प्राप्त हो जाता है तथा ज्ञान स्थायी भी रहता है।

(3) प्रदर्शनी (Exhibition)—वाणिज्य शिक्षण में विषय से सम्बन्धित प्रदर्शनी ... छात्रों को अच्छा ज्ञान प्रदान करती है। वाणिज्य अध्यापन में प्रदर्शनी का आयोजन ... समय निम्न बातों को विशेष ध्यान दिया जाय—

1. प्रदर्शनी में छात्रों द्वारा निर्मित वस्तुओं को प्रमुख स्थान दिया जाय।
2. प्रदर्शनी में रखी गई वस्तुएँ विषय से सम्बन्धित होनी चाहिए।
3. प्रदर्शनी में रखी वस्तुओं को समझाने का कार्य छात्रों को दिया जाय।
4. प्रदर्शनी की व्यवस्था में छात्रों से सहयोग प्राप्त किया जाय।
5. प्रदर्शनी में रखी वस्तुएँ उचित प्रकार सजाकर रखी जायें।

(4) सामुदायिक संसाधन (Community Resources)—शिक्षण में विविध सामुदायिक साधनों का अपना महत्त्व है। सामुदायिक साधन विषय से सम्बन्धित व्यावहारिक ... देने के सशक्त साधन हैं। वाणिज्य शिक्षण के लिये वैसे तो सभी सामुदायिक ... किसी न किसी रूप में उपयोगी हैं लेकिन निम्नांकित साधन वाणिज्य शिक्षण के ... विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण हैं—

(i) बैंक, (ii) बीमा, (iii) तारघर, (iv) पोस्ट ऑफिस, (v) बाजार, (vi) ... बाजार, (vii) कारखाने, (viii) मण्डियाँ, (ix) खानें (Mines), (x) व्यापारिक ... औद्योगिक संस्थान तथा संगठन, (xi) परिवहन केन्द्र, (xii) बन्दरगाह, (xiii) ... अड्डा, (xiv) दूरदर्शन, (xv) साइबर कैफे, (xvi) समाचार-पत्र कार्यालय, (xvii) ... उत्पादन घर, (xviii) बाँध, (xix) नदियाँ, (xx) वन, (xxi) वितरण केन्द्र, (xxii) सामुदायिक भ्रमण, आदि-आदि।

सामुदायिक साधनों का महत्त्व (Importance of Comments Resources)—वाणिज्य शिक्षण के लिये सामुदायिक साधन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यह महत्त्व निम्नांकित बिन्दुओं से स्पष्ट होता है—

1. सामुदायिक साधन वाणिज्य की व्यावहारिक शिक्षा देते हैं।
2. सामुदायिक साधन शिक्षण को रोचक तथा सरस बनाते हैं।
3. सामुदायिक साधन छात्रों को समुदाय के सम्बन्ध में नवीनतम सूचनायें देते हैं।
4. सामुदायिक साधन नये-नये अनुभव प्रदान करते हैं।
5. ये शिक्षण में नवाचार के रूप में कार्य करते हैं।
6. इनसे अनुशासनहीनता की समस्या का समाधान स्वतः ही हो जाता है।
7. ये 'करके सीखने' तथा 'स्वानुभव' के महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तों पर आधारित शिक्षा प्रदान करती है।
8. सामुदायिक साधन छात्रों को कक्षा-कक्ष के नीरस वातावरण से मुक्ति दिलाते हैं।

9. सामुदायिक साधन समुदाय की आर्थिक समस्याओं तथा स्थिति की सही जानकारी देते हैं।
10. सामुदायिक साधन व्यक्तिगत गुणों का विकास करते हैं।

वाणिज्य शिक्षण में सामुदायिक साधनों का प्रयोग दो प्रकार से किया जा सकता है।

1. विद्यालय के छात्रों को समुदाय के बीच ले जाकर तथा
2. समुदाय के व्यक्तियों को विद्यालय में बुलाकर उनसे समुदाय के सम्बन्ध में जानकारी छात्रों को प्रदान करना।

वाणिज्य शिक्षण के लिये विशिष्ट सहायक सामग्री

अब तक हमने ऐसी सहायक सामग्रियों का अध्ययन किया है जो वाणिज्य के अथवा अन्य विषयों के शिक्षण में भी सहायक होती हैं किन्तु कुछ सहायक सामग्री ऐसी भी हैं जो विशिष्ट रूप से वाणिज्य से सम्बन्ध रखती हैं, जैसे—

1. प्रतिलिपिकरण यंत्र (Duplicator)
2. चैक लेखक (Cheque writer)
3. नोट गणक (Note counter)
4. टेलीफोन (Telephone)
5. कम्प्यूटर तथा इन्टरनेट (Computer and Internet)
6. छेदक यंत्र (Punching machine)
7. कैलकुलेटर (Calculator)
8. तारीख डालने वाली मशीन (Date machine)
9. पुस्तकालय यंत्र (Book-keeping machine)
10. चैक रक्षक (Cheque protector)
11. डिक्टाफोन (Dictaphone)
12. फाइल केबिनेट (File cabinet)
13. पत्रमोड़क यंत्र (Folding machine)
14. पता लिखने की मशीन (Address writer)
15. समय रिकॉर्डर (Time recorder)
16. स्कैनर (Scanner) आदि-आदि।

अभ्यास-प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न

1. वाणिज्य शिक्षण में सहायक सामग्री के महत्त्व पर विस्तार से चर्चा कीजिये।
2. वाणिज्य शिक्षण में आप कौन-कौन सी शिक्षण-सामग्री प्रयोग कर सकते हैं ?
3. वाणिज्य शिक्षण में प्रदर्शनात्मक या दृश्य सामग्री के प्रयोग पर अपने विचार व्यक्त कीजिये।
4. वाणिज्य शिक्षण में कम्प्यूटर के उपयोग पर अपने विचार लिखिये (इस प्रश्न का उत्तर अध्याय 11 में मिलेगा)।

लघु उत्तरात्मक प्रश्न

1. वाणिज्य शिक्षण में चित्रों का प्रयोग करते समय किन-किन बातों को ध्यान रखेंगे ?
2. वाणिज्य शिक्षण में सामुदायिक साधनों के महत्त्व पर प्रकाश डालिये।
3. वाणिज्य शिक्षण में शैक्षिक भ्रमण के महत्त्व को लिखिये।
4. वाणिज्य शिक्षण में चलचित्र का प्रयोग करते समय किन-किन बातों को ध्यान रखेंगे ?
5. विशिष्ट रूप से वाणिज्य शिक्षण में काम आने वाले किन्हीं आठ यन्त्रों के नाम लिखिये।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. श्यामपट वाणिज्यशास्त्र शिक्षण की किस सहायक सामग्री के अन्तर्गत आता है ?
   (अ) श्रव्य-दृश्य सामग्री (ब) प्रदर्शनात्मक सहायक सामग्री
   (स) परम्परागत सहायक सामग्री (द) श्रव्य साधन
2. शिक्षा यात्राएँ आन्तरिक पाठ होते हैं ?
   (अ) सत्य (ब) असत्य
3. प्रदर्शनी में रखी गई वस्तुएँ विषय से सम्बन्धित होनी चाहिए—
   (अ) सत्य (ब) असत्य

उत्तर—1. (स) परम्परागत सहायक सामग्री। 2. (ब) असत्य। 3. (अ) सत्य।

13

वाणिज्य-विषय की पाठ्य-पुस्तक
(TEXT-BOOK OF COMMERCE)

परिवर्तित विचारधाराओं के अनुसार पाठ्य-पुस्तक उतनी महत्त्वपूर्ण नहीं समझी जाती है जितनी पिछले समय में समझी जाती रही है। आधुनिक विचारधाराओं से प्रभावित कुछ शिक्षाशास्त्री तो पाठ्य-पुस्तक के बिल्कुल विरोधी हैं। ये लोग विद्यालयों में किसी प्रकार की पाठ्य-पुस्तक प्रचलित न करने के पक्ष में हैं। अमेरिका में इस प्रकार की विचारधारा अधिक प्रचलित हुई है। पाठ्य-पुस्तक रहित विद्यालय स्थापित करने हेतु अमेरिका में अनेक प्रयोग हुए हैं किन्तु नवीन विचारधाराओं से प्रभावित शिक्षाविदों के लिए यह बात अत्यन्त दुर्भाग्य की निकली है कि अमेरिका में पाठ्य-पुस्तक रहित विद्यालय की स्थापना से सम्बन्धित हुए प्रयोगों का निष्कर्ष इन शिक्षाविदों की विचारधारा के विपरीत निकला। उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि विद्यालय जीवन से पाठ्य-पुस्तक निकाली जा सकती है। विद्यालयों में पाठ्य-पुस्तकों की क्या आवश्यकता व स्थान है ? इस प्रकार का अन्तर ज्ञात करने की भी भारत एवं अन्य देशों ने बड़ी चेष्टाएँ की हैं और इन चेष्टाओं के फलस्वरूप यह निष्कर्ष निकाले गये कि पाठ्य-पुस्तक विद्यालय जीवन में बड़ा महत्त्व रखती है। विद्यालयों में पाठ्य-पुस्तक की आवश्यकता निम्न प्रकार से स्पष्ट की जा सकती है—

(1) टेक्स्ट बुक कमेटी ऑफ सेन्ट्रल एडवाइजरी बोर्ड ऑफ एजूकेशन की रिपोर्ट के अनुसार वर्तमान शिक्षा-प्रणाली की पाठ्य-पुस्तक विहीन अवस्था की कल्पना ठीक वैसी ही है जैसे डेनमार्क के राजकुमार विहीन 'हेलमेट' की कल्पना करना है।

(2) छात्रों का मानसिक स्तर इतना ऊँचा नहीं होता है कि वे विद्यालय में पढ़ाई गयी विषय-वस्तु को एक ही बार में आत्मसात् कर सकें। उन्हें विषय-वस्तु को पुनः पढ़ना पड़ता है। उन्हें फिर कभी विषय-वस्तु को दोहराना पड़ता है। इन सब कार्यों के लिए पाठ्य-पुस्तक की आवश्यकता पड़ती है।

(3) शिक्षक तथा छात्रों दोनों का ही ज्ञान क्रमशः अव्यवस्थित एवं पर्याप्त होता है। शिक्षकों को ज्ञान को व्यवस्थित करने की आवश्यकता पड़ती है तथा छात्रों के ज्ञान को वर्धित करने की आवश्यकता पड़ती है। पाठ्य-पुस्तक से इन दोनों ही वर्गों को उनके कार्यों में सहायता मिलती है।

(4) पाठ्य-पुस्तक छात्रों की विषय-वस्तु को संकलित करने में सहायता करती

(1) अच्छी पाठ्य-पुस्तक छात्रों में स्वतन्त्र पढ़ने के लिए रुचि जाग्रत ...

(2) अच्छी पाठ्य-पुस्तक में विषय-वस्तु का संगठन अत्यन्त मनोवैज्ञानिक ... तैयार किया जाता है।

(3) अच्छी पाठ्य-पुस्तक व्याख्या, स्पष्टीकरण, उदाहरणों आदि की सहा... विषय को सरल बनाती है।

(4) अच्छी पाठ्य-पुस्तक में आवश्यक स्थलों पर मानचित्र, चार्ट, रेखा... रेखाकृतियाँ इत्यादि होते हैं जो विषय-वस्तु को और भी अधिक रोचक बनाते हैं।

(5) अच्छी पाठ्य-पुस्तक की भाषा शैली में सरलता, सरसता तथा प्रवाह... का प्रधान गुण होता है।

(6) अच्छी पाठ्य-पुस्तक का आकार अधिक सुविधाजनक होता है।

(7) अच्छी पाठ्य-पुस्तक विषय-वस्तु को छात्रों के मानसिक स्तर के अ... करती है।

(8) अच्छी पाठ्य-पुस्तक चिन्तन करने हेतु नवीन विचार प्रस्तुत करती है।

(9) अच्छी पाठ्य-पुस्तक किसी की भावनाओं को आघात नहीं पहुँचाती है।

(10) अच्छी पाठ्य-पुस्तक उपयुक्त अध्यायों में विभक्त होती है और उसके अ... अनेक उपखण्डों में विभक्त होते हैं। अध्याय में विषय-वस्तु की व्याख्या हेतु अ... पैराग्राफ होते हैं।

(11) अच्छी पाठ्य-पुस्तक में विषय सूची, शब्दावली तथा नियमावली होती है।

(12) अच्छी पाठ्य-पुस्तक की शैली में विशालता, पूर्णता तथा स्थूलता होती है।

पाठ्य-पुस्तक का चयन करते समय हमें पाठ्य-पुस्तक से सम्बन्धित निम्नांकित तथ्यों को देखना चाहिए—

(1) लेखक—सर्वप्रथम हमें पुस्तक के लेखक, उसकी योग्यता, अनुभव, स्थान... उसके दृष्टिकोण से अवगत होना चाहिए।

(2) प्रकाशन—पुस्तक के प्रकाशन से सम्बन्धित सूचनाएँ देखनी चाहिए। प्रका... कौन है ? प्रकाशन तिथि क्या है ?

(3) बाह्य रचना—पुस्तक की बाह्य रचना कैसी है ? इसके लिए हमें उस... आकार, फार्मेट, अक्षरों की बनावट, मूल्य, शीर्षक, पृष्ठ-संख्या, जिल्द, कागज की कि... आदि तथ्यों को देखना चाहिए।

(4) संगठन—पुस्तक में विषय-वस्तु के संगठित करने की विधि को भी देख... आवश्यक है। पाठ्य-पुस्तक की सामान्य योजना उसके अध्यायों का क्रम, सारांश औ... चीजें देखनी चाहिए।

(5) प्रस्तुतीकरण—देखना चाहिए कि पाठ्य-पुस्तक में विषय-वस्तु को किस रू... में प्रस्तुत किया गया है। प्रस्तुतीकरण का ज्ञान प्राप्त करने के लिए हमें पुस्तक की... भाषा शैली, शब्दावली, स्थूलता, आधुनिकता, स्पष्टता आदि को देखना चाहिए।

(6) सहायक सामग्री—पुस्तक में सीखने की सहायक सामग्री किस मात्रा में दी ग... है ? इसके लिए हमें आगे लिखी बातें देखनी चाहिए—

अ—उदाहरण—उदाहरण कैसे हैं, वे कितने उपयुक्त हैं, उनमें उद्देश्यपूर्ति की कितनी क्षमता है, छात्रों को वे किस सीमा तक प्रभावित करते हैं।

आ—मानचित्रादि—कितने मानचित्र दिए गये हैं ? वे किस प्रकार के हैं ?

इ—अभ्यास प्रश्न—पुस्तक में अभ्यास हेतु प्रश्न दिए गए हैं अथवा नहीं।

ई—सन्दर्भ।

उ—विषय सूची, शब्दावली आदि।

कुछ सुझाव

अगर उन उद्देश्यों को प्राप्त करना है जिनके लिए पाठ्य-पुस्तकें लिखी जाती हैं तो यह आवश्यक है कि पाठ्य-पुस्तकों के स्तर में सुधार किया जाय। पाठ्य-पुस्तकों के सुधार के लिए निम्नांकित कदम उठाये जा सकते हैं—

(1) पाठ्य-पुस्तकों के सुधार हेतु राष्ट्रीय स्तर पर एक उच्च सत्ताधारी पाठ्य-पुस्तक समिति का गठन किया जाय।

(2) पुस्तकें राष्ट्रीय स्तर पर लिखी जायें। राज्य स्तर पर लिखी गई पुस्तकों को प्रोत्साहित नहीं किया जाय।

(3) राज्य की तरफ से पाठ्य-पुस्तकों के फारमेट हेतु एक निश्चित स्तर निर्धारित कर दिया जाय।

(4) पाठ्य-पुस्तक में चित्रादि बनाने हेतु चित्रण कला का विकास किया जाय।

(5) पाठ्य-पुस्तकों को जल्दी से जल्दी बदलने की प्रवृत्ति को रोका जाय।

(6) एक विषय के लिए एक पुस्तक न बनाकर अच्छे स्तर की कई पुस्तकें बनाने की सिफारिश की जाय।

(7) लेखकों को पुस्तक लेखन का कार्य सरकार की अनुमति के बिना नहीं करना चाहिये। साथ ही सरकार लेखन का अधिकार योग्य एवं अनुभवी अध्यापकों को ही दे।

(8) पुस्तकें राष्ट्रीय भावनाओं से युक्त होनी चाहिये। वे किसी की भावनाओं को ठेस न पहुँचाएँ।

(9) प्रकाशक भी प्रकाशन का अधिकार राज्य सरकार से प्राप्त करें।

(10) सरकार को पुस्तकों के मूल्यों पर नियन्त्रण रखना चाहिये।

(11) सस्ती पुस्तकों को हतोत्साहित किया जाय।

(12) प्रकाशित होने से पूर्व पाण्डुलिपि का अध्ययन विद्वानों की एक विशिष्ट समिति द्वारा किया जाए और उनकी सिफारिशों के आधार पर ही वह पुस्तक प्रकाशित हो सके, ऐसी व्यवस्था की जाय।

वाणिज्य की पाठ्य-पुस्तक कैसी हो ?

वाणिज्य की पाठ्य-पुस्तक चुनते समय निम्नांकित बातों का ध्यान रखा जाना चाहिए—

(1) पाठ्य-पुस्तक छात्रों की रुचि, स्तर, योग्यता व क्षमता के अनुसार होनी चाहिए।

(2) पुस्तक की बाह्य आकृति आकर्षक होनी चाहिए ताकि उसकी और छात्रों का अवधान अपने आप केन्द्रित हो।

(3) पाठ्य-पुस्तक में पाठ्य-वस्तु पाठ्यक्रम के अनुसार होनी चाहिये।
(4) पाठ्य-पुस्तक मे उद्देश्य पूरकता होनी चाहिए तथा सन्दर्भों का स्थान होना चाहिये।
(5) पुस्तक की छपाई साफ एवं शुद्ध होनी चाहिये।
(6) पुस्तक में सैद्धान्तिक पक्ष के साथ व्यावहारिक पक्ष का भी उचित चाहिये।
(7) वाणिज्य के नियमों का स्पष्ट उल्लेख होना चाहिये।
(8) पाठ्य-पुस्तक में आवश्यक चार्ट, चित्र, रेखाचित्र, आँकड़े व तालिक होनी चाहिये।
(9) पाठ्य-पुस्तक में छात्रों के अभ्यास कार्यों हेतु प्रश्नावलियाँ व नि दिये जाने चाहिये।
(10) पाठ्य-पुस्तक में सहायक पुस्तकों की भी सूची दी हुई होनी चाहिये
(11) पुस्तक योग्य रीति में लिखी जानी चाहिये तथा उसमें मौलिकत समावेश होना चाहिये।
(12) तकनीकी शब्दों की उचित व्याख्या होनी चाहिये।
(13) पाठ्य-पुस्तक छात्रों की तर्क-शक्ति, चिन्तन शक्ति, स्व-निर्णय श विकास करने वाली होनी चाहिये।
(14) पाठ्य-पुस्तक छात्रों में स्वाध्ययन एवं आत्म-प्रकाशन की भावना का करने वली होनी चाहिये।
(15) पाठ्य-पुस्तक स्थानीय आवश्यकताओं की भी पूरक होनी चाहिये।
(16) पाठ्य-पुस्तक का मूल्य उचित होना चाहिये।

सन्दर्भ पुस्तकें

उच्च स्तर पर केवल पाठ्य-पुस्तकें ही महत्त्वपूर्ण नहीं होती हैं, बल्कि पुस्तकें भी उतनी ही महत्त्वपूर्ण होती हैं। पाठ्य-पुस्तकों का अध्ययन करते कभी-कभी उनके परिपूरक स्वरूप सन्दर्भ पुस्तकें आवश्यक हो जाती है। सन्दर्भ चूँकि सामान्यतः अधिक मूल्य की होती हैं अतः विद्यालय प्रशासन व सम्बन्धित अध को चाहिए कि उन्हें विद्यालय पुस्तकालय में उचित मात्रा में मँगवाए। ये सन्दर्भ छात्र व अध्यापक दोनों के लिए लाभदायक होती हैं, इससे वे अपने विषय के ज्ञा समृद्ध व आधुनिक बनाने मे सहायता प्राप्त करते हैं, तथा छात्रों को इनसे तथ्यात्मक जानकारी, आँकड़े व अन्य महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ प्राप्त होती हैं। अतः स्प कि केवल मात्र पाठ्य-पुस्तकें छात्रों व अध्यापकों की ज्ञान पिपासा को तृप्त नहीं सकते हैं, इस कार्य में सन्दर्भ पुस्तकें महत्त्वपूर्ण रोल अदा करती हैं।

सन्दर्भ पुस्तकों के चयन हेतु आवश्यक बातें

सन्दर्भ पुस्तकों के चयन करते समय निम्न बातों को ध्यान में रखा जाना चाहि
(1) सन्दर्भ पुस्तकों में तथ्य अधिक हो तथा प्रामाणिक होने चाहिये।
(2) सन्दर्भ पुस्तकों की भाषा सरल व स्पष्ट होनी चाहिये।

अभ्यास-प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न

1. वाणिज्य शिक्षण के लिये पाठ्य-पुस्तक का क्या महत्त्व है ? स्पष्ट कीजिये।
2. वाणिज्य-पुस्तक की कतिपय विशेषताओं की चर्चा कीजिये।
3. वाणिज्य के छात्रों के लिये पाठ्य-पुस्तक का चयन करते समय शिक्षा के ... आप किन-किन तत्त्वों को ध्यान में रखेंगे ? विवेचना कीजिये।
4. वाणिज्य शिक्षण के लिये सन्दर्भ पुस्तकों तथा अतिरिक्त साहित्य के महत्त्व ... प्रकाश डालिये।

लघु उत्तरात्मक प्रश्न

1. एक अच्छी वाणिज्य-पुस्तक के कोई पाँच गुण लिखिये।
2. वाणिज्य शिक्षण के लिये सन्दर्भ पुस्तकों का चयन करते समय किन्हीं पाँच ... बातों का उल्लेख कीजिये।
3. वाणिज्य शिक्षण के लिये उपयोगी किन्हीं पाँच पत्रिकाओं के नाम लिखिये।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. पाठ्य-पुस्तक विषय-वस्तु को अत्यन्त तार्किक ढंग से .... करती है।
2. पाठ्य-पुस्तक शिक्षकों का साथी तथा छात्रों का .... है।
3. वाणिज्य .... विषय है।

उत्तर—1. प्रस्तुत। 2. ज्ञानदाता। 3. गत्यात्मक।

14

वाणिज्य-विषय के छात्र

(STUDENTS OF COMMERCE)

वाणिज्य विषय का सफल शिक्षण जितना महत्त्वपूर्ण एवं आवश्यक है उतना ही, और यदि कहा जाय कि उससे भी अधिक, महत्त्वपूर्ण है वाणिज्य विषय के अध्यापन के लिए उचित तथा उपयुक्त छात्रों का चुनाव। वाणिज्य शिक्षक के लिये यह उचित तथा आवश्यक है कि वह वाणिज्य विषय का अध्ययन करने के लिए बड़ी सावधानी के साथ उपयुक्त छात्रों का चयन करे। वाणिज्य एक तकनीकी तथा विशिष्ट प्रकार का विषय है इसमें सफलता के लिए छात्र में कुछ विशिष्ट योग्यताओं का होना आवश्यक है। यदि वाणिज्य विषय का अध्ययन कराने के लिए ऐसे छात्रों का चुनाव कर लिया जाता है जिनमें अवांछित योग्यताओं तथा क्षमताओं का अभाव है तो वह छात्र वाणिज्य विषय में कभी भी उन्नति नहीं कर सकता है। वाणिज्य विषय के अध्ययन के लिए वांछित योग्यताओं तथा क्षमताओं से रहित बालक यदि वाणिज्य विषय का चुनाव अपने अध्ययन के लिये कर लेता है तो वह सदैव एक समस्या के रूप में कक्षा में कार्य करता है, उसका समायोजन शिक्षक, शिक्षण तथा कक्षा एवं विषय के साथ नहीं हो सकता है। इस प्रकार के बालक समस्या बालक बन सकते हैं। उनमें अच्छी बौद्धिक योग्यता होते हुए भी वे पर्याप्त शैक्षिक प्रगति नहीं कर सकते हैं, वे पिछड़े बालक बन जाते हैं।

आज हम सब व्यक्तिगत विभिन्नताओं के सिद्धान्त को स्वीकार करते हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक बालक शारीरिक तथा मानसिक रूप से एक-दूसरे से पृथक् होता है। यदि हम केवल मानसिक योग्यताओं तथा क्षमताओं की बात ही करें तो कह सकते हैं कि प्रत्येक बालक में सामान्य बुद्धि (General Intelligence) तथा विशिष्ट योग्यताओं (Specific Abilities) की मात्रा तथा संख्या पृथक्-पृथक् होती है। एक प्रतिभावान छात्र भाषा एवं कला में प्रवीण हो सकता है उसके लिए यह आवश्यक नहीं कि वह वाणिज्य का भी सफल छात्र हो। अतः आवश्यकता इस बात की है कि सर्वप्रथम छात्र की मानसिक योग्यताओं तथा क्षमताओं का पता लगाया जाय फिर उनके आधार पर ही छात्रों का समुचित चयन वाणिज्य विषयों का अध्ययन करने के लिये किया जाना चाहिए। यदि व्यक्तिगत विभिन्नताओं को ध्यान में रखकर वाणिज्य विषय के अध्ययन के लिए उचित छात्रों का चयन किया जाता है तो ऐसे चयनित छात्र वाणिज्य विषयों में आशातीत उन्नति कर सकेंगे, ऐसा सुनिश्चित है। वाणिज्य के अध्ययन के लिए ऐसे

छात्रों का चयन करने से अनेक प्रकार की समस्याओं का उदय हो ... प्रकार के छात्र समाज तथा राष्ट्र के उपयोगी नागरिक बनते हैं।

व्यक्तिगत विभिन्नताओं के अनुसार वाणिज्य विषय के अध्ययन के ... चयन कैसे किया जाय, इसके लिए अध्यापक को शैक्षिक निर्देशन (... guidance) की सेवाओं की आवश्यकता होती है। शैक्षिक निर्देशन क्या ... अनुसार उचित छात्रों का चुनाव कैसे किया जाता है, आदि तथ्यों का परिच... में दिया गया है—

1. शैक्षिक निर्देशन (Educational Guidance)

वाणिज्य विषय के लिए छात्रों का चुनाव करने के लिए छात्रों को शैक्षि... प्रदान करना चाहिए। शैक्षिक निर्देशन से संक्षेप में तात्पर्य है छात्रों को उनकी ... का ज्ञान इस प्रकार कराना जिससे वे अपनी शिक्षण सम्बन्धी निर्णय स्वयं ... सकें। इस संक्षिप्त एवं सरल परिभाषा की व्याख्या के रूप में कहा जा सकता है ... छात्रों को यह ज्ञात हो कि उनमें कौन-कौन सी तथा किस मात्रा में मानसिक ... हैं और साथ ही उसे यह भी ज्ञान हो कि किसी शैक्षिक कार्यक्रम के लिए कौन-... तथा कितनी मात्रा में विभिन्न मानसिक योग्यताओं का होना आवश्यक है। इन ... ज्ञान के प्रकाश में वह यह निर्णय स्वयं ले लेने की योग्यता रखेगा कि उसे किस ... की शिक्षा ग्रहण करने की ओर अग्रसर होना चाहिए।

शैक्षिक निर्देशन की सहायता से हम बालक की विभिन्न मानसिक योग्यताओं ... क्षमताओं का पता लगा सकते हैं। बालक को विभिन्न मानसिक योग्यताओं तथा ... का पता लगाने के लिए शिक्षक किसी अच्छे बुद्धि-परीक्षण, रुचि-परीक्षण, अभिरुचि ... तथा निष्पत्ति-परीक्षण आदि का प्रयोग कर सकता है।

(1) बुद्धि-परीक्षण—वाणिज्य विषय के अध्ययन के लिए छात्रों का चयन ... समय सबसे पहले शिक्षक को छात्र की बुद्धि-परीक्षा लेकर यह पता लगा लेना चाहि... छात्र का बौद्धिक स्तर क्या है। वाणिज्य की शिक्षा-ग्रहण करने के लिए ऐसे छात्र ... चयन किया जाय जिनका बौद्धिक-स्तर पर्याप्त अच्छा हो क्योंकि मानसिक स्त... दुर्बल छात्र वाणिज्य विषय का अध्ययन सरलतापूर्वक नहीं कर सकता है। वाणि... विषय एक तकनीकी तथा विशिष्ट विषय है। इसमें न केवल संख्यायें, अंक तथा ... ही हैं अपितु उनका बौद्धिक प्रयोग भी है। इस कार्य के लिए उच्च बौद्धिक स्तर ... आवश्यकता होती है।

(2) रुचि-परीक्षण—वाणिज्य-शिक्षण के अध्ययन के लिए छात्रों का चुनाव क... समय छात्रों की रुचियों का भी पता लगाना चाहिए। जिन छात्रों का वाणिज्य विषय ... लिए चुनाव किया जाय उनमें वाणिज्य विषय के प्रति रुचि भी होनी चाहिये। यदि छा... में वाणिज्य-विषय के प्रति रुचि का अभाव है तो वह छात्र कभी भी वाणिज्य-विषयों ... अच्छी निष्पत्ति प्रदर्शित नहीं कर सकता है। इसलिए वाणिज्य विषय का चयन क... समय यह भी पता लगाना उपयोगी है कि बालक में वाणिज्य विषयों के प्रति रुचि ... अथवा नहीं। बालक मे वाणिज्य विषयों के प्रति रुचि का पता लगाने के लिए शिक्ष... किसी रुचि-मापनी का प्रयोग कर सकता है अन्यथा वह अपनी स्वयं की भी रुचि-माप...

निर्मित कर सकता है। सफल अध्यापक यदि इस दिशा में अधिक न कर पाये तो एक ... साक्षात्कार के द्वारा भी बालक की रुचि का पता लगा सकते हैं।

(3) अभिरुचि-परीक्षण—वाणिज्य विषय के लिए बालकों का चयन करते समय उनकी वाणिज्य विषयों में अभिरुचि का पता लगाना बड़ा ही उपयोगी एवं आवश्यक है क्योंकि अभिरुचि भावी सफलताओं की संभावनाओं की ओर इशारा करती है। यदि बालक में वाणिज्य विषय के प्रति अभिरुचि है तो इसका तत्पर्य है कि यह सम्भावना प्रबल है कि वह बालक वाणिज्य विषयों में अच्छी उपलब्धियाँ प्राप्त कर सकेगा। बालक की अभिरुचि पर ही उसकी वाणिज्य विषयों में संभावित भावी प्रगति निर्भर करती है। अतः वाणिज्य विषयों के लिए छात्रों का चयन करते समय बालक की अभिरुचियों का भी शिक्षक को पता लगाना चाहिए। इस कार्य के लिए शिक्षक किसी भी अच्छी एवं उपयुक्त अभिरुचि मापनी का प्रयोग कर सकता है।

(4) निष्पत्ति-परीक्षण—वाणिज्य विषयों के लिए छात्रों का चयन करते समय छात्रों की गत शैक्षिक निष्पत्तियाँ (Achievements) का तथा वर्तमान शैक्षिक स्तर का भी पता लगाना चाहिए। यदि बालक की गत निष्पत्तियाँ तथा वर्तमान शैक्षिक स्तर औसत से अच्छा है तभी उसे अध्ययन के लिए वाणिज्य विषय देने चाहिये। क्योंकि वाणिज्य-विषय एक ऐसा विषय है जिसका हर छात्र सफलतापूर्वक अध्ययन नहीं कर सकता है। वाणिज्य-विषय के अध्ययन के लिये बालक को कड़ा परिश्रम करना पड़ता है, इसमें पर्याप्त अभ्यास तथा सूझ-बूझ की भी आवश्यकता होती है। छात्र की गत निष्पत्तियों का ज्ञान अध्यापक छात्र की पिछली कक्षाओं के प्रगति-प्रत्रकों (Progress Report) से सहज ही कर सकता है तथा वर्तमान शैक्षिक स्तर का पता लगाने के लिए किसी अच्छे निष्पत्ति परीक्षण (Achievement Test) का प्रयोग कर सकता है। आवश्यक होने पर वह अपना स्वयं का निष्पत्ति परीक्षण भी निर्मित कर सकता है।

वाणिज्य-विषय के लिये छात्रों का चयन करने के लिये उक्त तथ्यों के अलावा कुछ अन्य सामान्य तथ्यों को भी ध्यान में रखना चाहिए। इस प्रकार के कुछ सामान्य तथ्य निम्नांकित हैं—

(1) सामान्य सूचनायें—वाणिज्य-विषयों के लिये छात्रों का चयन करते समय छात्रों के सम्बन्ध में कुछ उपयोगी सामान्य सूचनायें भी एकत्रित करनी चाहिये। इस प्रकार की सामान्य सूचनाएँ आवश्यकता पड़ने पर बड़ी उपयोगी साबित होती हैं। इस प्रकार की सूचनाओं में छात्र का नाम, उसके माता-पिता का नाम, उनकी शैक्षिक योग्यता, उनका व्यवसाय, पता, आयु तथा आय, भाई तथा बहिन, निवास की परिस्थितियाँ आदि को सम्मिलित किया जा सकता है।

(2) शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य—वाणिज्य-विषयों के लिये छात्रों का चयन करते समय छात्रों के शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य का भी अध्ययन चयनकर्ताओं को करना चाहिये। शैक्षिक स्तर पर बालक के शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य का उल्लेखनीय एवं स्पष्ट प्रभाव पड़ता है। वाणिज्य-विषयों के अध्ययन के लिये ऐसे छात्रों का चयन किया जाय जिनका शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य अच्छा तथा सन्तुलित हो।

(3) भावी योजनायें तथा आकांक्षायें—वाणिज्य-विषय लेने वाले छात्र की भावी योजनायें तथा आकांक्षाएँ क्या हैं इस बात का भी शिक्षक को पता करनी चाहिये क्योंकि

भावी योजनाओं तथा आकांक्षाओं का छात्र की उपलब्धियों पर उल्लेखनीय प्रभाव
है। उदाहरण के लिए जो छात्र भविष्य में लिपिक बनना चाहता है वह अधिक
नहीं करना चाहेगा जबकि वह बालक जो सी० ए० बनना चाहता है वह निश्चित
अधिक परिश्रम करेगा। निश्चित रूप से उसकी शैक्षिक निष्पत्तियाँ अच्छी रहेंगी।
छात्रों का चयन करते समय उसकी आकांक्षाओं तथा भावी योजनाओं का भी पता
चाहिए और सामान्यतः उन्हीं छात्रों को प्रवेश देना चाहिये जिनकी भावी योजनाएँ
आकांक्षाएँ ऊँची हों।

उक्त तथ्यों के आधार पर यदि छात्रों का चयन किया जाय तो निश्चित रूप
वाणिज्य-विषयों के लिए ऐसे छात्र आयेंगे जो भविष्य मे अच्छी निष्पत्ति प्राप्त कर
है तथा एक सफल वाणिज्यिक बन सकते हैं। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि इन
तथ्यों में बुद्धि तथा अभिरुचि सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। अतः अध्यापक को कम-से-
इन तत्त्वों का विचार तो अवश्य ही करना चाहिये।

अभ्यास-प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न

1. वाणिज्य विषय के छात्रों के लिये आवश्यक गुणों का उल्लेख कीजिये।
2. किसी छात्र में वाणिज्य विषय का अध्ययन करने के आवश्यक गुण हैं ? यदि
   उनका यथाभाव किस प्रकार किया जायेंगे।

लघु उत्तरात्मक प्रश्न

1. शैक्षिक निर्देशन क्या है ?

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. वाणिज्य विषय के लिए छात्रों का चुनाव करने के लिए छात्रों को.....
   प्रदान करना चाहिए।
2. बालक की.....पर ही उसकी वाणिज्य विषयों में सम्भावित भावी प्रगति
   निर्भर करती है।

उत्तर—1. शैक्षिक निर्देशन। 2. अभिरुचि।

15

वाणिज्य-शिक्षण एवं निर्देशन
(COMMERCE TEACHING AND GUIDANCE)

निर्देशन का अर्थ

'निर्देशन' का शाब्दिक अर्थ प्रदर्शन करना, इंगित करना तथा पथ-प्रदर्शन करना है।

"To guide means to indicate, to point out, to show the way. It means more than to assist." —**Jones**

यह अर्थ बड़ा ही संकुचित है। कुछ विद्वानों ने इसका अर्थ सहायता करना बताया है। किन्तु जोन्स ने स्पष्ट लिखा है कि इसका अर्थ साधारण सहायता देने से अधिक व्यापक है। निर्देशन किसी व्यक्ति की समस्या का समाधान नहीं करता है। इसमें व्यक्ति को यह मार्ग बताया जाता है जिस पर चलकर व्यक्ति स्वयं समस्या को हल कर सके। उदाहरण के लिए, किसी बालक को गणित का कोई प्रश्न हल करना नहीं आ रहा है, वह अपने अध्यापक के पास पहुँचकर अपनी कठिनाई प्रकट करता है। एक अच्छा अध्यापक एक योग्य निर्देशन भी होता है। वह उस प्रश्न को स्वयं हल करने के स्थान पर छात्र की कठिनाई का निदान करके उसको प्रश्न हल करने का मार्ग प्रशस्त करेगा और इस प्रकार छात्र को स्वयं हल करने के लिए प्रोत्साहित करेगा।

'निर्देशन' एक ऐसा विवादास्पद शब्द है जिसकी व्याख्या विभिन्न विद्वानों ने अपने-अपने अनुसार की है। यहाँ पर कुछ विशिष्ट विद्वानों की परिभाषा देकर निर्देशन शब्द के विभिन्न अर्थों को समझना उपयुक्त रहेगा।

किट्सन ने निर्देशन को परिभाषित करते हुए लिखा है शिक्षा का व्यष्टिकरण करने का प्रयास ही निर्देशन है। प्रत्येक छात्र की स्वयं के अधिकतम विकास में सहायता करनी चाहिये।

"Guidance is an attempt to individualize education. Each pupil should be helped to develop himself in the maximum possible degree in all respects." —**Kitson**

यह परिभाषा बड़ी संकुचित दृष्टिकोण लिए हुए है। इसमें निर्देशन को केवल शिक्षा तक ही सीमित कर दिया है जबकि निर्देशन का क्षेत्र बड़ा व्यापक है।

लीफिवर, टसेल और विट्रजिल ने भी निर्देशन को शिक्षा तक ही सीमित रखा है। उनके अनुसार निर्देशन एक शैक्षिक सेवा है जो विद्यालय में प्राप्त शिक्षा का अधिक प्रभावशाली उपयोग करने में छात्रों की सहायता करने के लिए आयोजित की जाती है।

"Guidance is an education service designed to help the students ... more effective use of the school training programme."

—Lefever, Tussel & W...

यह परिभाषा भी निर्देशन को विद्यालय की सीमाओं तक बाँधकर रखती है। निर्देशन केवल विद्यार्थी जीवन तक ही सीमित नहीं होता। यह तो जीवन भर ... वाली प्रक्रिया है।

कोक्स (Cox) के मतानुसार, "निर्देशन शिक्षा में अन्तर्निहित है अतएव यह ... अधिकांशतः कक्षाध्यापक द्वारा होना चाहिये। अध्यापक को चाहिये कि छात्रों द्वारा ... के लिए गतिशील, तर्कसंगत और उपयोगी लक्ष्य निर्धारित करने में सहायता प्र... करे।" यह परिभाषा भी निर्देशन के अर्थ तथा क्षेत्र को संकुचित बना देती है।

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि अधिकांश विद्वान निर्देशन को शिक्षा का एक आवश्यक अंग मानते हैं। उनकी धारणा है कि निर्देशन केवल विद्यालय तक सीमित है। इस विचारधारा के विपरीत **कूज** तथा **केफ्यूवर** ने स्पष्ट लिखा है, निर्दे... को शिक्षा का पर्यायवाची नहीं समझा जाना चाहिये, क्योंकि निर्देशन सम्पूर्ण शिक्षा ... है। निर्देशन के दो अंग हैं—**(1) वितरण**—जिसमें नवयुवकों को प्रभावशाली ढंग ... शैक्षिक एवं व्यावसायिक अवसरों में प्रतिष्ठापित किया जाना चाहिये और (2) समायोजन ... जिसमें नवीन अवसरों में प्रभावशाली समायोजन में नवयुवकों की सहायता कर... चाहिये।

"Guidance is inherent in education and as such should be done largely by classroom teacher. He should try to help pupils set up dynamic, reasonable and worthwhile objectives for themselves."

—Cox

कूज का यह कथन तो सही है कि निर्देशन और शिक्षा समान अर्थ वाले शब्द नहीं हैं। इन्होंने निर्देशन के दो पहलुओं पर विशेष बल दिया है। आधुनिक काल में दोनों पहलू महत्त्वपूर्ण हैं। आज शिक्षा में विविध पाठ्यक्रम आरम्भ हुए हैं। इसी प्रकार व्यवसायों में भी विविधता के प्रारम्भ होने से प्रत्येक व्यवसायों में विशिष्ट कुशलता तथा प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है। इसीलिए यह आवश्यक है कि नवयुवक को अपनी योग्यता एवं क्षमता के अनुसार पाठ्यक्रम या व्यवसाय में नवयुवकों को सन्तोषजनक समायोजन में सहायता प्रदान करना निर्देशन का महत्त्वपूर्ण पहलू है।

"Guidance should not be regarded as synonymous with education. The concept of guidance has two main phases : (i) The distributive phase whereby youth may be distributed to educational and vocational opportunities as effectively as possible, and (ii) The adjustive phase, whereby the individual is helped to make the optional adjustment to the opportunities."

—Koos & Kefanver

यह परिभाषा निर्देशन के अर्थ को कम स्पष्ट करती है और निर्देशन के उद्देश्य पर अधिक बल देती है।

इलिस ने भी निर्देशन के समायोजन पक्ष पर अधिक बल दिया है। "व्यक्तियों का अपने वातावरण के साथ सन्तोषजनक और अधिक प्रभावपूर्ण सामंजस्य करने में सहायता प्रदान करना ही निर्देशन है।" इन्होंने भी समायोजन पक्ष पर अधिक बल दिया

है। यह एक मनोवैज्ञानिक पक्ष है कि प्रभावी समायोजन व्यक्ति की कार्यकुशलता पर प्रभाव डालकर उसको मानसिक तनाव से मुक्त करता है। यह परिभाषा सहायता के स्वरूप को स्पष्ट नहीं करती है।

एमरीस्ट्रप्स ने निर्देशन की परिभाषा इन शब्दों में व्यक्त की है—"निर्देशन सहायता प्रदान करने की निरन्तर चलने वाली ऐसी प्रक्रिया है जो व्यक्तिगत तथा सामाजिक दृष्टि से हितकारी क्षमताओं का विकास अधिकतम रूप से व्यक्ति में करती है।"

"Guidance is a continuous process of helping the individual to develop to the maximum of his capacity in the direction most beneficial to himself and to society."

—Emerystoops

इस परिभाषा में एक नवीन बात पर जोर दिया गया है—वह है सहायता का रूप। सहायता नवयुवक के जीवन के किसी विशेष स्तर तक ही आवश्यक नहीं है, अपितु सहायता तो किसी भी आयु-स्तर या जीवन क्षेत्र में आवश्यक रहती है। दूसरी विशेषता प्रक्रिया से सम्बन्धित है। सहायता की निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया बताकर स्टूप्स ने परिभाषा में नवीनता पैदा की है। इन्होंने युवकों के व्यक्तिगत तथा सामाजिक दोनों पक्षों को सम्मिलित किया है। दोनों दृष्टियों से उपयोगी क्षमताओं के विकास में सहायता देना निर्देशन है।

क्रो तथा **क्रो** ने निर्देशन की परिभाषा देते हुए लिखा है—"निर्देशन आदेश देना नहीं है। यह अपनी विचारधारा को दूसरों पर थोपना नहीं, यह उन निर्णयों का जो एक व्यक्ति को अपने लिए स्वयं निश्चित करने चाहिये, निश्चित करना नहीं है। यह दूसरे के दायित्व को अपने ऊपर लेना नहीं है वरन् निर्देशन तो वह सहायता है जो एक कुशल परामर्शदाता द्वारा किसी भी आयु के व्यक्ति को अपने जीवन की दिशा निश्चित करने, अपना स्वयं का दृष्टिकोण विकसित करने, स्वयं निर्णय लेने तथा अपने दायित्व स्वयं वहन करने में दी जाती है।"

"Guidance is not direction. It is not the imposition of ones point of view upon another. It is not making decision for an individual which he should make for himself. It is not carrying the burdens of another's life. Rather guidance is assistance made available by competent counsellors to an individual of any age to help him direct his life, develop his own point of view, make his own decisions and carry his own burden."

—Crow & Crow

निर्देशन के बारे में व्याप्त अनेक भ्रमों को यह परिभाषा दूर करती है। निर्देशक कभी भी आदेश नहीं देता है अपितु आदेश के स्थान पर परामर्श देता है। परामर्श मानने के लिए व्यक्ति स्वतन्त्र होता है। परामर्शदाता अपना दृष्टिकोण किसी व्यक्ति पर थोपता नहीं है अपितु वह युवकों को अपना दृष्टिकोण या विचारधारा विकसित करने में सहायता करता है। निर्देशक व्यक्ति को अपने उत्तरदायित्व स्वयं वहन करने का परामर्श देता है। स्पष्ट है कि निर्देशन व्यक्ति के लिए समस्याओं का समाधान नहीं करता है। निर्देशन तो व्यक्तिगत सहायता है जिसके द्वारा वह व्यक्ति में अन्तर्दृष्टि उत्पन्न करता है, जिससे वह स्वयं समस्याओं का समाधान करने में समर्थ हो सके। इसी सन्दर्भ में जोन्स का कथन सही प्रतीत होता है कि निर्देशन का केन्द्र-बिन्दु व्यक्ति होता है न कि उसकी समस्या। इसका मुख्य उद्देश्य व्यक्ति के स्वनिर्देशन में उसकी सहायता करना है।

आत्म-ज्ञान और स्वनिर्देशन निर्देशन के मुख्य बिन्दु हैं। उपरोक्त सभी परिभाषाओं का विवेचन से निम्नलिखित तत्त्व उभरकर आते हैं—

1. निर्देशन कार्यक्रम संगठित होता है जिसमें एक व्यवस्था विद्यमान होती है।
2. निर्देशन विद्यालय व्यवस्था का एक आवश्यक अंग है।
3. निर्देशन व्यक्ति पर ध्यान देती है, समस्या पर नहीं।
4. निर्देशन में स्वयं की समस्याओं को स्वयं हल करने की योग्यता का विकास बालको में किया जाता है।
5. निर्देशन अन्तर्दृष्टि एवं आत्म-विकास की ओर प्रेरित करता है।
6. युवकों में छिपे गुण एवं क्षमताओं को ज्ञात कर उनके विकास के अवसर प्रदान करता है।
7. निर्देशन एक प्रक्रिया है।

वाणिज्य-विषय के छात्र (Students of Commerce)

वाणिज्य विषय का सफल शिक्षण जितना महत्त्वपूर्ण एवं आवश्यक है उतना ही और यदि कहा जाय कि उससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण है—वाणिज्य विषय के अध्ययन के लिए उचित तथा उपयुक्त छात्रों का चुनाव। वाणिज्य शिक्षक के लिये यह उचित तथा आवश्यक है कि वह वाणिज्य विषय का अध्ययन करने के लिए बड़ी सावधानी के साथ उपयुक्त छात्रों का चयन करे। वाणिज्य एक तकनीकी तथा विशिष्ट प्रकार का विषय है इसमें सफलता के लिए छात्र में कुछ विशिष्ट योग्यताओं का होना आवश्यक है यदि वाणिज्य विषय का अध्ययन कराने के लिए ऐसे छात्रों का चुनाव कर लिया जाता है जिनमें अवांछित योग्यताओं तथा क्षमताओं का अभाव है तो वह छात्र वाणिज्य विषय में कभी भी उन्नति नहीं कर सकता है। वाणिज्य विषय के अध्ययन के लिए वांछित योग्यताओं तथा क्षमताओं से रहित बालक यदि वाणिज्य विषय का चुनाव अपने अध्ययन के लिये कर लेता है तो वह सदैव एक समस्या के रूप में कक्षा में कार्य करता है, उसका समायोजन शिक्षक, शिक्षण तथा कक्षा एवं विषय के साथ नहीं हो सकता है। इस प्रकार के बालक समस्या बालक बन सकते हैं। उनमें अच्छी बौद्धिक योग्यता होते हुए भी वे पर्याप्त शैक्षिक प्रगति नहीं कर सकते हैं, वे पिछड़े बालक बन जाते हैं।

आज हम सब व्यक्तिगत विभिन्नताओं के सिद्धान्त को स्वीकार करते हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक बालक शारीरिक तथा मानसिक रूप से एक-दूसरे से पृथक् होता है। यदि हम केवल मानसिक योग्यताओं तथा क्षमताओं की बात ही करें तो कह सकते हैं कि प्रत्येक बालक में सामान्य बुद्धि (General Intelligence) तथा विशिष्ट योग्यताओं (Specific Abilities) की मात्रा तथा संख्या पृथक्-पृथक् होती है। एक प्रतिभावान छात्र भाषा एवं कला में प्रवीण हो सकता है उसके लिए यह आवश्यक नहीं कि वह वाणिज्य का भी सफल छात्र हो। अतः आवश्यकता इस बात की है कि सर्वप्रथम छात्र की मानसिक योग्यताओं तथा क्षमताओं का पता लगाया जाय फिर उनके आधार पर ही छात्रों का समुचित चयन वाणिज्य विषयों का अध्ययन करने के लिये किया जाना चाहिए। यदि व्यक्तिगत विभिन्नताओं को ध्यान में रखकर वाणिज्य विषय के अध्ययन के लिए उचित छात्रों का चयन किया जाता है तो ऐसे चयनित छात्र वाणिज्य विषयों में असाधारण उन्नति कर सकेंगे, ऐसा सुनिश्चित है। वाणिज्य के अध्ययन के लिए ऐसे छात्रों का चयन करने से अनेक प्रकार की समस्याओं का उदय ही नहीं होता है। इस प्रकार के छात्र समाज तथा राष्ट्र के उपयोगी नागरिक बनते हैं।

व्यक्तिगत विभिन्नताओं के अनुसार वाणिज्य विषय के अध्ययन के लिए छात्रों का चयन कैसे किया जाय, इसके लिए अध्यापक को शैक्षिक निर्देशन (Educational Guidance) की सेवाओं की आवश्यकता होती है। शैक्षिक निर्देशन क्या है ? इसके अनुसार उचित छात्रों का चुनाव कैसे किया जाता है, आदि तथ्यों का परिचय निम्न रूप में दिया गया है—

1. शैक्षिक निर्देशन (Educational Guidance)

वाणिज्य विषय के लिए छात्रों का चुनाव करने के लिए छात्रों को शैक्षिक निर्देशन प्रदान करना चाहिए। शैक्षिक निर्देशन से संक्षेप में तात्पर्य है—छात्रों को उनकी योग्यताओं का ज्ञान इस प्रकार कराना जिससे वे अपनी शिक्षण सम्बन्धी निर्णय स्वयं अपने आप ले सकें। इसे संक्षिप्त एवं सरल परिभाषा की व्याख्या के रूप में कहा जा सकता है कि यदि छात्रों को यह ज्ञात हो कि उनमें कौन-कौन सी तथा किस मात्रा में मानसिक योग्यतायें हैं और साथ ही उसे यह भी ज्ञान हो कि किसी शैक्षिक कार्यक्रम के लिए कौन-कौन सी तथा कितनी मात्रा में विभिन्न मानसिक योग्यताओं का होना आवश्यक है। इन दो पक्षों के ज्ञान के प्रकाश में वह यह निर्णय स्वयं ले लेने की योग्यता रखेगा कि उसे किस प्रकार की शिक्षा ग्रहण करने की ओर अग्रसर होना चाहिए।

शैक्षिक निर्देशन की सहायता से हम बालक की विभिन्न मानसिक योग्यताओं तथा क्षमताओं का पता लगा सकते हैं। बालक को विभिन्न मानसिक योग्यताओं तथा क्षमताओं का पता लगाने के लिए शिक्षक किसी अच्छे बुद्धि-परीक्षण, रुचि-परीक्षण, अभिरुचि-परीक्षण तथा निष्पत्ति-परीक्षण आदि का प्रयोग कर सकता है।

(1) बुद्धि-परीक्षण—वाणिज्य विषय के अध्ययन के लिए छात्रों का चयन करते समय सबसे पहले शिक्षक को छात्र की बुद्धि-परीक्षा लेकर यह पता लगा लेना चाहिए कि छात्र का बौद्धिक स्तर क्या है। वाणिज्य की शिक्षा ग्रहण करने के लिए ऐसे छात्रों का चयन किया जाय जिनका बौद्धिक स्तर पर्याप्त अच्छा हो क्योंकि मानसिक स्तर से दुर्बल छात्र वाणिज्य विषय का अध्ययन सरलतापूर्वक नहीं कर सकता है। वाणिज्य विषय एक तकनीकी तथा विशिष्ट विषय है। इसमें न केवल संख्यायें, अंक तथा गणित ही है अपितु उनका बौद्धिक प्रयोग भी है। इस कार्य के लिए उच्च बौद्धिक स्तर की आवश्यकता होती है।

(2) रुचि-परीक्षण—वाणिज्य-शिक्षण के अध्ययन के लिए छात्रों का चुनाव करते समय छात्रों की रुचियों का भी पता लगाना चाहिए। जिन छात्रों का वाणिज्य विषय के लिए चुनाव किया जाय उनमें वाणिज्य विषय के प्रति रुचि भी होनी चाहिए। यदि छात्रों में वाणिज्य-विषय के प्रति रुचि का अभाव है तो वह छात्र कभी भी वाणिज्य-विषयों में अच्छी निष्पत्ति प्रदर्शित नहीं कर सकता है। इसलिए वाणिज्य विषय का चयन करते समय यह भी पता लगाना उपयोगी है कि बालक में वाणिज्य विषयों के प्रति रुचि है अथवा नहीं। बालक में वाणिज्य विषयों के प्रति रुचि का पता लगाने के लिए शिक्षक

किसी रुचि-मापनी का प्रयोग कर सकता है अन्यथा वह अपनी स्वयं की भी [illegible] निर्मित कर सकता है। सफल अध्यापक यदि इस दिशा में अधिक न कर पाये [illegible] संक्षिप्त साक्षात्कार के द्वारा भी बालक की रुचि का पता लगा सकते हैं।

(3) **अभिरुचि-परीक्षण**—वाणिज्य विषय के लिए बालकों का चयन करते [illegible] उनकी वाणिज्य विषयों में अभिरुचि का पता लगाना बड़ा ही उपयोगी एवं आवश्यक [illegible] क्योंकि अभिरुचि भावी सफलताओं की सम्भावनाओं की ओर इशारा करती है। [illegible] बालक में वाणिज्य विषय के प्रति अभिरुचि है तो इसका तात्पर्य है कि वह सम्भावना प्रबल है कि वह बालक वाणिज्य विषयों में अच्छी उपलब्धियाँ प्राप्त कर सकेगा। [illegible] की अभिरुचि पर ही उसकी वाणिज्य विषयों में सम्भावित भावी प्रगति निर्भर करती है। अतः वाणिज्य विषयों के लिए छात्रों का चयन करते समय बालक की अभिरुचियों को [illegible] शिक्षण को पता लगाना चाहिए। इस कार्य के लिए शिक्षक किसी भी अच्छी एवं उपयुक्त अभिरुचि मापनी का प्रयोग कर सकता है।

(4) **निष्पत्ति-परीक्षण**—वाणिज्य विषयों के लिए छात्रों का चयन करते समय छात्र की गत शैक्षिक निष्पत्तियों (Achievements) का तथा वर्तमान शैक्षिक स्तर का भी पता लगाना चाहिए। यदि बालक की गत निष्पत्तियों तथा वर्तमान शैक्षिक स्तर औसत से अच्छा है तभी उसे अध्ययन के लिए वाणिज्य विषय देने चाहिये। क्योंकि वाणिज्य-विषय एक ऐसा विषय है जिसका हर छात्र सफलतापूर्वक अध्ययन नहीं कर सकता है। वाणिज्य-विषय के अध्ययन के लिये बालक को कड़ा परिश्रम करना पड़ता है, इसमें पर्याप्त अभ्यास तथा सूझ-बूझ की भी आवश्यकता होती है। छात्र की गत निष्पत्तियों का ज्ञान अध्यापक छात्र की पिछली कक्षाओं के प्रगति-पत्रकों (Progress Report) से सहज ही कर सकता है तथा वर्तमान शैक्षिक स्तर का पता लगाने के लिए किसी अच्छे निष्पत्ति परीक्षण (Achievement Test) का प्रयोग कर सकता है। आवश्यक होने पर वह अपना स्वयं का निष्पत्ति परीक्षण भी निर्मित कर सकता है।

वाणिज्य-विषय के लिये छात्रों का चयन करने के लिये उक्त तथ्यों के अलावा कुछ अन्य सामान्य तथ्यों को भी ध्यान में रखना चाहिए। इस प्रकार के कुछ सामान्य तथ्य निम्नांकित हैं—

(1) **सामान्य सूचनायें**—वाणिज्य-विषयों के लिये छात्रों का चयन करते समय छात्रों के सम्बन्ध में कुछ उपयोगी सामान्य सूचनायें भी एकत्रित करनी चाहिये। इस प्रकार की सामान्य सूचनाएँ आवश्यकता पड़ने पर बड़ी उपयोगी साबित होती हैं। इस प्रकार की सूचनाओं में छात्र का नाम, उसके माता-पिता का नाम, उनकी शैक्षिक योग्यता, उनका व्यवसाय, पता, आयु तथा आय, भाई तथा बहन, निवास की परिस्थितियाँ आदि को सम्मिलित किया जा सकता है।

(2) **शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य**—वाणिज्य-विषयों के लिये छात्रों का चयन करते समय छात्रों के शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य का भी अध्ययन चयनकर्त्ताओं को करना चाहिये। शैक्षिक स्तर पर बालक के शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य का उल्लेखनीय एवं स्पष्ट प्रभाव पड़ता है। वाणिज्य विषयों के अध्ययन के लिये ऐसे छात्रों का चयन किया जाय जिनका शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य अच्छा तथा सन्तुलित हो।

(3) **भावी योजनायें तथा आकांक्षायें**—वाणिज्य-विषय लेने वाले छात्र की भावी योजनायें तथा आकांक्षाएँ क्या हैं। इस बात का भी शिक्षक को पता करना चाहिये क्योंकि भावी योजनाओं तथा आकांक्षाओं का छात्र की उपलब्धियों पर उल्लेखनीय प्रभाव पड़ता है। उदाहरण के लिए, जो छात्र भविष्य में लिपिक बनना चाहता है वह अधिक परिश्रम नहीं करना चाहेगा जबकि वह बालक जो सी० ए० बनना चाहता है वह निश्चित रूप से अधिक परिश्रम करेगा। निश्चित रूप से उसकी शैक्षिक निष्पत्तियाँ अच्छी रहेंगी। अतः छात्रों का चयन करते समय उसकी आकांक्षाओं तथा भावी योजनाओं का भी पता लगाना चाहिए और सामान्यतः उन्हीं छात्रों को प्रवेश देना चाहिये जिनकी भावी योजनाएँ तथा आकांक्षाएँ ऊँची हों।

उक्त तथ्यों के आधार पर यदि छात्रो का चयन किया जाये तो निश्चित रूप से वाणिज्य-विषयों के लिए ऐसे छात्र आयेंगे जो भविष्य में अच्छी निष्पत्ति प्राप्त कर सकते हैं तथा एक सफल वाणिज्यिक बन सकते हैं। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि इन सभी तथ्यों से बुद्धि तथा अभिरुचि सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। अतः अध्यापक को कम-से-कम इन तथ्यों का विचार तो अवश्य ही करना चाहिये।

वाणिज्य विषय के लिये छात्रों का चयन

वाणिज्य विषय एक विशिष्ट विषय है जिसका सफलतापूर्वक अध्ययन करना हर सामान्य छात्र के लिये सम्भव नहीं है। इस विषय में वही छात्र सफलता प्राप्त कर सकता है जिसमें नीचे लिखे हुए कतिपय विशिष्ट गुण हों—

(1) **उच्च बौद्धिक स्तर**—वाणिज्य विषय में वही छात्र सफलता प्राप्त कर सकते हैं जिनका बौद्धिक स्तर पर्याप्त मात्रा में उच्च हो। वाणिज्य में बहीखाता अंकगणित आदि कई ऐसे विषय हैं जो उच्च बौद्धिक क्षमतायें चाहते हैं। इसलिये सामान्य बुद्धि बालक वाणिज्य विषय में अपेक्षाकृत सफलता प्राप्त नहीं कर सकते हैं।

(2) **गणितीय ज्ञान**—वाणिज्य विषय का अध्ययन करने के लिये जिन छात्रों का चयन किया जाय उन्हें गणित सम्बन्धी अच्छा ज्ञान होना चाहिये। वाणिज्य के अनेक विषय, जैसे—एकाउन्टेसी, अर्थशास्त्र, सांख्यिकी, औद्योगिक वित्त आदि ऐसे विषय हैं जिनमें सफलता पाने के लिये पर्याप्त मात्रा में गणितीय ज्ञान होना आवश्यक है।

(3) **लगनशीलता**—वाणिज्य विषय के अध्ययन के लिये जिन छात्रों का चयन किया जाय उनमें लगनशीलता हो। यह विषय न केवल अपेक्षाकृत कठिन ही विषय का अध्ययन कर सकते हैं जिनमें पर्याप्त लगनशीलता हो।

(4) **वाणिज्यिक अभिवृत्ति**—वाणिज्य विषय के लिये ऐसे छात्रों का चयन किया जाय जिनमें व्यवसाय के प्रति सम्मान हो तथा जिनमें वाणिज्यिक अभिवृत्ति हो, जो धैर्य तक शुद्धता के साथ कार्य कर सके तथा जिनमें दूरदर्शिता की मात्रा अधिक हो।

(5) **भावी-योग्यता**—वाणिज्य के छात्र को अनेक स्थलों पर उच्च भाषा-कौशल की आवश्यकता पड़ती है। उसे अनेक प्रकार के पत्र लिखने होते हैं, सारांशीकरण करना होता है, व्याख्या करनी होती है, तथ्यों का प्रस्तुतीकरण करना होता है तथा अनेक स्थलों पर विवरण तथा प्रतिवेदन देना होता है। इन कार्यों को तभी सफलतापूर्वक किया जा सकता है जब बालक के पास प्रचुर मात्रा में भाषागत योग्यता हो।

(6) वाणिज्य-अध्यापक एवं निर्देशन—आज विद्यालयों में निर्देशन की
तथा महत्त्व सर्वविदित है। विद्यालयों में यह कार्य सामान्यत: परामर्शदाता
किन्तु उन्हें जब तक विद्यालय-अध्यापकों की इस कार्य में सहायता न
कार्य में सफल नहीं हो सकते हैं। वास्तव में निर्देशन कार्य में सफल नहीं हो
वास्तव में निर्देशन कार्यक्रमों की सफलता में प्रत्येक विषय-अध्यापक की
होती है। वाणिज्य-शिक्षक को इस दिशा में नीचे लिखे कार्य करने चाहिये—

1. छात्रों की मानसिक योग्यताओं का पता लगाना—वाणिज्य-शिक्षक को
मानसिक योग्यताओं का पता किसी अच्छे बुद्धि-परीक्षण की सहायता से लगाना
इससे उसे न केवल वाणिज्य-विषय के लिये छात्रों का चयन करने में सुविधा
अपितु चयनित छात्रों के लिये वह उपयुक्त शिक्षण की भी व्यवस्था कर सकेगा।

2. छात्रों का अध्ययन—वाणिज्य शिक्षक के लिये यह भी आवश्यक है कि
अपने छात्रों के विषय में अधिक से अधिक सूचनायें एकत्रित करे। यह कार्य वह
माता-पिता से सम्पर्क करके मित्र-मण्डली तथा अन्य उपयुक्त मनोवैज्ञानिक परीक्षाओं
कर सकता है।

3. व्यावसायिक सूचनाओं का संग्रह—वाणिज्य अध्यापक को चाहिये कि
विभिन्न व्यवसायों का रोजगारों के सम्बन्ध में अधिक से अधिक सूचनायें एकत्रित
क्योंकि वाणिज्य विषय पूरी तरह रोजगारोन्मुख है।

4. सूचना-प्रसारण—वाणिज्य-शिक्षक विभिन्न व्यवसायों तथा रोजगारों के सम्बन्ध
सूचनायें एकत्रित करके उन सूचनाओं को छात्रों के मध्य प्रसारित करता है। इसके लिये
वह बुलेटिन-बोर्ड, भित्ति पत्रिका, सामयिक भाषण आदि उपायों को काम में ले सकता है।

5. परामर्श-कार्य—वाणिज्य शिक्षक को परामर्श देने का कार्य भी करना चाहिये।
वैसे तो परामर्श देने का कार्य परामर्शदाता का है किन्तु वाणिज्य-शिक्षक एक विशेष
परामर्श अपने छात्रों को अधिक भली प्रकार दे सकता है क्योंकि वह ही ऐसा व्यक्ति है
जो अपने छात्रों का सरलता से विश्वास प्राप्त कर सकता है। परामर्श के लिये छात्रों का
विश्वास प्राप्त करना अहम् भूमिका रखता है।

6. नियुक्ति सेवा कार्य—वाणिज्य शिक्षक के लिये यह भी आवश्यक है कि वह
केवल छात्रों का अध्ययन हेतु चयन करे, उसके लिये यह भी आवश्यक है कि वह
अध्ययन-काल में छात्रों की पूर्ण आवश्यक सहायता करे और उनके अध्ययन-काल के
छात्रों को रोजगार-अवसरों से परिचित कराये तथा उनको रोजगार में लिप्त होने में
उनकी आवश्यक सहायता भी करे। छात्रों का पूर्ण अध्ययन करने के बाद उन्हें परामर्श
देना कि उनके लिये कौन-सा व्यवसाय, नौकरी या रोजगार उपयुक्त है, अध्यापक का
कार्य है और इसमें उसे छात्रों की पूर्ण सहायता करनी चाहिये।

7. अनुगमन-कार्य—उसके द्वारा पढ़ाये गये छात्र भावी जीवन में कितने सफल
रहे, उसके द्वारा प्रदत्त निर्देशन तथा परामर्श कहाँ तक सफल रहा, आदि का अध्ययन
करने के लिये उसे अनुगामी-सेवाओं (Follow-up services) का सहारा लेना चाहिए
जिससे वह अपनी कमी तथा अच्छाई जान सके। इसके लिये वह अपने छात्रों की
पूर्व-छात्र परिषद् (Old Boys Association) जैसी संस्था बना सकता है। उसे चाहिये
कि वह नाना उपायों से अपने भूतपूर्व छात्रों के साथ सम्पर्क बनाये रखे।

अभ्यास प्रश्न

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. निर्देशन का अर्थ बताइए तथा उसकी परिभाषा का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए।
2. वाणिज्य विषय एक विशिष्ट विषय है जिसका सफलतापूर्वक अध्ययन करना हर सामान्य छात्र के लिए सम्भव नहीं है। स्पष्ट कीजिए।

लघूत्तरात्मक प्रश्न

निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए—

(i) बुद्धि परीक्षण (ii) रुचि परीक्षण
(iii) शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य (iv) भावी योजनाएँ तथा आकांक्षाएँ

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. वाणिज्य-शिक्षण के पाठ्यक्रम को और आधुनिक व प्रगतिशील बनाने की आवश्यकता है।
(अ) सत्य (ब) असत्य
2. अध्यापक का व्यक्तित्व ..... एवं ..... होना चाहिए।
3. प्रशिक्षण से व्यावसायिक ..... व दक्षता प्राप्त होती है।

उत्तर—1. (अ) सत्य। 2. गत्यात्मक, प्रभावशाली। 3. जागरूकता।

16

वाणिज्य-शिक्षण हेतु सहगामी क्रियायें
(CO-CURRICULAR ACTIVITIES FOR COMMERCE TEACHING)

पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं से हमारा तात्पर्य उन क्रिया-कलापों से है जो छात्र के सर्वांगीण व्यक्तित्व विकास करने तथा शिक्षा के पूर्व-निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने में सहायता देती हैं। इस सम्बन्ध में प्रो० पठान ने इन क्रियाओं को परिभाषित करते हुए लिखा है, "पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं से तात्पर्य उन छात्र क्रियाओं से है जिनमें छात्र अध्यापक के मार्गदर्शन में कुछ उत्तरदायित्वों को सुनियोजित विधि से सम्पन्न करने के लिये भाग लेते हैं।"

"Co-curricular activities constitute, significant component of programme of student activities in which the students participate under the guidance of the teacher, assuming the responsibilities for planning these activities."

—Prof. Pathan

सहगामी क्रियाओं का महत्त्व

विद्यालय में पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं को अनेक दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। इन क्रियाओं के महत्त्व को नीचे लिखे बिन्दुओं पर स्पष्ट किया जा सकता है–

(अ) छात्रों के लिये–

(1) मूलप्रवृत्तियों का शोधन तथा मार्गान्तरीकरण करती है।
(2) नागरिकता की शिक्षा प्रदान करती है।
(3) सामाजिक भावना का विकास करती है।
(4) अवकाश के समय का सदुपयोग करना सिखाती है।
(5) व्यक्तित्व तथा अन्तर्निहित शक्तियों का विकास करती है।
(6) अनुशासन-स्थापना में सहायक होती है।
(7) मानवीय गुणों का विकास करती है।
(8) नैतिकता का विकास करती है।
(9) व्यावहारिक ज्ञान प्रदान करती है।
(10) मनोरंजन के स्वस्थ साधन जुटाती है।

(ब) विद्यालय के लिये–

(1) शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायक होती है।

(2) विद्यालय के वातावरण को आकर्षक तथा ओजपूर्ण बनाती है।
(3) विद्यालय को समाज के निकट लाती है।
(4) शिक्षण को सरस तथा प्रभावी बनाती है।
(5) छात्रों की अन्तर्निहित शक्तियों की पहचान करने में सहायक होती है।

(स) समाज एवं राष्ट्र के लिये–

(1) समाज की सभ्यता एवं संस्कृति की शिक्षा देती है।
(2) सामाजिक मूल्यों का विकास करती है।
(3) देशभक्ति तथा राष्ट्रीय एकता का पाठ पढ़ाती है।
(4) जागरूकता तथा सजगता का पाठ पढ़ाती है।
(5) प्रजातन्त्रात्मक मूल्यों का विकास करती है।
(6) नेतृत्व गुणों का विकास कर समाज व राष्ट्र को कुशल नेता प्रदान करती है।

सहगामी क्रियाओं के प्रकार

किसी विद्यालय में अनेकानेक पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं का विकास किया जा सकता है। इन सभी प्रकार की क्रियाओं को निम्नांकित वर्गों में विभक्त किया जा सकता है–

(1) शैक्षिक क्रियायें–साहित्य परिषद, विज्ञान-कला क्लब, भूगोल परिषद, वाणिज्य परिषद आदि।

(2) शारीरिक क्रियायें–सामूहिक खेल, परेड, ड्रिल, तैरना, साइकिल चलाना, नाव चलाना, एन० सी० सी० आदि।

(3) साहित्यिक क्रियायें–साहित्य सभा, वाद-विवाद परिषद पत्रिका-प्रकाशन, बुलेटिन बोर्ड, दीवार पत्रिका आदि।

(4) नागरिकता प्रशिक्षण सम्बन्धी क्रियायें–सहकारी भण्डार, बालबैंक, श्रमदान, बाल-सभा, स्वशासन, संसद आदि।

(5) संगीत तथा कला क्रियायें–संगीत-गोष्ठी, कवि-सम्मेलन, चित्रकला प्रतियोगिता, विद्यालय-बैण्ड, नृत्य आदि।

(6) शिल्प-कला क्रियायें–सिलाई, बुनाई, कढाई, मेंहदी रचना, खिलौना बनाना, जिल्दसाजी, रेडियो बनाना या सामान्य अन्य उपकरण बनाना, मोमबत्ती बनाना, साबुन बनाना आदि।

(7) सामान्य क्रियायें–भ्रमण, पिकनिक, ग्राम्य-पर्यवेक्षण, बालचर, स्काउटिंग, प्रौढ़-शिक्षा, प्राथमिक शिक्षा आदि।

(8) अन्य क्रियायें–टिकिट या सिक्के संग्रह, फोटोग्राफी, एलबम बनाना, संग्रहालय बनाना, सफाई एवं स्वच्छता अभियान आदि।

वाणिज्य-शिक्षण हेतु पाठ्यक्रम सहगामी क्रियायें
(CO-CURRICULAR ACTIVITIES FOR COMMERCE TEACHING)

वाणिज्य-शिक्षण के क्षेत्र में भी पाठ्यक्रम-सहगामी क्रियाओं को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। पाठ्यक्रम-सहगामी क्रियाओं की सहायता से वाणिज्य विषय के छात्र को इस

विषय से सम्बन्धित अनेक प्रकार की जानकारी सहज स्वाभाविक तथा
में प्रदान की जा सकती है। इन क्रियाओं के माध्यम से वाणिज्य-शिक्षण
आकर्षक बनाया जा सकता है। वाणिज्य-शिक्षण को प्रभावी बनाने के लिये
सहगामी क्रियायें अधिक सहायक सिद्ध हो सकती हैं—

(1) वाणिज्य क्लब, (2) वाणिज्य परिषद, (3) उपभोक्ता सहकारी भण्डार, (4)
बैंक या बचत बैंक, (5) पर्यवेक्षण तथा भ्रमण, (6) डाकघर संचालन, (7)
तथा सेमीनार, (8) विद्वजन भाषण, (9) वार्षिक पत्रिका तथा भित्ति-पत्रिका
(10) वाणिज्य-विषयक प्रतियोगितायें।

(1) वाणिज्य क्लब (Commerce Club)—छात्रों को वाणिज्य विषयों
तथा व्यावहारिक ज्ञान प्रदान करने के लिये वाणिज्य क्लब की स्थापना की
है। इस क्लब में वाणिज्य-विषयक क्रिया-कलापों में भाग लेकर वाणिज्य
सम्बन्ध में वास्तविक ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

(2) वाणिज्य परिषद (Commerce Association)—विद्यालय
विज्ञान-परिषद आदि के समान ही वाणिज्य-परिषद का भी गठन किया जा
यह परिषद अपने तत्त्वावधान में अनेक तत्सम्बन्धी क्रियाओं का
वाणिज्य-शिक्षण को प्रभावी तथा सरस बना सकती है। इस सम्बन्ध में
इस परिषद का अपना स्वयं का एक विधान हो तथा विधान के अनुसार ही
हो तथा यह परिषद ही विभिन्न सहगामी क्रियाओं का नियोजित ढंग से

(3) उपभोक्ता सहकारी भण्डार (Consumer's Store)—विद्यालय
सहकारिता के आधार पर उपभोक्ता भण्डार स्थापित किया जा सकता है जिसमें
लिये उपयोगी वस्तुयें छात्रों के द्वारा विक्रय की जायें। इस भण्डार का
शिक्षक की देखरेख में वाणिज्य छात्रों के द्वारा किया जाय। इस स्टोर के लिये
का क्रय-विक्रय, हिसाब-किताब रखना, हानि-लाभ का विवरण तैयार करना,
वितरित करना आदि सभी कार्य-क्षेत्रों के द्वारा ही किया जाय।

(4) बाल-बैंक या बचत बैंक—छात्रों में बचत की आदत डालने तथा सहकारिता
की भावना का विकास करने के लिये विद्यालय में बचत बैंक की स्थापना की जा सकती
है। इससे छात्र बैंकों तथा उनकी कार्य-प्रणाली के सम्बन्ध में सही, विस्तृत तथा
व्यावहारिक जानकारी प्राप्त कर सकते हैं, साथ ही उनमें छोटी-छोटी बचत करने की
आदत का विकास होता है।

(5) भ्रमण तथा पर्यवेक्षण—छात्रों को विभिन्न व्यावसायिक प्रतिष्ठानों, जैसे—
कल-कारखानों, उपभोक्ता भण्डारों, सहकारी समितियों, बैंक, डाकघर, बीमा-प्रतिष्ठानों
आदि का भ्रमण कराकर उनकी कार्य-विधि का पर्यवेक्षण कराकर उनके सम्बन्ध में
विस्तृत तथा वास्तविक जानकारी प्रदान की जा सकती है।

(6) डाकघर संचालन—विद्यालय प्रांगण में डाकघर के संचालन के द्वारा छात्रों को
डाकघर के संगठन, कार्य-प्रणाली, कार्यों तथा उसकी सेवाओं की विस्तृत तथा
व्यावहारिक जानकारी दी जा सकती है। यहाँ छात्र डाक डालने, प्राप्त करने, उनका
मूल्य, विभिन्न सेवाओं, खातों का रखना आदि की विस्तृत जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

(7) कार्य-गोष्ठी तथा सेमीनार—समय-समय पर या किसी निश्चित कार्यक्रम के
अनुसार विद्यालय में वाणिज्य विषयों पर कार्य-गोष्ठी तथा सेमीनार आयोजित की जा
सकती है जिनमें छात्र तथा अन्य विद्वान वाणिज्य विषय सम्बन्धी विषयों पर परिचर्चा या
विचार-विमर्श कार्यक्रम आयोजित कर सकते हैं।

(8) विद्वजन भाषण—समय-समय पर या किसी निश्चित कार्यक्रम के अनुसार
विद्यालय में वाणिज्य विषय के विद्वानों के भाषण आयोजित किये जा सकते हैं। ये
आमन्त्रणकर्ता किसी बैंक, बीमा कम्पनी, औद्योगिक प्रतिष्ठान अथवा वाणिज्य विषय के
ज्ञाता हो सकते हैं। ये अपने प्रतिष्ठान की कार्य-प्रणाली की सही, सच्ची तथा
विश्वसनीय जानकारी छात्रों को सहज ही प्रदान कर सकते हैं।

(9) वाणिज्य-पत्रिका—वाणिज्य-परिषद के तत्त्वावधान में वाणिज्य विषय वार्षिक
पत्रिका या साप्ताहिक अथवा मासिक भित्ति पत्रिका (Wall magazines) के प्रकाशन का
भी आयोजन किया जा सकता है। इससे छात्रों में लेखन की आदत विकसित होती है,
छात्र स्वाध्याय की ओर प्रवृत्त होते हैं तथा सम्पादन कार्य तथा प्रूफ-रीडिंग का कार्य भी
सीख जाते हैं।

(10) प्रतियोगितायें—समय-समय पर विद्यालय में वाणिज्य विषय से सम्बन्धित
विभिन्न प्रकार की प्रतियोगितायें आयोजित की जा सकती हैं। इस प्रकार की प्रतियोगिताओं
में हम नीचे लिखी सभी प्रकार की प्रतियोगिता सम्मिलित कर सकते हैं—

1. टंकण प्रतियोगिता,
2. आशुलिपि प्रतियोगिता,
3. कैश-बुक तैयारी प्रतियोगिता,
4. स्क्रेप बुक या एलबम प्रतियोगिता,
5. डाक टिकिट या सिक्का संग्रह प्रतियोगिता,
6. वाद-विवाद प्रतियोगिता,
7. निबन्ध लेखन प्रतियोगिता।

आवश्यक नहीं कि वाणिज्य शिक्षण के लिये इन्हीं प्रतियोगिताओं का संचालन
किया जाय, शिक्षक आवश्यकतानुसार अन्य इसी प्रकार की विषय सम्बन्धी प्रतियोगिताओं
का आयोजन कर सकते हैं।

(11) पुस्तक-बीमा योजना—बीमा सम्बन्धी ज्ञान प्रदान करने के लिये विद्यालय में
पुस्तक बीमा योजना लागू की जा सकती है। इस योजना से छात्र-बीमा सम्बन्धी विभिन्न
गतिविधियों का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। इससे छात्र सीखेंगे कि बीमा कैसे किया जाता है,
क्यों किया जाता है, इसके क्या लाभ हैं। क्षतिपूर्ति कैसे होती है तथा बीमा कार्यालय में रखे
जाने वाले कागजों, प्रपत्रों तथा रजिस्टरों की भी जानकारी उन्हें उपलब्ध होती है।

(12) प्रिय-कार्य (Hobbies)—वाणिज्य शिक्षण के क्षेत्र में प्रिय-कार्यों का भी
महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्रिय-कार्य जहाँ एक ओर आनन्द-प्राप्ति के साधन है वहीं वे समय
का सदुपयोग करना सिखाते हैं। कुछ प्रिय-कार्य तो छात्रों को अच्छा उत्पादक तथा
कारीगर भी बनने में सहायता देते हैं। प्रिय-कार्य छात्रों में साधन जुटाने की शक्ति
(Resourcefulness) का भी विकास करते हैं।

(13) वाद-विवाद—विद्यालय में छात्रों के लिये वाद-विवाद सभा का होना उपयोगी होता है। वाद-विवाद प्रतियोगितायें छात्रों में तर्क तथा चिन्तन करने की का विकास करती है। इससे छात्रों में समस्या समाधान शक्ति का विकास होता अपने विचारों को व्यवस्थित रूप से प्रस्तुत करने की क्षमता का निर्माण करते दूसरे के विचारों को ध्यानपूर्वक सुनकर ग्रहण करने की शक्ति विकसित होती प्रतियोगिताओं से छात्रों की भाषण कला का विकास होता है। वे समूह में सोचने व्यवहार करना सीखते हैं। वाद-विवाद का संचालन यदि जनतांत्रिक रूप से छात्रों ही किया जाये तो छात्रों में नेतृत्व गुण का विकास भी सम्भव होता है। इनसे छात्रों ज्ञान में वृद्धि होती है, उनके उच्चारण में शुद्धता आती है तथा स्वाध्याय की आदत का निर्माण होता है। वाद-विवाद में भाग लेने में वे अध्ययन करते हैं। उनमें संकोच आदि दब्बूपन की आदत का निवारण होता है।

विद्यालय को वाद-विवाद प्रतियोगिताओं का संचालन तथा व्यवस्था बड़ी कुशलता के साथ करनी चाहिये। इस सम्बन्ध में छात्रों के मानसिक तथा शारीरिक स्तर को ध्यान में रखना चाहिये। वाद-विवाद के विषय का बड़ी सावधानी से चुनाव किया जाये तथा विषय की सूचना छात्रों को निश्चित तिथि से काफी पूर्व ही दे दी जाये।

वाद-विवाद किन्हीं एक-दो छात्रों का ही एकाधिकार न हो, इनके लिये सभी छात्रों को भाग लेने को प्रेरित किया जाये।

वाद-विवाद सामाजिक विषयों से सम्बन्धित हो तो अच्छा है। वाद-विवाद का निर्देशन तथा संचालन बड़ी कुशलता से करना चाहिये।

सहगामी क्रियाओं की व्यवस्था एवं प्रशासन

विद्यालय में सहगामी क्रियाओं के संगठन, व्यवस्था तथा प्रशासन के समय निम्न बातों को ध्यान में रखना चाहिये—

(1) विविधता—विद्यालय में विविध क्रियाओं की व्यवस्था की जाये जिससे सभी छात्र व्यक्तिगत विभिन्नता के आधार पर अपनी इच्छा, रुचि एवं योग्यता के आधार पर इन क्रियाओं में भाग ले सकें।

(2) लोकतान्त्रिक सिद्धान्त—इनका संगठन व प्रशासन लोकतान्त्रिक पद्धति से होना चाहिये। इनके संचालन में अध्यापक तथा छात्र दोनों का ही पूर्ण सहयोग आवश्यक है।

(3) समय—सहगामी क्रियायें लम्बे समय तक न चले और जो कुछ भी चलें सामान्यतः वे विद्यालय समय में ही चलें।

(4) स्वीकृति—समस्त क्रियाओं के संचालन के लिये प्रधानाध्यापक की स्वीकृति आवश्यक है। कुछ क्रियाओं के लिये अभिभावकों की स्वीकृति भी आवश्यक है।

(5) रोचकता—सहगामी क्रियायें रोचक तथा सरस हों। उनमें रचनात्मकता का गुण भी आवश्यक है।

(6) निरीक्षण—इन योजनाओं का समुचित निरीक्षण किया जाये। निरीक्षक छिद्रान्वेषक न होकर उत्साहवर्द्धक तथा पथ-प्रदर्शक के रूप में होना चाहिये।

उपर्युक्त प्रमुख सिद्धान्तों के अलावा पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं के संचालन में निम्नलिखित सामान्य बातों को भी ध्यान में रखना अनिवार्य है—

(1) सभी छात्रों को इन क्रियाओं में भाग लेने के समान अवसर प्रदान किये जायें।
(2) किसी एक क्रिया को अनिवार्य न बनाया जाय।
(3) उच्च अधिकारियों का इनके संचालन में कम से कम हस्तक्षेप हो।
(4) इनके संचालन में छात्रों का अधिकाधिक सहयोग प्राप्त किया जाय।
(5) क्रिया के संचालन से पूर्ण उसका पर्याप्त प्रचार छात्रों में किया जाय।
(6) पर्याप्त वित्तीय साधनों की व्यवस्था की जाय।
(7) क्रिया के पूर्ण होने पर उसका मूल्यांकन किया जाये तथा उसका विधिवत् प्रतिवेदन तैयार करके उसे सुरक्षित रखा जाय।
(8) छात्रों को आवश्यक परामर्श व मार्गदर्शन करने की समुचित व्यवस्था की जाय।
(9) प्रत्येक सहगामी क्रिया का शैक्षिक मूल्य होना चाहिये।
(10) कोई भी क्रिया प्रारम्भ करने से पूर्व देख लिया जाय कि उसके संचालन हेतु पर्याप्त साधन व सुविधायें उपलब्ध हैं।
(11) प्रत्येक क्रिया का कार्य एक अध्यापक की देखरेख में करें किन्तु उसी अध्यापक को इंचार्ज बनाया जाय जिसमें उस क्रिया के संचालन हेतु रुचि व योग्यता हो।
(12) एक समय में कई प्रकार की क्रियायें एक साथ प्रारम्भ न की जायें।
(13) इनके सम्पादन से समय समाज तथा सामाजिक संस्थाओं का पूरा-पूरा सहयोग प्राप्त करने के प्रयास किये जायें।
(14) इन क्रियाओं से संचालन में क्रिया के बाह्य मूल्य की अपेक्षा आन्तरिक परिणामों को अधिक महत्त्व दिया जाय।
(15) क्रियाओं का प्रचार समाज में करना आवश्यक है जिससे छात्र, विद्यालय तथा समाज एक-दूसरे के निकट आयेंगे।

अभ्यास-प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न

1. वाणिज्य शिक्षण हेतु पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए।

लघु उत्तरात्मक प्रश्न

1. सहगामी क्रियाओं का क्या महत्त्व है ?
2. सहगामी क्रियाओं के प्रकार बताइए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. टौने ए० हरबर्ट की पुस्तक का नाम लिखिए।
2. वाणिज्य संकाय के लिए कितने कमरे अवश्य होने चाहिए ?
   (अ) चार (ब) पाँच
   (स) दो (द) छः

उत्तर—1. वाणिज्य शिक्षा के सिद्धान्त। 2. (ब) पाँच।

17

वाणिज्य का अध्यापक

(TEACHER OF COMMERCE)

शिक्षण एक आध्यात्मिक प्रक्रिया है जिसमें ज्ञान का ज्ञान के साथ सम्बन्ध स्थापित कराया जाता है और इस सम्बन्ध को स्थापित कराने वाला अध्यापक ही होता है। अध्यापक के लिए यह कहा जाता है कि यह वह धुरी है जिसके चारों ओर सम्पूर्ण शैक्षिक व्यवस्था चक्कर लगाती है। जैसा कि प्रायः कहा जाता है अध्यापक आज भी शैक्षिक प्रक्रिया में प्रमुख व्यक्ति है। वह विद्यालय की गत्यात्मक शक्ति है। विद्यालय भवन एवं साज-सज्जा महत्त्वपूर्ण है और ठीक वैसा ही स्थान पाठ्यक्रम, पाठ्य-पुस्तकों और प्रयोगशाला आदि का है लेकिन इन उपरोक्त सभी बातों के होते हुए भी अध्यापक विहीन विद्यालय आत्मा रहित शरीर के समान है। अध्यापक की महत्ता बतलाते हुए टी. रेमन्ट ने कहा कि "योजना चाहे कितनी ही व्यापक क्यों न हो, विद्यालय का भंवन चाहे कितना ही व्यापक क्या न हो, साज सज्जा कितनी ही आकर्षक क्यों न हो, जब तक उस योजना को क्रियान्वित करने वाले अध्यापक सुयोग्य नहीं होंगे तब तक वह योजना उसी प्रकार निरर्थक एवं व्यर्थ सिद्ध होगी जिस प्रकार एक अनाड़ी के हाथों में एक सुन्दर यन्त्र की स्थिति होती है। अध्यापक को समाज व राष्ट्र निर्माता भी कहा जाता है तथा उसे मानव अभियन्ता की संज्ञा भी दी जाती है।

आज शिक्षा जगत विशेषीकरण के युग में प्रवेश कर गया है। अनेकानेक गुणों के होते हुए भी वाणिज्य के अध्यापक में विषय के विशेष अध्यापन की योग्यता व कुशलता उसकी सफलता के आयाम माने जा सकते हैं। वाणिज्य एक व्यावहारिक विषय है यह केवल पुस्तकीय ज्ञान से ही न्यायसंगत शिक्षण नहीं प्रदान कर सकता है। वाणिज्य की कई शाखाएँ तथा उपशाखाएँ हैं इनके लिए वाणिज्य के अध्यापक में विकसित एवं व्यावहारिक ज्ञान आवश्यक है। शिक्षा सम्पादन कार्य वाणिज्य के अध्यापक में अनेकानेक गुणों की अपेक्षा रखता है। वाणिज्य के अध्यापक के लिए कोई व्यापक एवं सही सूची प्रस्तुत करना सरल कार्य नहीं है फिर भी वाणिज्य के अध्यापक में निम्नांकित गुणों की अपेक्षा की जा सकती है—

(1) शिक्षण व्यवसाय के प्रति निष्ठा भाव—अध्यापन कार्य एक व्यवसाय नहीं है। यह तो स्वेच्छा पर आधारित एक नैतिक कार्य है। अतः एक अच्छे अध्यापक की सर्वप्रथम शर्त यह है कि वह शिक्षक के अतिरिक्त और कुछ न हो उसमें अपने शिक्षण व्यवसाय के प्रति प्रेम-लगाव व निष्ठा भावना होनी चाहिए। जो व्यक्ति शिक्षण के प्रति प्रेम

निष्ठा नहीं रखता उसे कभी भी अध्यापन कार्य स्वीकार नहीं करना चाहिए। शिक्षा जगत को ऐसे व्यक्तियों से सर्वाधिक क्षति उठानी पड़ती है जो अनिच्छा से अध्यापक बन जाते हैं। ऐसे व्यक्तियों को मन अध्यापन कार्य में कभी नहीं लगता है ऐसे व्यक्ति अपना कार्य न्याय युक्त ढंग से सम्पन्न नहीं कर पाते हैं। उसमें चाहे अन्य कितने ही गुण क्यों न हो। इस गुण के अभाव में वह कभी भी सफलता प्राप्त नहीं कर सकता है। वाणिज्य के अध्यापक में भी जब तक अपने व्यवसाय के प्रति निष्ठा भावना नहीं होगी वह शिक्षण कार्य में सफलता प्राप्त नहीं कर पायेगा। व्यवसाय के प्रति निष्ठा भावना ही वाणिज्य के अध्यापक को अपने शिक्षण कार्य में दक्ष एवं कुशल बनाती है। वाणिज्य के अध्यापक में अन्य गुणों के प्रदर्शन तथा प्रयोग के लिए व्यावसायिक निष्ठा का होना आवश्यक है।

(2) विषय का ज्ञान—शिक्षण व्यवसाय के प्रति निष्ठा भावना के साथ-साथ वाणिज्य-शिक्षण में वाणिज्य विषय के प्रति भी निष्ठा भावना होनी चाहिए। यदि शिक्षक में विषय के प्रति निष्ठा नहीं है तो वह विषय शिक्षण में कभी रुचि नहीं लेगा। वाणिज्य शिक्षक को विषय के प्रति निष्ठा के साथ ही साथ विषय का विस्तृत एवं व्यापक ज्ञान होना चाहिए। वाणिज्य के अध्यापक को तत्सम्बन्धी सभी विषयों के आधारभूत नियमों व तथ्यों का ज्ञान होना आवश्यक है। यदि उसे इनका ज्ञान नहीं है तो वह अपने छात्रों की जिज्ञासाओं को शान्त नहीं कर पायेगा। अध्यापक विषय के पर्याप्त ज्ञान के अभाव में कक्षा को विश्वास के साथ नहीं पढ़ा पायेगा। वह छात्रों को ऐसे अवसर नहीं दे पायेगा जिससे छात्र प्रश्न पूछ कर शंकाओं का समाधान कर सकें। वाणिज्य के अध्यापक को अपने विषय के उपविषयों का भी पूरा ज्ञान होना आवश्यक है। शिक्षण के स्तर में सुधार लाने के लिए तथा विषय के शिक्षण से सम्बन्धित कौशल का विकास विकसित करने के लिए विषय का पूर्ण ज्ञान आवश्यक है। वाणिज्य के अध्यापक में व्यापक दृष्टिकोण के निर्माण के लिए विषय का उचित ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है। ताकि वह विषय के हर पक्ष की अधिकार पूर्वक व्याख्या प्रदान कर सके। वाणिज्य एक विस्तृत विषय है। इसका क्षेत्र बड़ा ही व्यापक है अतः उसे विभिन्न पुस्तकों के साथ-साथ समाचार पत्रों व पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से अपने ज्ञान को समूह व आधुनिक बनाने का सतत् प्रयास करते रहना चाहिए।

(3) व्यावसायिक प्रशिक्षण—वाणिज्यशास्त्र के अध्यापक को प्रशिक्षित होना अत्यन्त आवश्यक है। आधुनिक समय में शिक्षा के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए तथा शिक्षा क्षेत्र में व विषय क्षेत्र में हो रहे नवीन प्रयोग के प्रति जागरूक रहने के लिए व्यावसायिक प्रशिक्षण आवश्यक है। उचित व्यावसायिक प्रशिक्षण के बगैर राष्ट्रीय आकांक्षाओं की पूर्ति करना सम्भव नहीं हो सकता है और न शैक्षिक कार्य सफल हो सकते हैं। इसके साथ-साथ गुणात्मक सुधार लाने के लिए व्यावसायिक प्रशिक्षण को आवश्यक माना जाता है। वाणिज्य अध्यापक के लिए आवश्यक दक्षता व कौशलता के विकास के लिए व्यावसायिक प्रशिक्षण की महत्ता को सभी स्वीकारते हैं। वाणिज्य शिक्षा व क्षेत्र में व्यावसायिक प्रशिक्षण प्रदान करने में क्षेत्रीय महाविद्यालयों ने सराहनीय कार्य किया है। क्योंकि ये वाणिज्य-शिक्षण के लिए विशेष पाठ्यक्रम संचालित कर रहे हैं तथा विशेषज्ञ शिक्षण पद्धतियों के साथ-साथ आवश्यक ज्ञान व कौशल पर भी बल दे रहे हैं।

नहीं हो सकती है। किसी देश का अध्यापक वर्ग अनुशासित है तो वह राष्ट्र ... अनुशासित राष्ट्र का सर्जन करते हैं। अनुशासित अध्यापक नियमितता एवं ... पाबन्दी पर बल देता है। ये गुण आगे चलकर छात्रों को अनुशासित बनाने में ... प्रदान करते हैं। अनुशासनहीनता की अनेक समस्याओं का निराकरण अनुशासित ... अध्यापक से हो जाता है।

(10) जनतन्त्रात्मक दृष्टिकोण–आज के प्रजातान्त्रिक युग में एक ... अध्यापक का दृष्टिकोण प्रजातान्त्रिक होना नितान्त आवश्यक है। अध्यापक में ... स्वतन्त्रा, बन्धुत्व एवं न्याय आदि प्रजातन्त्र के प्रमुख सिद्धान्तों के प्रति अटूट आस्था होनी चाहिए। प्रत्येक छात्र के व्यक्तित्व का उसे आदर करना चाहिए। भेदभाव रहित ... न्यायोचित व्यवहार करना चाहिए। उसमें बालक की स्वतन्त्रता में अटूट आस्था होनी चाहिए ताकि वे निर्भय होकर अपनी अभिव्यक्ति कर सकें।

(11) शिक्षण कला में प्रवीण–शिक्षण कला का ज्ञान एक सफल अध्यापक की प्रमुख विशेषता होती है। प्रगतिशील शिक्षण-विधियों में वह दक्ष होना चाहिए। प्रो० ... के शब्दों में "अध्यापक को बाल अध्ययन में उत्साहित, अपने विषय में उत्साहित ... विधि के सम्बन्ध में उत्साहित होना चाहिए। उपयुक्त शिक्षण विधि के अभाव में उचित शिक्षा देना कठिन है। शिक्षा के उद्देश्य चाहें कितने ही महान क्यों न हो जब तक अध्यापक उपयुक्त विधि का प्रयोग नहीं करेगा तब तक वह उन उद्देश्यों की प्राप्ति नहीं कर सकेगा।

(12) नेतृत्व–अध्यापक को नेतृत्व की भूमिका भी निभानी होती है। उसे विद्यार्थियों व अन्य लोगों का मार्गदर्शन करना होता है। लेकिन यह नेतृत्व ऐसा होना चाहिए जो अपनी शक्ति और प्रभाव के लिए अपने उदात्त चरित्र एवं विद्यार्थियों की आदर भावना पर आधारित हो। वह मधुर सम्बन्धों द्वारा सम्मान अर्जित करता है। उसे वचन का पक्का एवं व्यवहार में शिष्ट होना चाहिए। तभी वह अपने विद्यार्थियों एवं समुदाय का सफल नेतृत्व कर सकेगा।

अभ्यास-प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न

1. वाणिज्य शिक्षक के लिये आवश्यक गुणों की चर्चा कीजिये।
2. वाणिज्य शिक्षक में किन-किन विशेषताओं का होना आवश्यक समझते हैं ?

लघु उत्तरात्मक प्रश्न

1. वाणिज्य शिक्षक के लिये प्रशिक्षण प्राप्त होना क्यों आवश्यक है ?
2. वाणिज्य अध्यापक को सामाजिक, आर्थिक समस्याओं का ज्ञान होना क्यों आवश्यक है ?
3. वाणिज्य अध्यापक कुछ गुणों का विकास कर सकता है तथा कुछ का नहीं। बताइये वह किन गुणों का विकास कर सकता है।

...निष्ठ प्रश्न

1. समन्वय या सहसम्बन्ध का अर्थ है दो या अधिक वस्तुओं, घटनाओं या विचारों में सम्बन्ध स्थापित करना।
   (अ) सत्य (ब) असत्य
2. शिक्षाक्रम के विभिन्न विषयों का परस्पर सम्बन्ध स्थापित करना कौन-सा समन्वय कहलाता है ?
   (अ) शीर्षस्थ (ब) अनुप्रस्थीय
3. वाणिज्यशास्त्र का किस विषय से घनिष्ठ सम्बन्ध है ?
   (अ) अर्थशास्त्र (ब) भूगोल
   (स) समाजशास्त्र (द) मनोविज्ञान

उत्तर–1. (अ) सत्य। 2. (ब) अनुप्रस्थीय। 3. (अ) अर्थशास्त्र।

18

वाणिज्य कक्ष
(COMMERCE ROOM)

टौने. ए. हरबर्ट ने अपनी पुस्तक "वाणिज्य शिक्षा के सिद्धान्त" में वाणिज्य के अर्थ स्पष्ट करते हुए कहा है "वाणिज्य आर्थिक ढाँचे का वह पहलू है जो व्यवसाय और औद्योगिक उत्पादन के प्रबन्ध एवं वितरण से सम्बन्धित है और इस प्रकार सम्पूर्ण आर्थिक ढाँचे का समन्वय करने वाला तत्त्व है।"

राष्ट्र के आर्थिक विकास के साथ-साथ वाणिज्य व उद्योग का भी तीव्र गति से विकास हो रहा है। आज वाणिज्य शिक्षा की आवश्यकता बढ़ती ही जा रही है। विश्व जगत में वाणिज्य का भविष्य उज्ज्वल है। इस स्थिति में अध्यापकों, समाज के कर्णधारों, शिक्षा विभाग व सरकार को सही भूमिका निभाने की आवश्यकता है। वाणिज्य शिक्षा के व्यावसायिक पक्ष पर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है ताकि छात्र भविष्य में सही व्यापारिक इन्सान बन सकें तथा रोजगार स्वयं उनके दरवाजे पर दस्तक दें। आज शिक्षा जगत में छात्रों को कई प्रकार की क्रियाओं के सम्बन्ध में जानना आवश्यक है। विषय के उचित समन्जन के लिए यह आवश्यक है कि छात्र क्रियाशील होकर करें ताकि उनमें उचित कौशलों का विकास हो सके।

आज का युग विशेषीकरण का युग है इसमें मशीनों के व्यापक प्रयोग से वाणिज्य क्षेत्र बहुत व्यापक हो गया है। समस्त आर्थिक और व्यापारिक क्रियाएँ वाणिज्य के क्षेत्र में आ गई हैं। वाणिज्य-शिक्षण में अनेक प्रकार के उपकरणों की आवश्यकता होती है। हमारे वर्तमान माध्यमिक विद्यालयों में इनका अभाव सर्वत्र दिखलाई देता है। वाणिज्य एक व्यावहारिक विषय है इसके अनेक उपविषय हैं। जैसे व्यापार पद्धति, बहीखाता, वाणिज्यिक भूगोल, आशुलिपि, टंकण आदि इनका व्यावहारिक ज्ञान छात्रों के लिए नितान्त आवश्यक है। आज शिक्षाशास्त्री क्रिया प्रदान शिक्षा पर बल देते हैं। करके सीखने के सिद्धान्त पर अधिक बल दिया जा रहा है। छात्र को यदि पत्र फाइल करने के केवल सिद्धान्त बता दिये जायें तो वे उपयोगी साबित नहीं हो सकते हैं। यही बात टाइप पर भी लागू होती है। छात्रों में यदि उचित व्यावसायिक कुशलता का विकास करना है तो विज्ञान की तरह वाणिज्य के भी अलग-अलग कक्ष बनाने होंगे और उन्हें विभिन्न साधनों व उपकरणों से सुसज्जित करने होंगे।

वाणिज्य के शिक्षण को प्रभावशाली बनाने के लिये वाणिज्य कक्ष की नितान्त आवश्यकता को सर्वत्र स्वीकारा गया है क्योंकि वाणिज्य का अलग कक्ष विषय के लि

अनुकूल वातावरण का सृजन करता है। कक्षा अध्यापक को अध्यापन के समय विषयगत सामग्री को उठाकर एक कक्ष से दूसरे कक्ष तक नहीं ले जाना पड़ता उससे मुक्ति मिलेगी तथा समय का अपव्यय भी होने से बचता है। विषय की सारी सामग्री एक ही स्थान पर उपलब्ध होने से छात्रों व अध्यापकों को दोनों को ही लाभ होता है। अध्यापक कक्ष में मौजूद साधनों से विषय की व्याख्या आसानी से कर पाता है तथा छात्रों से भी व्यावहारिक रूप से करा सकता है फलस्वरूप इस प्रकार से अर्जित ज्ञान अधिक समय तक स्थायी ज्ञान होता है। वाणिज्य कक्ष के उपकरण अपना विशेष शैक्षिक महत्त्व रखते हैं क्योंकि इन उपकरणों को शैक्षिक महत्ता उसके संचालक विषय के अध्यापक की दक्षता पर निर्भर करती है। विद्यालय में वाणिज्य कक्ष होने से उपकरणों व मशीनों जैसे स्टीथो प्रेस व टाइप मशीनें इन्हें सुरक्षा व स्थायित्व भी प्रदान किया जा सकता है। विद्यालय में वाणिज्य कक्ष छात्रों के मानसिक विकास के लिए भी उचित धरातल प्रदान करता है। इससे हम छात्रों की तर्क शक्ति व चिन्तन शक्ति व निर्णय शक्ति को नई दिशा प्रदान कर सकते हैं। वाणिज्य कक्ष व उसकी साधन सम्पन्नता वाणिज्य का शिक्षण पूरा नहीं कहा जा सकता है। उपरोक्त तथ्यों के आधार पर वाणिज्य के कक्ष कों वाणिज्य की वास्तविक प्रयोगशाला कह सकते हैं अतः स्पष्ट है कि वाणिज्य कक्ष का वाणिज्य शिक्षण में छात्र व अध्यापक दोनों की ही दृष्टि से महत्त्व होता है।

वाणिज्य कक्ष कैसा हो

वाणिज्य कक्ष कैसा हो, इस सन्दर्भ में जब विचार करते हैं तो यह जानना चाहिए कि मख्य कक्ष कैसा हो, कितना बड़ा है उसमें क्या-क्या उपकरण हो, उसमें वायु व प्रकाश की व्यवस्था किस प्रकार की हो, छात्रों के बैठने का स्थान कहाँ व कैसे हो तथा अन्य कक्ष कितने हों, उनमें क्या-क्या सुविधाएँ होनी चाहिए ताकि छात्र वहाँ अधिक से अधिक व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त कर सके तथा विषय के शिक्षण को सफल बनाया जा सके। यथासम्भव वाणिज्य कक्ष तल स्थल के ऊपर होना चाहिए ताकि छोटे-बडे उपकरण सुविधाजनक ढंग से लगाये जा सकें। इससे टाइप मशीनों की तथा अन्य मशीनों की आवाजें अन्य कक्षाओं को ध्यान न बँटा सके। छात्रों की संख्या को ध्यान में रखकर वाणिज्य कक्ष बनाया जाना चाहिए। आवश्यकतानुसार व समय के अनुसार अधिक छात्रों की आवश्यकताओं को भी इसमें ध्यान में रखना चाहिए। अध्यापकों के लिए भी अलग कक्ष होना चाहिए।

किसी माध्यमिक विद्यालय में जहाँ वाणिज्य संकाय स्थापित किया गया है वहाँ वाणिज्य संकाय के लिए आदर्श रूप में 5 कमरे अवश्य होने चाहिए—

(1) वाणिज्य का प्रमुख कक्ष
(2) टंकण एवं आशुलिपि कक्ष
(3) यन्त्र कक्ष
(4) बहीखाता कक्ष
(5) कम्प्यूटर कक्ष

सम्भवतः ये चारों कमरों की स्थिति आसपास में ही होनी चाहिए ताकि आवश्यकतानुसार उनमें से एक-दूसरे कमरे में आने-जाने की सुविधा हो।

(1) वाणिज्य प्रमुख कक्ष—वाणिज्य का प्रमुख कक्ष अन्य कमरों से तीन गुना बड़ा होना चाहिए और इस कमरे से अन्य कमरों में आने-जाने का मार्ग होना चाहिए। अन्य

कमरे विश्वविद्यालयी कक्षाओं की तरह सीढीनुमा हो तो उपयुक्त रहता है। उनमें बैठने की कुर्सियो की व्यवस्था भी उसी के अनुरूप बनाई जानी चाहिए तथा कक्ष में प्रकाश की उचित व्यवस्था होनी चाहिए। प्रकाश की उचित व्यवरथा के लिए खिडकियाँ बनाई जानी चाहिए। सामने की दीवार पर ही चाक पट्ट बनाया जाना चाहिए, ये काँच के बनाये जायें तो अधिक अच्छा व अधिक आयु के रहते हैं। इस कक्ष में वाणिज्य के उपकरणों को भी रखने की समुचित व्यवस्था होनी चाहिए। मुख्य कक्ष में अलमारियों व प्रोजेक्ट के लिए भी उचित स्थान प्रदान किया जाना चाहिए। इनके अलावा इस कक्ष में सन्दर्भ पुस्तकें व पत्र-पत्रिकाएँ भी रखने की दराज होनी चाहिए ताकि विषय को इनकी सहायता से परिपूरक करने में सुविधा रहे। अध्यापक का बैठने का स्थान इतना ऐसे स्थान पर होना चाहिए जहाँ से वह सभी उपस्थित छात्रों को नजर में रख सके। उनके कार्यो का निरीक्षण कर सके व आवश्यकतानुसार उचित निर्देश प्रदान कर सके।

मुख्य कक्ष के अलावा वाणिज्य कक्ष में अन्य कक्ष भी होते हैं आशुलिपि और बही खाते ऐसे विषय हैं जिनमें छात्रों का अवधान केन्द्रित करने की अपेक्षा की जाती है अतः ये कक्ष विद्यालय के अन्य सामान्य कक्षों से परे अलग तरफ होने चाहिए ताकि छात्रों का अवधान न बँट सके।

(2) टंकण एवं आशुलिपि कक्ष—इस कक्ष का आकार छात्रों की संख्या पर निर्भर करता है। टंकण व आशुलिपि सिखाने के लिए अलग कक्ष नितान्त आवश्यक है। इस कक्ष में मेजों पर छात्रों की संख्या के हिसाब से टंकण रखे होने चाहिए तथा एक ओर पत्र आदि लटकाने का स्टेण्ड होना चाहिए। सुविधानुसार छात्रों को पेपर ट्रे भी दी जानी चाहिए। इसमें प्रत्येक विद्यार्थी को 25 वर्गफुट की जगह मिलनी चाहिए। टंकण कक्ष का आकार 30' × 35' का होना चाहिए। टंकण कक्ष में पर्याप्त प्रकाश की भी व्यवस्था होनी चाहिए। इस कक्ष में दो श्यामपट होने चाहिए। सामने वाला टंकण अध्यापन के लिए तथा बायाँ आशुलिपि अध्यापन के लिए उचित रहता है। इनके अलावा बुलेटिन पत्र भी होने चाहिए। उपकरण रखने के लिए अलमारी भी होनी चाहिए, जिसमें टंकण से सम्बन्धित औजार उसमें रखे जा सकें। सामने दीवार पर टंकण सम्बन्धी चार्ट होने चाहिए।

(3) यन्त्र कक्ष—यह कक्ष विशेष रूप से वाणिज्य के उपकरण को रखने हेतु होता है। इस कक्ष का आकार अन्य कक्षों से कुछ छोटा होता है। अध्यापक आवश्यकतानुसार यहाँ से वाणिज्य शिक्षण को सफल बनाने हेतु उपकरण कक्षा में ले जाता है। इस कक्ष में भी प्रकाश की पर्याप्त व्यवस्था होनी चाहिए। इस कक्ष का एक दरवाजा टंकण कक्ष में एक बहीखाता कक्ष में खुलना चाहिये। इस कक्ष का आकार 18' × 25' का होना चाहिए। चार्ट मॉडल रखने हेतु उचित स्थान होना चाहिए तथा वाणिज्य की पुस्तकें रखने हेतु भी उचित स्थान होना चाहिए। इस कक्ष में एक तरफ खड़ी फाइल रखने की भी व्यवस्था होनी चाहिए। इस कक्ष में निम्न उपकरणों की व्यवस्था होनी चाहिए—

(1) पाठ्य-पुस्तकें, पत्र-पत्रिकाएँ सन्दर्भ पुस्तकें,
(2) गणना यन्त्र,
(3) विषय से सम्बन्धित चित्र, चार्ट, मॉडल आदि,
(4) टाइप राइटर,

(5) पंच करने की मशीन,
(6) खडी फाइल केबिनेट,
(7) रांटरी डुपलीकेटर,
(8) फ्रेकिंग मशीन का मॉडल
(9) लीथो प्रेस,
(10) कार्ड इन्डेक्स,
(11) आवक-जावक रजिस्ट्रार,
(12) बैंक मॉडल,
(13) मुद्रक यन्त्र,
(14) बीजक मुद्रण यन्त्र,
(15) कैलकुलेटिंग यन्त्र,
(16) ग्राफ बोर्ड एवं नक्शे,
(17) छेद करने की मशीन,
(18) स्क्रीन,
(19) प्रोजेक्टर,
(20) चेक लिखने की मशीन,
(21) विभिन्न बीमा प्रपत्र,
(22) मैजिक लैन्टर्न,
(23) दीवार घडी,
(24) रेडियो,
(25) टेप रिकार्डर,
(26) विभिन्न प्रकार के व्यापारिक प्रपत्र,
(27) टाइप सेटिंग यन्त्र,
(28) बहीखाता यन्त्र।

(4) बहीखाता एवं व्यापार पद्धति-कक्ष—बहीखाता एवं व्यापार पद्धति कक्ष सामान्य कक्षों की ही तरह एक कक्ष होना चाहिए। बहीखाता के लिए छात्रों के ध्यान की एकाग्रता की अधिक आवश्यकता होती है, अतः यह कक्ष वाणिज्य विभाग के एक तरफ बनाया जाय तो अधिक अच्छा रहता है ताकि शोरगुल न हो, शान्त वातावरण मिल सके। इस कक्ष का आकार 25' × 35' का होना चाहिए। इस कक्ष में हर छात्र के लिए कुर्सी व टेबल की व्यवस्था होनी चाहिए। बहीखाते में टेबल का आकार कुछ बडा हो तो ठीक रहता है। दीवार पर बुलेटिन पत्र होना चाहिए। कक्ष की दीवारों पर छात्रों व अध्यापिका द्वारा निर्मित चार्ट, मॉडल रेखाचित्र लगे होने चाहिए, उपकरण व यन्त्र आदि रखने के लिए अलमारियाँ होनी चाहिए।

(5) कम्प्यूटर कक्ष (Computer Room)—आज के वैज्ञानिक युग में कम्प्यूटर की उपयोगिता जीवन के हर क्षेत्र में बढ गई है। व्यापार, उद्योग, शिक्षा, शिक्षण, मनोरंजन, बैंक, बीमा, सैन्य-विज्ञान, ज्योतिष, भवन-निर्माण, चिकित्सा आदि जीवन के सभी क्षेत्रों में कम्प्यूटर की उपयोगिता प्रमाणित हो चुकी है। इसलिये वाणिज्य कक्ष (जिसे हम

वाणिज्य-शिक्षण की प्रयोगशाला भी कहें तो उत्तम है) के साथ एक कम्प्यूटर कक्ष भी होनी चाहिये। कम्प्यूटर कक्ष में छात्रों की संख्या के हिसाब से पर्याप्त कम्प्यूटर, प्रिन्टर, आवश्यक सोफ्टवेयर्स, फर्नीचर, आदि होने चाहिये। कम्प्यूटर कक्ष में प्रकाश की समुचित व्यवस्था हो, इसकी संरचना ऐसी हो कि कमरे में धूल आदि न जा सकें, कम्प्यूटर से सम्बन्धित साहित्य, फ्लॉपी, सी. डी. (C.D.) आदि रखने के लिये भी सुविधा एवं पर्याप्त व्यवस्था होनी चाहिये।

इस प्रकार उपरोक्त बातों को ध्यान में रखकर एक आदर्श वाणिज्य कक्ष तैयार कर सकते हैं, हालाँकि इन भौतिक सुविधाओं व साधनों के संग्रह करने में काफी आर्थिक सहायता की आवश्यकता होती है और यह विद्यालय की आर्थिक दशा पर निर्भर करता है कि वह इन उपरोक्त सुविधाओं को जुटाने में सक्षम है या नहीं। चूँकि शिक्षा राज्यों का विषय है और भारत में अधिकांशतः राज्यों की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं कही जा सकती है। अधिकतर माध्यमिक विद्यालय आवश्यक भवनों से भी वंचित हैं, तथा सामान्य सामग्री भी नहीं जुटा पाते हैं। अतः वे किसी संकाय के लिए अलग कक्ष की व्यवस्था व उपकरणों व यन्त्रों का ढेर लगाने में असमर्थ है, फिर भी वाणिज्य के अध्यापक को विषय की महत्ता को देखते हुए प्रधानाध्यापक, शिक्षा विभाग, बोर्ड व राज्य सरकारों का ध्यान निरन्तर इस ओर आकर्षित करते रहना चाहिए तथा **शनैः-शनैः** वाणिज्य कक्ष को समय के अनुरूप बनाने में प्रयत्नशील रहना चाहिए।

अभ्यास-प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न

1. "वाणिज्य के सफल शिक्षण के लिये विशिष्ट रूप से वाणिज्य कक्ष होना चाहिये।" इस कथन पर अपने विचार लिखिये।
2. वाणिज्य कक्ष की व्यवस्था आप किस प्रकार करेंगे ? स्पष्ट कीजिये।
3. वाणिज्य शिक्षण के लिये प्रमुख रूप से किन-किन कक्षों का होना आवश्यक है? प्रत्येक कक्ष का सामान्य परिचय दीजिये।

लघु उत्तरात्मक प्रश्न

1. वाणिज्य कक्ष कैसा होना चाहिये ? संक्षेप में लिखें।
2. कम्प्यूटर रूम के लिये आवश्यक साज-सज्जा का परिचय दीजिये।
3. वाणिज्य के यंत्र कक्ष के लिये आवश्यक यंत्रों की सूची बनाइये।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. पूर्व-निर्धारित उद्देश्यों तथा प्राप्त मूल्यों के अभाव में ..... मूल्यांकन नहीं हो सकता है।
2. निबन्धात्मक परीक्षाओं के लाभ किसने बताये हैं ?
   (अ) वेरस्ले तथा रॉन्सकी (ब) डॉ० एन० हसन
   (स) ड्यूवी (द) रॉबर्ट मैगर
3. वस्तुनिष्ठ परीक्षाएँ ..... पर आधारित होती हैं।

उत्तर—1. वास्तविक। 2. (अ) वेरस्ले तथा रॉन्सकी। 3. वस्तुस्थिति।

19

वाणिज्य का अन्य विषयों से सह-सम्बन्ध
(CORRELATION OF COMMERCE WITH OTHER SUBJECTS)

जीवन एक इकाई है, जीवन रूपी इस इकाई के अनेक पहलू होते हैं। जीवन के इन विभिन्न पहलुओं को एक दूसरे से पृथक नहीं किया जा सकता है। इनमें घनिष्ठ सम्बद्धता होती है। इन पहलुओं में एक पहलू ज्ञान भी है। ज्ञान के भी कई खण्ड तथा शाखाएँ होती हैं। हम इन विभिन्न खण्डों व शाखाओं को भी सम्बन्ध विहीन अवस्था में नहीं देख सकते हैं ज्ञान के समस्त खण्ड बाह्यरूप से पृथक्-पृथक् होते हुए भी मूल रूप में एक होते हैं। जिस प्रकार एक वृक्ष की सभी शाखाएँ एक दूसरे से अलग-अलग दिखलाई देती हैं किन्तु वे मूल के द्वारा एक दूसरे से सम्बन्धित होती हैं ठीक उसी प्रकार विभिन्न विषय अलग-अलग ज्ञान प्रदान करते हुए दिखलाई देते हैं किन्तु वास्तव में सभी विषय एक ही वस्तु में वृद्धि करते हैं वह है मानवीय ज्ञान। इसलिए विभिन्न विषयों को ज्ञान के पृथक्-पृथक् साधन सोचना भूल है, सभी एक हैं। हमको चाहिए कि हम विभिन्न विषयों से प्राप्त ज्ञान को पृथक्-पृथक् खण्डों में विभाजित करना भूल है। सभी विषय एक ही उद्देश्य की प्राप्ति करते हैं। फलतः उन्हें साथ ही साथ एक दूसरे से सम्बन्धित करते हुए पढ़ाना चाहिए तभी व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त हो सकता है। तभी हम सही ढंग से विषयों का आत्मीकरण कर सकते हैं। सभी ज्ञान अखण्ड हैं। उसके खण्ड करना एक बड़ी भूल है। अध्यापक को चाहिए कि ज्ञानार्जन की सुविधा की दृष्टि से इस अखण्डता को बनाये रखें।

समन्वय या सहसम्बन्ध का अर्थ है दो या अधिक वस्तुओं, घटनाओं या विचारों में सम्बन्ध स्थापित करना। शिक्षा में समन्वय या सहसम्बन्ध का अर्थ है विभिन्न विषयों का इस प्रकार से शिक्षण करना कि उनसे प्राप्त ज्ञान में सम्बन्ध हो। उन्हें एक दूसरे सहसम्बन्धित करके पढाया जाय। एक विषय को पढ़ाते समय कभी-कभी ऐसे सन्दर्भ आ जाते हैं जो दूसरे विषयों से सम्बन्धित होते हैं। इन सदर्भों को दूसरे विषय के साथ सम्बन्धित कर देना शिक्षा में समन्वय कहलाता है।

शिक्षा में समन्वय का सर्वप्रथम प्रयोग हरबर्ट ने किया। शिक्षा के क्षेत्र में समन्वय के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट करते हुए हरबर्ट ने कहा कि शिक्षा में समन्वय होना चाहिए जिससे एक विषय पढ़ाते समय यदि उसका सम्बन्ध अन्य विषय से कर दिया जाय तो विषय अधिक रोचक एवं आकर्षक बन जाता है। हरबर्ट ने किसी एक विषय

का ज्ञान इस प्रकार प्रदान करने को कहा कि वह ज्ञान अन्य विषयों के ज्ञान प्राप्त करने में सहायक हो। विभिन्न विषयों की विषय वस्तु इस प्रकार व्यवस्थित करनी चाहिए कि उनसे प्राप्त ज्ञान में एकता तथा अखण्डता हो। हरबर्ट ने जिस समय समन्वय का यह सिद्धान्त प्रस्तुत किया तब से लेकर अब तक समन्वय के क्षेत्र में अनेक परिवर्तन हो चुके हैं। अब शिक्षाशास्त्री न केवल विभिन्न विषयों में सहसम्बन्ध स्थापित करने की चेष्टा करते हैं। समन्वय के सम्बन्ध में अब वे एक ही विषय के विभिन्न अंगों में भी समन्वय की बात करते हैं। समन्वय के सम्बन्ध में इसके अलावा और भी अनेक परिवर्तन हुए हैं। जैसे हरबर्ट के शिष्य के समन्वय के स्थान पर 'केन्द्रीकरण' शब्द का प्रयोग किया है और ड्यूवी ने 'सामंजस्यीकरण' शब्द का प्रयोग किया है। शब्द चाहे कोई भी प्रयोग किया जाय उसके सिद्धान्त तथा उद्देश्य एक ही होते हैं।

समन्वय के प्रकार

वर्तमान समय में समन्वय के निम्नांकित तीन रूप देखने को मिलते हैं—

(1) शीर्षस्थ समन्वय।

(2) अनुप्रस्थीय समन्वय।

(3) जीवन से समन्वय।

(1) शीर्षस्थ समन्वय—जब एक ही विषय में विभिन्न अंगों में सम्बन्ध स्थापित किया जाता है तो उसे शीर्षस्थ समन्वय कहते हैं। वाणिज्य-शास्त्र के विभिन्न अंगों में सम्बन्ध स्थापित करना इसी प्रकार का समन्वय कहलाता है। जैसे वाणिज्य का अध्यापक देशी व्यापार पढाते समय देशी व्यापार के सम्बन्ध में जानकारी दे सकता है तथा बीजक एवं विदेशी बीजक में समन्वय स्थापित करा सकता है। इससे पाठ रोचक व प्रभावी बन जाता है। इस प्रकार का समन्वय शीर्षस्थ समन्वय कहलाता है।

(2) अनुप्रस्थीय समन्वय—शिक्षाक्रम के विभिन्न विषयों का परस्पर सम्बद्ध स्थापित करना अनुप्रस्थीय समन्वय कहलाता है जैसे वाणिज्य का वाणिज्यक.भूगोल, वाणिज्यिक अर्थशास्त्र से अनेकानेक तथ्यों की पुष्टि की जा सकती है। उपरोक्त विषय अलग-अलग दिखने के कारण इस रामन्वय को क्षैतिज समन्वय कहते हैं। अनुप्रस्थीय समन्वय दो प्रकार का होता है—

(अ) आकस्मिक अनुप्रस्थीय समन्वय।

(आ) व्यवस्थित अनुप्रस्थीय समन्वय।

(अ) आकस्मिक अनुप्रस्थीय समन्वय—यह वह समन्वय है जो बिना किसी पूर्व योजना के स्थापित किया जाता है। अध्यापक किसी एक विषय को पढाते समय कभी एक ऐसे स्तर पर आ जाता है जहाँ वह बड़ी सरलता के साथ प्रस्तुत विषय का सम्बन्ध किसी अन्य विषय से कर देता है। उसके लिए वह पहले से कोई योजना बनाकर नहीं आता है। जैसे अर्थशास्त्र पढ़ाते समय उसका अध्यापक भौगोलिक परिस्थितियों से सम्बन्ध स्थापित करा सकता है जैसे सूती वस्त्र उद्योग पढाते समय उत्पादन केन्द्र वहाँ की भौगोलिक परिस्थितियाँ, व कच्चे माल व उसकी उपयोगिता के साथ उसका सम्बन्ध जोड पाठ को और प्रभावी बना सकता है इसी प्रकार मूल्य पढाते समय माँग व पूर्ति के सिद्धान्त के साथ समन्वय स्थापित करा सकता है।

(आ) व्यवस्थित अनुप्रस्थीय समन्वय—यह वह समन्वय है जिसे शिक्षक जान बूझकर स्थापित करता है। वह कक्षा में प्रवेश करने से पूर्व ये सोचकर आता है कि उसे अपने विषय का अन्य विषयों से सम्बन्ध करना है। कक्षा में भी वह क्रमशः ऐसे प्रश्न व क्रियाएँ करता है जिससे वह अपनी योजना के अनुसार बनायी स्थिति पर आ सके और अपने विषय का अन्य किसी विषय से समन्वय स्थापित कर सके।

(3) जीवन से समन्वय—छात्र अपने जीवन से सम्बन्धित वस्तुओं में अधिक रुचि लेते हैं वे ऐसी वस्तुओं के सम्बन्ध में अधिक जानने की चेष्टा करते हैं जो उनके जीवन से सम्बन्धित होती है। इसी सिद्धान्त के आधार पर इस प्रकार के समन्वय की स्थापना हुई। इस समन्वय के अनुसार विषय-सामग्री को जीवन के साथ सम्बन्धित किया जाता है। वाणिज्य को जीवन से सम्बन्धित करने से तात्पर्य उसके नियमों व सिद्धान्तों का दैनिक कार्यों से सम्बन्ध स्थापित करना। इससे उन्हें व्यावहारिक ज्ञान की प्राप्ति होती है।

समन्वय के उद्देश्य

वाणिज्य-शास्त्र में रामन्वय के निम्न उद्देश्य कहे जा सकते हैं—

(1) पाठ्यक्रम की बोझिलता को कम करना।

(2) समय की बचत करना।

(3) शक्ति की बचत करना।

(4) व्यावहारिक ज्ञान प्रदान करना।

(5) सूची जाग्रत करना।

(6) ज्ञान की अखंण्डता को बतलाना।

(7) मानवीय सम्बन्धों को समझाना।

समन्वय से लाभ

शिक्षा में समन्वय स्थापित करने रो निम्नांकित लाभों की प्राप्ति हो सकती है—

(1) समन्वय के द्वारा समस्त विषयों का सामंजस्यीकरण होता है जिसके फलस्वरूप उनसे प्राप्त ज्ञान में भी एकता एवं अखण्डता आती है तथा अध्ययन सार्थक तथा सोद्देश्य हो जाता है। इस प्रकार का ज्ञान व्यक्तित्व के विकास में सहायक होता है।

(2) समन्वय शिक्षण को प्राकृतिक तथा स्वभाविक बनाता है। समन्वय से शिक्षा में व्याप्त कृत्रिमता का लोप हो जाता है। फलतः शिक्षा अधिक रोचक तथा आकर्षक बन जाती है।

(3) समन्वय संकुचित विशिष्टीकरण को रोकता है। समन्वय के कारण हमारा ज्ञान कुछ ही विषयों तक सीमित नहीं रहता है। हम सभी विषयों का ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं।

(4) समन्वय पाठ्यक्रम से अनेक विषयों की भीड़ को कम करता है तथा पाठ्यक्रम के भार को हल्का करता है। पाठ्यक्रमानुसार बालक को अनेक विषयों का अध्ययन कराया जाता है। अपने अपरिपक्व ज्ञान के कारण वह इन विभिन्न विषयों में सम्बन्ध स्थापित नहीं कर सकता है। उसे सभी विषय पृथक्-पृथक् मालूम पड़ते हैं। समन्वय इन सभी विषयों को एक करता है।

(5) समन्वय समय की बचत करता है। विभिन्न विषयों में कुछ पाठ एक
है। यदि समान पाठो को विभिन्न विषयाध्यापक पढ़ायें तो व्यर्थ ही
योग्य अध्यापक उनमे सम्बन्ध कराकर समय एवं श्रम की बचत करा सकता
समन्वित ज्ञान भी शीघ्र प्राप्त हो जाता है।

(6) समन्वय के कारण सभी विषय बोधगम्य बन जाते हैं। एक
ज्ञान को यदि हम दूसरे विषय में प्रयोग करें तो दूसरे विषय का ज्ञान
जाता है। इस प्रकार समन्वय विभिन्न विषयों में छात्रों की रुचि जाग्रत
प्रदान करता है।

(7) समन्वय द्वारा ज्ञान की अखण्डता से अवगत होते हैं। यदि छात्रों
विषय सम्बन्ध विहीन अवस्था में पढ़ाये जायें और उनमें सम्बन्ध स्थापित
जाय तो उनसे प्राप्त ज्ञान भी अव्यवस्थित छिन्न-भिन्न अवस्था में होगा।
होता है। उसे पृथक्-पृथक् खण्डों में विभाजित नहीं कर सकते हैं जिससे
प्राप्त ज्ञान भी अखण्डित तथा सम्बन्धित है।

(8) समन्वय ज्ञान को व्यावहारिक बनाता है। वाणिज्य एक व्यावहारिक
इसका केवल सैद्धान्तिक ज्ञान से इसके उद्देश्यों की प्राप्ति नहीं हो सकती है।
के अध्यापक को चाहिए कि वह वाणिज्य के विभिन्न नियमों व सिद्धान्तों का
जीवन में समन्वय स्थापित करे।

(9) समन्वय सम्पूर्ण शिक्षा को स्पष्ट एवं बोधगम्य बनाता है। उसके द्वारा
एक विषय में प्राप्त ज्ञान का प्रयोग दूसरे विषय को सीखने में कर सकते हैं। इस
सीखने में स्थानान्तरण सम्भव होता है तथा छात्र उन सभी लाभों को प्राप्त करते
शिक्षा के स्थानान्तरण से प्राप्त होते हैं।

वाणिज्य का अन्य विषयों से सह-सम्बन्ध

(1) वाणिज्यशास्त्र तथा अर्थशास्त्र।
(2) वाणिज्यशास्त्र तथा भूगोल।
(3) वाणिज्यशास्त्र तथा समाजशास्त्र।
(4) वाणिज्यशास्त्र तथा अंकशास्त्र।
(5) वाणिज्यशास्त्र तथा मनोविज्ञान।

(1) वाणिज्यशास्त्र तथा अर्थशास्त्र—वाणिज्यशास्त्र तथा अर्थशास्त्र का
घनिष्ट सम्बन्ध है। वाणिज्यशास्त्र को अर्थशास्त्र से तथा अर्थशास्त्र को वाणिज्य से
समझना गलत है। वाणिज्यशास्त्र में व्यापार, उद्योग आदि का अध्ययन किया जाता
दूसरे शब्दों में वाणिज्यशास्त्र के अन्तर्गत उत्पादन से विक्रय तक की समस्त क्रि
इसमें समाहित हैं। इसके साथ-साथ उपरोक्त क्रियाओं की संस्थागत कार्य प्रणालियों
अध्ययन भी इसके अन्तर्गत ही किया जाता है। अर्थशास्त्र मानव की आर्थिक क्रियाओं
अध्ययन के लिए धरातल प्रस्तुत करता है तथा वाणिज्यशास्त्र भी वित्त सम्बन्धी क्रि
का अध्ययन कराता है। वाणिज्य के अध्ययन का मुख्य उद्देश्य छात्रों को उद्योग आ
निर्यात, व्यापार, लेखा कार्य आदि का ज्ञान देना है ताकि वे व्यावहारिक जीवन
सफलतापूर्वक प्रगति पथ पर अग्रसर होते रहें। वाणिज्यशास्त्र में आर्थिक नियमों

अध्ययन सिखाया जाता है जबकि अर्थशास्त्र अनेकानेक वाणिज्यिक क्रियाओं का अध्ययन
कराता है। वाणिज्य उद्योग व्यापार आदि में सफलता का अर्जन करने हेतु विभिन्न
साधनों के बारे में जानकारी कराता है तो अर्थशास्त्र उन साधनों को बतलाता है। किसी
व्यापारी को अर्थशास्त्र की उचित जानकारी है तो वह श्रम, पूँजी के द्वारा व्यापार में
सफलता की ओर अग्रसर हो सकता है। अर्थशास्त्र के अध्यापक को चाहिए कि वह
वाणिज्यशास्त्र के साथ समन्वय कराके पढाये ताकि छात्रों को यह जानकारी मिल सके
कि किन आर्थिक परिस्थितियों में कौन-सा व्यापार या उद्योग सफल हो सकता है।
वाणिज्य का अध्यापक अर्थशास्त्र के मुद्रा, माँग व पूर्ति का नियम व्यापार ग्रेशम का
नियम, साख व साख-पत्र आदि के साथ उचित समन्वय स्थापित कर छात्रों को उचित व
अधिकतम सही ज्ञान प्रदान करा सकता है। अतः स्पष्ट है वाणिज्यशास्त्र के अध्ययन के
लिए अर्थशास्त्र का उचित ज्ञान आर्थिक नियमों की उचित जानकारी के लिए वाणिज्य
शास्त्र का अध्ययन आवश्यक है। अतः स्पष्ट है कि वाणिज्यशास्त्र व अर्थशास्त्र का
परस्पर घनिष्ट सम्बन्ध है।

(2) वाणिज्यशास्त्र तथा भूगोल—वाणिज्यशास्त्र व भूगोल में बडा निकट का
सम्बन्ध है। भूगोल की उपयोगिता इसलिए है कि यह विषय महत्त्वपूर्ण जीवन के लिए
व्यावहारिक ज्ञान प्रदान करने में सहायता प्रदान करता है। मानव जीवन का कोई भी
पहलू भूगोल से अलग नहीं किया जा सकता है। इसका क्षेत्र बडा ही व्यापक है। भूगोल
में संसार में किसी भी महाद्वीप व अक्षांश पर रहने वाले मनुष्यों की क्रियाओं,
परिस्थितियों, व उनकी मानवीय समस्याओं को समझाने में सहायता प्रदान करता है।
भौगोलिक दशाएँ ही किसी राष्ट्र की व्यापार उद्योग या कृषि में उन्नति व अवनति के
लिए आधार प्रदान करती है। जैसे भारत में सूती वस्त्र उद्योग के लिए गुजरात, महाराष्ट्र
की उपयोगिता से नकारा नहीं जा सकता है। वहाँ की काली मिट्टी, वर्षा, जलवायु
तापक्रम, शीत के साधन, व सस्ते श्रमिकों की उपलब्धता इस उद्योग के लिए उचित
स्थितियों का निर्माण करती है। इसी प्रकार वाणिज्यशास्त्र में भी विभिन्न राष्ट्रों के स्तर,
औद्योगिक विकास, व्यापार आदि का अध्ययन कराता है। वाणिज्यशास्त्र ज्ञान को
क्रियात्मक रूप दे कर उसे छात्रों के लिए बोधगम्य बनाने में सहायता प्रदान करता है।
अतः स्पष्ट है कि भूगोल व वाणिज्य एक-दूसरे के पूरक हैं। इनकी निकटता का
परिचायक यह है कि वाणिज्य में वाणिज्यिक भूगोल का बड़ा ही महत्त्वपूर्ण स्थान है।
अतः हम कह सकते हैं कि वाणिज्य व भूगोल के अध्यापकों में वांछित सहयोग व एकता
की भावना नितान्त आवश्यक है।

(3) वाणिज्यशास्त्र तथा मनोविज्ञान—मनोविज्ञान मानव के मन व आचरण का
अध्ययन करने वाला विषय है। इस विषय में मानवीय इच्छाओं, सुख-दुख, सन्तोष,
असन्तोष, रुचियों, अभिरुचियों, क्षमताएँ व मूल प्रवृत्तियों का अध्ययन किया जाता है। इन
उपरोक्त मनोवैज्ञानिक आधारों पर वाणिज्य के कई नियमों व सिद्धान्तों का निरूपण
किया जाता है। वाणिज्यशास्त्र में व्यापार पद्धति के अन्तर्गत समाज के लोगों की
इच्छाओं व आवश्यकताओं को ज्ञात किया जाता है। मनोविज्ञान समाज के लोगों की
क्या रुचियाँ हैं, क्या इच्छाएँ हैं, कैसे विज्ञान उन्हें प्रभावित कर सकते हैं उसे मनोविज्ञान

से समझा जा सकता है। मनोविज्ञान मनुष्य के समस्त प्रकार के क्रियाकलापों को
में समेटे हुए है। मनुष्य के विचार सामान्यतः अर्थ से प्रभावित होते हैं। एक
व्यापारी को वस्तुओं के उत्पादन से लेकर विक्रय तक की स्थिति के लिए
को जानना जरूरी है। इसी आधार पर वर्तमान में उद्योग तथा व्यापार का
नामक नए विषय का सृजन किया गया है। अतः उपरोक्त तथ्यों से स्पष्ट
वाणिज्यशास्त्र व मनोविज्ञान मे परस्पर गहरा सम्बन्ध निहित है। शिक्षकों को
कि वे इन दोनों विषयों में सहसम्बन्ध स्थापित कर अध्ययन कराये।

(4) वाणिज्यशास्त्र तथा समाजशास्त्र—वाणिज्यशास्त्र और समाजशास्त्र
दूसरे से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित हैं। समाजशास्त्र वह सामाजिक विज्ञान है
समाज मे मनुष्यों के सम्बन्धों, उनके रूपों, प्रकारों, क्रियाओं, घटनाओं आदि का
कराता है। इस प्रकार समाजशास्त्र के क्षेत्र में समाजशास्त्रीय पद्धति से अध्ययन
जाने वाले सभी विषय आ जाते हैं। इसमें सामाजिक परम्परा, सामाजिक
सामाजिक नियन्त्रण के कारक, सामाजिक घटनाओं के लक्षण तथा परस्पर
सभी पहलुओं का अध्ययन किया जाता है। इस प्रकार हमारे आर्थिक पहलू भी
के अन्तर्गत आते हैं। वाणिज्यशास्त्र समाज के लोगों को अनेकानेक स्रोतों से
उपार्जन करना तथा उनका विभिन्न साधनों से उपयोग करना सिखलाता है तथा
शास्त्र सामाजिक सम्बन्धों तथा उचित व्यवस्थापन के तरीके बतलाता है।
समाज दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। वाणिज्य में उत्पादक वर्ग किसी भी
उत्पादन करने से पूर्व समाज के लोगों की रुचि व आवश्यकताओं का अध्ययन
उसी के अनुरूप वस्तुएँ उत्पादित की जाती हैं। यही कारण है कि वाणिज्यिक
कार्य मे खुदरा-व्यापारी वर्ग, सेल्समेन आदि समाज के लोगों की आवश्यकता
अवगत कराते हैं। अतः स्पष्ट है कि उत्पादक वर्ग व उपभोक्ता वर्ग में
सामान्यरूपता के लिए वाणिज्यशास्त्र व समाजशास्त्र में उचित रीति से
आवश्यकता है ताकि आर्थिक कल्याण तथा सामाजिक कल्याण को सकारात्मक
प्रदान किया जा सके। अतः स्पष्ट है कि दोनों विषय एक-दूसरे के पूरक विषय
उचित समन्वय कराकर पढ़ाया जाना चाहिए।

(5) वाणिज्यशास्त्र तथा अंकशास्त्र—वाणिज्य तथा अंकशास्त्र एक दूसरे
घनिष्ट सम्बन्ध रखते हैं। अंकशास्त्र यानी गणित में आँकड़ों द्वारा कई प्रकार के
की पुष्टि की जाती है। वाणिज्य के नियमों, सिद्धान्तों के निर्धारण का आधार आँकड़ों
द्वारा किया जाता है। वाणिज्य आँकड़ों में सामान्यीकरण करता है तथा उनके आधार
नये तथ्यों की पुष्टि करता है जैसे राष्ट्रीय विकास से सम्बन्धित पंचवर्षीय योजनाओं
व्यय लक्ष्य क्या है। उद्योग, कृषि, व्यापार आदि में क्या उत्पादन लक्ष्य हैं। पिछले वर्षों
आगामी वर्षों में क्या अन्तर व समानताएँ हैं, इन्हें आँकड़ों के माध्यम से ही स्पष्ट
जा सकता है। वाणिज्य का आधार वास्तव में अंकगणित ही है। वाणिज्य के निम्नांकित
उपक्षेत्रों में गणित की सम्भावना से इन्कार नहीं किया जा सकता है। जैसे व्यापार,
व्यवस्था, माँग व पूर्ति का नियम, एकाउन्टेंसी, बुक-कीपिंग आदि-आदि। गणित के
उपरोक्त का उचित ज्ञान अर्जित नहीं हो सकता है। तुलनात्मक दृष्टि से विषय
प्रस्तुत करने हेतु अंकगणित आवश्यक है। इस प्रकार वाणिज्यशास्त्र तथा अंकशास्त्र

परस्पर गहरा सम्बन्ध है। इसीलिए कुछ विद्वानों का कहना है कि अंकशास्त्र के बिना
वाणिज्यशास्त्र बड़ा ही अस्त-व्यस्त व अस्थिर विषय बन जाता है। अतः स्पष्ट है कि
वाणिज्य के अध्यापक को अंकशास्त्र के साथ आवश्यक व उचित समन्वय को स्थापित
करने का प्रयास करना चाहिए।

(6) वाणिज्य तथा विज्ञान—वाणिज्य विज्ञान से भी सम्बन्ध रखता है। विज्ञान ने ही
वाणिज्य के समय व श्रम बचाने के विभिन्न यंत्र दिये हैं। इन यंत्रों की चर्चा हम पूर्व में ही
कर चुके हैं। इन यंत्रों ने वाणिज्य की बड़ी सहायता की है। साथ ही वाणिज्य भी इन
विज्ञानों की सहायता करता है। समाजशास्त्र तथा भौतिकशास्त्र दोनों ही वाणिज्य के
लिये सहायक हैं। इंजीनियरिंग भी वाणिज्य की सहायता करता है।

अभ्यास-प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न

1. शिक्षण में समन्वय से आपका क्या तात्पर्य है ? यह कितने प्रकार का होता है ? उदाहरण देकर स्पष्ट कीजिये।
2. शिक्षण में समन्वय स्थापित करने के उद्देश्यों तथा समन्वित शिक्षण के लाभों की चर्चा कीजिए।
3. वाणिज्य का कुछ प्रमुख सामाजिक विज्ञानों से सहसम्बन्ध स्थापित कीजिये।
4. "वाणिज्य शुद्ध विज्ञानों से भी सम्बन्धित है" कथन की पुष्टि कीजिये।

लघु उत्तरात्मक प्रश्न

1. समन्वित शिक्षण के कोई पाँच लाभ लिखिये।
2. समन्वित शिक्षण कितने प्रकार का हो सकता है ? प्रत्येक प्रकार का परिचय दीजिये।
3. वाणिज्य तथा मनोविज्ञान के मध्य क्या सहसम्बन्ध है ?
4. वाणिज्य का अंकशास्त्र से क्या सम्बन्ध है ? स्पष्ट कीजिये।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. इकाई योजना का व्यापक प्रयोग कब हुआ ?
   (अ) सन् 1940 (ब) सन् 1930
   (स) सन् 1920 (द) सन् 1950
2. विषयवस्तु की इकाई योजनाएँ कितने प्रकार की होती हैं ?
   (अ) चार (ब) दो
   (स) तीन (द) छः
3. क्रमबद्ध शिक्षण के लिए ..... नितान्त आवश्यक होता है।

उत्तर—1. (स) सन् 1920। 2. (स) तीन। 3. पाठ-योजनाएँ।

20

वाणिज्य-शिक्षण में मूल्यांकन
(EVALUATION IN COMMERCE TEACHING)

1. मूल्यांकन का अर्थ

"मूल्यांकन वह पद्धति है, जिसके द्वारा हम पूर्व-निर्धारित उद्देश्यों, ध्येयों तथा लक्ष्यों की प्राप्ति की मात्रा को निर्धारित करते हैं। मूल्यांकन एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा शिक्षण के मूल्यों तथा उद्देश्यों के मध्य तुलना की जाती है।" मूल्यांकन वह पद्धति है जिसके द्वारा अर्जित मूल्यों की जाँच पूर्व निर्धारित उद्देश्यों के प्रकाश में की जाती है। पूर्व-निर्धारित उद्देश्यों तथा प्राप्त मूल्यों के अभाव में वास्तविक मूल्यांकन नहीं हो सकता है। यदि मूल्यांकन का सम्बन्ध पूर्व निर्धारित उद्देश्यों तथा प्राप्त मूल्यों से स्थापित नहीं किया जाता है तो ऐसा मूल्यांकन निरर्थक होता है। पूर्व निर्धारित उद्देश्यों को शिक्षण द्वारा प्राप्त करने की चेष्टा की जाती है। इस चेष्टा के फलस्वरूप मूल्यों की प्राप्ति होती है। इन अर्जित मूल्यों को ज्ञात करने के लिए मूल्यांकन किया जाता है। इसलिए उद्देश्य तथ शिक्षण पद्धतियाँ मूल्यांकन के साथ घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित होती हैं, मूल्यांकन के लिए उद्देश्यों तथा शिक्षण पद्धतियों का ज्ञान आवश्यक है। हमें यह जानना आवश्यक हो जाता है कि कहाँ तक उद्देश्यों की प्राप्ति हुई तथा कहाँ तक शिक्षण पद्धतियाँ सफल हुई यह जानने के लिए हम मूल्यांकन का सहारा लेते हैं, इस प्रकार उद्देश्य, शिक्षण पद्धतियों तथा मूल्यांकन में घनिष्ट सम्बन्ध है। इस त्रिकोणात्मक सम्बद्धता को निम्नांकित रूप में अंकित कर सकते हैं—

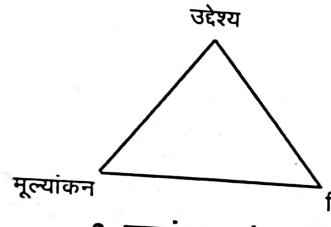

2. मूल्यांकन एवं मापन

बाह्य रूप से मूल्यांकन एवं मापन में कोई अन्तर दिखलायी नहीं देता है, पर वास्तव में इन दोनों में अन्तर है, यह अन्तर कार्यगत न होकर विशेषतागत है। मापन

एक स्थिति का वर्णन करता है, मूल्यांकन उस स्थिति की विशेषता बतलाता है। उदाहरण के लिए यदि कोई छात्र किसी परीक्षा में 80 अंक प्राप्त करता है तो यह मापन है पर यह मापन परीक्षा स्तर के सम्बन्ध में पूरा-पूरा ज्ञान प्रदान नहीं करता है। हम इस अंक से यह पता नहीं लगा सकते हैं कि 81 अंक प्राप्त करने वाला छात्र उत्तम है या सामान्य। यह हमें नहीं बतलाता कि छात्र से अधिक अंक पाने वाले तथा कम अंक पाने वाले छात्र कितने हैं। इन बातों का ज्ञान हमें मूल्यांकन कराता है। मूल्यांकन छात्र के व्यवहार में हुए परिवर्तनों से सम्बन्धित समस्त सूचनाएँ एकत्रित करने तथा उनकी विवेचना करने की पद्धति है। इस प्रकार मापन का क्षेत्र सीमित होता है जबकि मूल्यांकन का क्षेत्र व्यापक होता है। वास्तव में मापन मूल्यांकन का ही एक अंग है।

3. मूल्यांकन के उद्देश्य

मूल्यांकन निम्नांकित उद्देश्यों की पूर्ति करता है—

(1) मूल्यांकन परीक्षा प्रणाली में सुधार करता है।
(2) मूल्यांकन शिक्षण पद्धति में सुधार करता है।
(3) मूल्यांकन उत्तम पाठ्यक्रम पर बल देता है।
(4) मूल्यांकन विद्यालय व्यवस्था की जाँच करता है।
(5) मूल्यांकन छात्रों की कठिनाइयों का पता लगाता है।
(6) मूल्यांकन उपचारात्मक शिक्षण पर बल देता है।
(7) मूल्यांकन व्यक्तिगत छात्रों का निर्देशन करता है।
(8) मूल्यांकन शिक्षण पद्धतियों की सफलता का पता लगाता है।
(9) मूल्यांकन विद्यालय की समस्त क्रियाओं की सफलता को आँकता है।
(10) मूल्यांकन शिक्षक की योग्यता को मापता है।

4. वाणिज्यशास्त्र में मूल्यांकन की आवश्यकता

वाणिज्यशास्त्र शिक्षण के कुछ निश्चित उद्देश्य होते हैं। इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए पाठ्यक्रम की संरचना की जाती है। अतः पाठ्यक्रम व उसकी शिक्षण विधियों की वास्तविक जाँच के लिए मूल्यांकन की आवश्यकता होती है। इसके साथ ही साथ विषय का अध्यापक भी यह जानना चाहता है कि उसका शिक्षण किस सीमा तक सफल रहा है। छात्रों ने उसके द्वारा प्रदान की गई शिक्षा को आत्मसात् किया है इसकी जाँच हेतु परीक्षा का उपयोग किया जाता है। इसके साथ ही साथ वाणिज्य विषय का छात्र भी यह जानना चाहता है कि उसे कितना ज्ञानार्जन हुआ है, वह विषय का ज्ञान प्राप्त करने में कहाँ तक सफल हुआ है। बालकों के अभिभावक भी यह जानने को उत्सुक रहते हैं कि उनके बच्चों की योग्यता सीमा क्या रही है। इस प्रकार मूल्यांकन शिक्षक, छात्र व अभिभावक तीनों के लिए महत्त्वपूर्ण है। वाणिज्य विषय में हम बालकों के व्यक्तित्व, बुद्धि, ज्ञानोपार्जन, रुचि आदि का माप करते हैं। हम इसमें यह पता लगाते हैं कि वाणिज्य-विषय के छात्रों का व्यक्तित्व कैसा है, उनमें कितनी बुद्धि क्षमता है, विषय के प्रति उनकी रुचि कितनी है, इनके लिए वाणिज्य विषय में अनेक परीक्षाओं का उपयोग किया जाता है।

5. वाणिज्य शिक्षण में मूल्यांकन के क्षेत्र

(1) शैक्षिक अभिरुचि,
(2) शैक्षिक उपलब्धि,
(3) वैयक्तिक रुचियाँ,
(4) रचनात्मकला,
(5) विशिष्ट योग्यताएँ।

6. वाणिज्यशास्त्र में मूल्यांकन के साधन

आधुनिक विचारधाराओं के अनुसार छात्र का सही मूल्यांकन केवल विषयों मे परीक्षा के परिणामों से ही नही हो सकता है। वास्तव में ये परीक्षाएँ मूल्यांकन का एक अंग मात्र है। वाणिज्य विषय में छात्रों का सही मूल्यांकन करने के लिए साधारणतया निम्न परीक्षाओं एवं रीतियों का प्रयोग आवश्यक होता है—

परीक्षाएँ

(1) निष्पत्ति परीक्षाएँ (Achievement Tests),
(2) बुद्धि परीक्षाएँ (Intelligence Tests),
(3) व्यक्तित्व परीक्षाएँ (Personality Tests)।

रीतियाँ

(1) आकस्मिक निरीक्षण अनिलेख (Anecd- tal Records),
(2) आत्म-कथा (Autobiography),
(3) निर्धारण (Rating),
(4) व्यक्ति अध्ययन (Case Study),
(5) समाजमिति (Sociogram),
(6) प्रश्नावली (Questionnaire),
(7) साक्षात्कार (Interview),
(8) निरीक्षण (Observation),
(9) संचयी अभिलेख-पत्र (Cumulative Record Card)।

परीक्षा के रूप

मूल्यांकन सामान्यतया दो रूपों में किया जाता है—

अ—निबन्धात्मक परीक्षा के द्वारा।

ब—वस्तुनिष्ट परीक्षा के द्वारा।

(अ) निबन्धात्मक परीक्षाएँ—न केवल भारत में ही वरन् विश्व के अनेक राष्ट्रों में बड़े लम्बे समय से निबन्धात्मक परीक्षाओं का प्रभुत्व रहा। विश्व के कुछ प्रगतिशील कहे जाने वाले देशों में इन परीक्षाओं को अपना महत्व खोना पड़ा है। इस प्रकार की परीक्षाओं में पाठ्यक्रम के कुछ अंशों पर ही प्रश्न दे दिए जाते हैं, छात्र उन प्रश्नों का उत्तर निर्धारित समय में अपनी स्वतन्त्र भाषा में इच्छानुसार रूप में लिखते हैं।

निबन्धात्मक परीक्षा के गुण

निबन्धात्मक परीक्षा में निम्नांकित गुण पाये जाते हैं—

(1) इन परीक्षाओं से छात्रों की भावव्यक्त क्षमता का बोध होता है।
(2) इन परीक्षाओं के प्रश्नपत्र सरलता से बनाये जा सकते हैं।
(3) छात्र इन्हें सरलता से समझ सकते हैं।
(4) परीक्षाएँ छात्रों को पर्याप्त स्वतन्त्रता प्रदान करती है।
(5) निर्माण, समय तथा धन की दृष्टि से प्रश्नपत्र मितव्ययी होते हैं।
(6) ये परीक्षाएँ समूह परीक्षण के लिए उत्तम होती हैं।
(7) ये परीक्षाएँ रचनात्मक चिन्तन को प्रोत्साहित करती हैं।
(8) छात्रों को इन परीक्षाओं के लिए सरलतापूर्वक प्रशिक्षित किया जा सकता है।

वेस्ले और **रॉन्सकी** ने पुस्तक में निबन्धात्मक परीक्षाओं के कई लाभ बतलाये हैं।

निबन्धात्मक परीक्षा के दोष

निबन्धात्मक परीक्षा में कई दोष पाये जाते हैं—

(1) निबन्धात्मक परीक्षाओं मे विश्वसनीयता नही होती है।
(2) निबन्धात्मक परीक्षाओं में वैषयिकता नहीं होती है।
(3) इन परीक्षाओं की जाँच काफी श्रम एवं समय चाहती है।
(4) इस प्रकार की परीक्षा में प्रश्न-पत्र पाठ्यक्रम के थोडे अंश तक ही फैले होते हैं।
(5) सही उत्तर न जानते हुए भी छात्र अन्दाज से उत्तर लिख सकते हैं।

दोष दूर करने के उपाय

निबन्धात्मक परीक्षाओं मे व्याप्त दोषों को अध्यापक अपनी सावधानी से काफी मात्रा में दूर कर सकता है। अध्यापक को इन दोषों को दूर करने हेतु निम्नांकित सुझावों को ध्यान में रखना चाहिए—

(1) प्रश्नों का निर्माण बडी सावधानी से किया जाय। ऐसे प्रश्नों की रचना की जाय कि छात्र उत्तर देते समय किसी प्रकार का धोखा न दे पायें।

(2) प्रश्न सम्पूर्ण पाठ्यक्रम पर समान रूप से वितरित किये जायें।

(3) सम्भवतः प्रश्नपत्र निर्माता एवं मूल्यांकनकर्त्ता एक ही व्यक्ति रखा जाय।

(4) छात्रों द्वारा प्रदत्त उत्तरों पर अंक प्रदान करने का कार्य अनुभवी व्यक्तियों द्वारा किया जाय।

(5) सभी छात्रों के उत्तरों को अंक प्रदान करने का एक निश्चित मान तथा विधि अपनाई जाय।

(आ) वस्तुनिष्ठ परीक्षा—वस्तुनिष्ठ परीक्षाएँ वस्तुस्थिति पर आधारित होती हैं। इनमें उत्तर देने की छात्रों को स्वतन्त्रता नहीं होती है। छात्र अपनी इच्छा से चाहे जो कुछ, चाहे जिस प्रकार उत्तर नहीं दे सकते हैं। प्रत्येक प्रश्न का एक विशिष्ट उत्तर होता है। छात्र से वही विशिष्ट उत्तर देने की आशा की जाती है। यदि छात्र का उत्तर उस

विशिष्ट उत्तर से भिन्न होता है तो वह गलत समझा जाता है। इस कारण इन्हें विशिष्टोत्तरात्मक परीक्षाएँ भी कहते हैं। इनकी दूसरी विशेषता होती है इनके उत्तर अत्यन्त संक्षिप्त प्रायः एक शब्द में होते हैं।

वस्तुनिष्ठ परीक्षा के गुण

वस्तुनिष्ठ परीक्षा मे निम्नांकित गुण होते हैं—

(1) यह सम्पूर्ण पाठ्यक्रम पर फैली होती है।
(2) छात्र अध्यापक को धोखा नहीं दे सकते हैं।
(3) उत्तर देना सरल होता है।
(4) उत्तरों पर अंक प्रदान करना सरल होता है।
(5) पक्षपातहीन रूप में अंक प्रदान किए जाते हैं।
(6) अधिक विश्वसनीय होती है।
(7) इनमें छात्रों के ज्ञान के साथ तर्क एवं निर्णय शक्ति का पता चलता है।

वस्तुनिष्ठ परीक्षा के दोष

(1) प्रश्नपत्र निर्माण में बहुत समय व श्रम लगता है।
(2) इनमें अन्दाज से उत्तर देने की सम्भावना बहुत होती है।
(3) भाषा शक्ति और भाव व्यक्त करने की क्षमता का इनसे पता नहीं चलता।
(4) इनमें नकल करने के अवसर बढ़ जाते हैं।
(5) इनमें समय तत्त्व का बड़ा ध्यान रखना पड़ता है।

वस्तुनिष्ठ परीक्षा के प्रकार

वस्तुनिष्ठ परीक्षा के प्रश्न मुख्यतया निम्न प्रकार के होते हैं—

(1) मिलान पद प्रश्न (Matching Type Questions)—इस प्रकार के प्रश्न उस समय अत्यन्त सहायक होते हैं जब हम किसी विशिष्ट सूचना की परीक्षा लेना चाहते हैं और जहाँ पर पूर्ण पुनःस्मरण की आवश्यकता नहीं पड़ती है। इनके द्वारा दो तथ्यों में सम्बन्ध स्थापित करने की योग्यता तथा तथ्यों का वर्गीकरण करने की योग्यता की जाँच भी भली प्रकार हो सकती है।

इन प्रश्नों में कुछ सम्बन्धित तथ्यों को दो समूहों में रखा जाता है। एक समूह ज्यों का त्यों रहने दिया जाता है जबकि दूसरा समूह व्यवस्थित कर दिया जाता है। छात्रों से इस अव्यवस्थित समूह को व्यवस्थित करने को कहा जाता है। नीचे एक उदाहरण प्रस्तुत है—

निर्देश—नीचे कुछ स्थानों के नाम दिये गये हैं। इनके सामने अव्यवस्थित रूप में उन स्थानों पर प्रसिद्ध कारखानों के नाम दिये गये हैं। प्रत्येक स्थान पर सम्बद्ध कारखाने का नाम व्यवस्थित रूप में लिखिए—

अ—धौलपुर	सीमेंट
ब—चित्तौड़गढ़	चीनी
स—जयपुर	काँच
द—कोटा	खाद
य—भोपाल, सागर	सूती कपड़ा

(2) रिक्त स्थान की पूर्ति प्रश्न—इस प्रकार के प्रश्नों के द्वारा एक विशिष्ट सूचना सम्बन्धी जाँच की जाती है और प्रमुख रूप से किसी विशिष्ट नाम, तारीख, संख्या या स्थान का नाम इन प्रश्नों के द्वारा पूछा जाता है। नीचे इस प्रकार के प्रश्न का उदाहरण प्रस्तुत है।

निर्देश—नीचे दिये गये वाक्यों में रिक्त स्थानों की पूर्ति उचित शब्द लिख कर करो—

(1) बिल्टी (R/R) प्रसंविदा है जो माल भेजने वाले ..... के बीच होता है।
(2) बैंकों का राष्ट्रीयकरण ..... में हुआ था।
(3) जर्नल की प्रविष्टि को खाते में हस्तान्तरण करने की क्रिया को ..... कहते है।
(4) निकृष्ट मुद्रा परिचलन नियम को ..... ने प्रतिपादित किया था।
(5) भारत के वाणिज्य मन्त्री ..... हैं।

(3) सत्यासत्य प्रश्न—इस प्रकार के प्रश्न सबसे अधिक मात्रा में प्रयोग किये जाते हैं। तकनीकी दृष्टि से इस प्रकार के प्रश्न सर्वोत्तम माने जाते हैं। इस प्रकार के प्रश्नों के अन्तर्गत कुछ सत्य और कुछ असत्य तथ्य दिये होते हैं। तथ्यों के सम्मुख सत्य-असत्य लिख दिया जाता है। छात्रों को सत्य के आगे सत्य व असत्य के आगे असत्य लिखना होता है।

निर्देश—नीचे कुछ तथ्य दिये जा रहे हैं उन पर असत्य या सत्य पर निशान लगाइये—

(1) लेजर से तलपट तैयार किया जाता है। सत्य/असत्य
(2) खाता-बही से विभिन्न खातों की स्थिति का पता चलता है। सत्य/असत्य
(3) बैंक किसी चैक का भुगतान नहीं करता है तो उसे अनादृत चैक कहते हैं। सत्य/असत्य
(4) मुद्रा छापने का कार्य सरकार करती है। सत्य/असत्य
(5) फुटकर व्यापारी अनेक वस्तुओं का व्यापार कर सकते हैं। सत्य/असत्य

(4) अपवर्त्य-चयन प्रश्न (Multiple Choice Tests)—इस प्रकार की परीक्षाओं में कुछ प्रश्न दिये होते हैं तथा उनके सम्मुख ही कई शब्द दिये होते हैं। इन शब्दों में एक शब्द सही उत्तर होता है बाकी गलत। छात्रों से सही उत्तर वाले शब्दों को रेखांकित करने को कहा जाता है। इस प्रकार के कुछ उदाहरण नीचे दिये गये हैं—

निर्देश—नीचे कुछ प्रश्न दिये गये हैं। उनके सामने कुछ उत्तर हैं जिनमें एक सही उत्तर है, बाकी सब गलत हैं। सही उत्तर वाले शब्दों के नीचे रेखा खींच दीजिए—

(1) माल अग्नि से नष्ट हो गया। इसका लेखा किया जायेगा।
(a) विक्रय बहीं में, (b) मुख्य ज़र्नल में, (c) विक्रय वापसी बही में, (d) क्रय वापसी बही में, (e) क्रय बही में।

(2) "जो वस्तु आती है उसे नाम करो जो जाती है उसे जमा करो" जर्नल प्रविष्टि का नियम है—

(a) व्यक्तिगत खातों के लिए. (b) अवास्तविक खातों के लिए. (c) आय व्यय ... के लिए. (d) वास्तविक खातों के लिए. (e) सभी प्रकार के खातों के लिए।

(3) मुख्य जर्नल में प्रारम्भिक प्रविष्टि की जाती है माल के—

(a) उधार क्रय की. (b) नकद विक्रय की. (c) क्रय वासपी की. (d) अग्नि ... क्षतिग्रस्त हो जाने की. (e) विक्रय वापसी की।

(4) बहीखातों की गणितीय शुद्धता की जाँच करने हेतु बनाया जाता है—

(a) चिट्ठा. (b) व्यापार खाता. (c) तलपट. (d) लाभ-हानि खाता. (e) उदरत खाता।

(5) सरल स्मरण प्रश्न—इस प्रकार की परीक्षा में ऐसे प्रश्न पूछे जाते हैं जिनका उत्तर अत्यन्त संक्षिप्त साधारणतया एक या दो शब्दों में होता है। नीचे इस प्रकार के प्रश्नों के कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

(1) बहीखाते की दोहरी लेखा पद्धति की अन्तिम अवस्था का नाम क्या है?

(2) चैक कहाँ भुनाया जाता हैं?

(3) एक व्यापारी जो सहायक बहियाँ नहीं रखता वह खाते किस पुस्तक से बनायेगा?

(4) अन्तिम खाता बनाने में सुगमता की दृष्टि से तलपट बनाने की उपयुक्त विधि कौन-सी है?

(5) चैक में राशि कितनी बार लिखी जाती है।

उत्तम मूल्यांकन के लक्षण

(1) विश्वसनीयता—कोई भी प्रविधि तभी विश्वसनीय कहलायेगी जबकि उसके लगातार प्रयोग करने पर एक से परिणाम प्रदान करे। प्रविधि की पूर्ण विश्वसनीयता में अनेक बाधाएँ आती हैं, जैसे व्यक्तियों की उनकी योग्यताओं की विभिन्न अवसरों तथा दशाओं की भिन्नतायें हैं।

(2) वस्तुनिष्ठता—वस्तुनिष्ठ प्रविधि वह है जिसके द्वारा प्राप्त निष्पादन सभी निर्णायक देखकर एक ही निर्णय पर पहुँचे। दूसरे शब्दों में छात्र के निष्पादन पर निर्णायक की भावनाओं, विचारों, ईर्ष्या तथा द्वेष का प्रभाव न पड़े।

(3) वैधता—कोई भी प्रविधि अथवा परीक्षण उस सीमा तक वैध है जिस सीमा तक वह उसे मानता है तथा जिसके लिए उसका निर्गाण किया है। कोई भी प्रविधि या परीक्षण पूर्ण वैध नहीं होता है क्योंकि यह व्यक्तियों के मानसिक गुणों को उनके व्यवहार के माध्यम से मापता है।

(4) मानक—शिक्षा में मानक का अर्थ तुलना का वह प्रतिमान है जिसके लिए समान समूह के विभिन्न व्यक्ति हों। दूसरे शब्दों में मानक की वर्तमान उपलब्धि क्या है, इसकी ओर संकेत करता है। मूल्यांकन के लिए छात्रों को कक्षा, आयु तथा बुद्धि आदि के आधार पर समूह बनाकर उनकी तुलना की जाती है ताकि सही स्थिति का ज्ञान हो जाय।

(5) विभेदीकरण—विभेदीकरण का प्रयोजन छात्रों की योग्यता तथा अयोग्यता का पता लगाना है। उत्तम मूल्यांकन वही है जो मेधावी, कमजोर तथा औसत छात्रों का पता लगा सके। इसलिए परीक्षा में सभी तरह के प्रश्न पूछे जाते हैं।

(6) व्यापकता—उत्तम मूल्यांकन की व्यापकता का अर्थ है कि उसमें पाठ्यक्रम में ...मिलित अधिक से अधिक तथ्य शामिल किये जायें। यह केवल आंशिक तथ्यों का ...निधित्व न करें।

(7) व्यावहारिकता—जब तक मूल्यांकन प्रविधि में व्यावहारिकता सरलता से प्रयोग ... योग्य नहीं है तो यह व्यर्थ है। इसको वास्तविक सरल, आकर्षक और रुचिपूर्ण बनाया जाय ताकि इसका प्रयोग सभी कर सकें।

इस प्रकार उत्तम मूल्यांकन के लक्षण हम उपरोक्त प्रकार से बतला सकते हैं।

वाणिज्य-विषय के कार्यक्रमों का मूल्यांकन

विद्यालयों में जिस प्रकार विद्यालय के विभिन्न विषयों व उनके विभिन्न क्रियाकलापों का मूल्यांकन आवश्यक है। ठीक उसी प्रकार आज के युग के महत्त्वपूर्ण विषय वाणिज्य विषय का तथा उसके कार्यक्रमों का मूल्यांकन भी आवश्यक है। विद्यालय में विषय के अन्तर्गत जो भी सिखाया जा रहा है, जो कार्यक्रम क्रियाशील है, वह सफल है, या नहीं, समय, शक्ति व धन का सदुपयोग हो रहा है या नहीं इसकी जाँच के लिए मूल्यांकन आवश्यक प्रक्रिया है। मूल्यांकन से कार्यक्रमों के स्तर की जाँच भी आसानी से की जा सकती है तथा उनकी सफलता व असफलता को उचित रूप से आँका जा सकता है, इसके आधार पर निर्देशन कार्यक्रम संचालित किये जा सकते हैं। इससे छात्रों की रुचि व उनकी माँग में भी समन्वय स्थापित कराया जा सकता है। विषय के कार्यक्रमों के मूल्यांकन के तहत हमें यह भी देखना चाहिए कि जिन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए मूल्यांकन किया गया था वे हमें प्राप्त हुए या नहीं। विषय व तत्सम्बन्धी कार्यक्रमों में क्या-क्या कठिनाइयाँ आयीं व क्या-क्या कमियाँ रहीं तथा उनके क्या कारण थे इससे अध्यापकों को भी यह लाभ होगा कि वे भी कार्यक्रमों की सफलता व असफलता व उनके कारणों से जानकार हो सकेंगे तथा उसके आधार पर आगे चलकर कार्यक्रम की उचित रूपरेखा बना सकेंगे तथा उस आधार पर निर्देशन सुविधाओं का भी प्रस... कर सकेंगे।

मूल्यांकन के निष्कर्ष

विद्यालय के किसी विषय या कार्यक्रम का मूल्यांकन करते समय विद्यालय के घटकों का प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है, वाणिज्य-शास्त्र के कार्यक्रमों प... विद्यालय की निम्न बातों का प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है—

(1) विद्यालय का प्रबन्ध,

(2) विद्यालय की आर्थिक स्थिति,

(3) पाठ्यक्रम,

(4) मूल्यांकन,

(5) अध्यापक वर्ग,

(6) पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाएँ।

वाणिज्य-शास्त्र के मूल्यांकन के निष्कर्ष

डॉ. एन. हसन ने अपनी पुस्तक वाणिज्य शिक्षण के अध्याय "माध्यमिक... में वाणिज्य कार्यक्रम का मूल्यांकन" में मूल्यांकन के अग्र निष्कर्ष बतलाये हैं

(1) अध्यापक वर्ग,
(2) भौतिक सुविधाएँ,
(3) अनुदेश कार्यक्रम, पाठ्यक्रम एवं समय तालिका,
(4) अनुदेश क्रियाएँ,
(5) अनुदेश सामग्रियाँ और सुविधायें,
(6) पाठान्तर सहगामी क्रियाएँ,
(7) सामाजिक सम्बन्ध एवं स्रोत,
(8) निर्देशन और नौकरी।

अभ्यास-प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न

1. मूल्यांकन का अर्थ स्पष्ट कीजिये तथा बताइये यह मापन से किस प्रकार भिन्न है? वाणिज्य में छात्रों की उपस्थिति मापन हेतु कुछ साधनों का परिचय दीजिये।
2. वाणिज्य में मूल्यांकन की क्या आवश्यकता है ? इस हेतु आप कौन-कौन से कथन अपना सकते हैं ? संक्षेप में परिचय दीजिये।
3. वाणिज्य विषय की मूल्य उपलब्धि का मूल्यांकन करने हेतु प्रयुक्त किये जाने वाले निबन्धात्मक प्रश्नों के गुण व दोषों का उल्लेख कीजिये तथा बताइये इनके दोषों को किस प्रकार हल किया जा सकता है ?
4. वाणिज्य विषय की छात्र-उपलब्धियों के मापन हेतु वस्तुनिष्ठ-प्रश्नों के गुण दोष तथा विधि प्रकारों का उदाहरण सहित वर्णन कीजिये।

लघु उत्तरात्मक प्रश्न

1. मूल्यांकन का अर्थ बताइये।
2. वाणिज्य विषय के किसी एक शीर्षक का कथन कर उस पर पाँच वस्तुनिष्ठ प्रश्नों की रचना कीजिये।
3. 'बैंक समाधान विवरण' पर ज्ञानात्मक उद्देश्य के मापन हेतु चार वस्तुनिष्ठ प्रश्न बताइये।
4. वस्तुनिष्ठ परीक्षा के दोष बताइये।
5. विविधि प्रकार के वस्तुनिष्ठ प्रश्नों का परिचय दीजिये।
6. वाणिज्य विषय के कार्यलयों का मूल्यांकन आप किस प्रकार करेंगे ? संक्षेप में लिखिये।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. वास्तव में मापन.....का ही एक अंग है।
2. तकनीकी दृष्टि से किस प्रकार के प्रश्न सर्वोत्तम माने जाते हैं ?
   (अ) रिक्त स्थान की पूर्ति प्रश्न (ब) सत्यासत्य प्रश्न
   (स) अपवर्त्य चयन प्रश्न (द) मिलान पद प्रश्न

उत्तर—1. मूल्यांकन, 2. (ब) सत्यासत्य प्रश्न।

21

वाणिज्य-शिक्षण हेतु नियोजन

(PLANNING FOR COMMERCE TEACHING)

शिक्षण या अध्यापन एक सचेष्ट औपचारिक तथा कष्टसाध्य कार्य है। यदि अध्यापक इस कार्य को सफलतापूर्वक करना चाहता है तो उसे अन्य कार्यों के समान ही शिक्षण कार्य की सुनिश्चित योजना शिक्षण-कार्य करने से पूर्व ही बना लेनी चाहिये। हम जानते हैं कि कोई भी समस्यात्मक कार्य सुनिश्चित पूर्व योजना के अभाव में सफलतापूर्वक सम्पन्न नहीं किया जा सकता है। यही तथ्य शिक्षण-कार्य के सम्बन्ध में लागू होता है। वास्तव में प्रत्येक कार्य तभी समुचित तथा व्यवस्थित रूप से पूरा किया जा सकता है जब उसे पूरा करने के लिए एक सुनिश्चित तथा विस्तृत योजना बना ली जाय और फिर उस योजना के अनुसार ही कार्य सम्पादित किया जाय। इस सिद्धान्त के अनुसार शिक्षक को भी अपने शिक्षण-कार्य से सम्बन्धित विस्तृत योजना बनाकर शिक्षण-कार्य करना चाहिये। शिक्षक को चाहिए कि वह शिक्षण से सम्बन्धित वार्षिक, मासिक, साप्ताहिक तथा दैनिक योजनायें बनाये और तदोपरान्त उन योजनाओं के अनुसार ही शिक्षण कार्य सम्पादित करे और साथ ही साथ विषय-वस्तु के सन्दर्भ में भी पाठ योजनाओं का निर्माण करना चाहिये। वह विषय-वस्तु सन्दर्भ में दैनिक तथा इकाई-पाठ योजनायें बना सकता है। प्रस्तुत अध्याय में दैनिक इकाई तथा वार्षिक-पाठ योजनाओं के सम्बन्ध में चर्चा की जा रही है।

शिक्षण-योजना एवं अन्य सामान्य योजना

नियोजन कार्य अथवा योजना निर्माण केवल शिक्षण-कार्य के लिए आवश्यक हो ऐसा नहीं है अपितु प्रत्येक समस्यात्मक कार्य के लिए योजना या नियोजन आवश्यक होता है। हम बाँध बनाने, भवन निर्माण करने, आर्थिक साधन जुटाने, फसल उगाने, कारखाना चलाने आदि सभी कार्यों के लिए योजना बनाते हैं। उसे शिक्षण योजनायें कहते हैं। शिक्षण तथा सामान्य योजना—दोनों का ही उद्देश्य कार्य को सफलतापूर्वक योजनाबद्ध तरीके से सम्पादित करना है। दोनों प्रकार की योजनाओं में उद्देश्यों की समानता होते हुये भी कुछ आधारभूत अन्तर होते हैं। इन अन्तरों को निम्न प्रकार से उल्लिखित कर सकते हैं—

आधारभूत प्रशिक्षण प्रायोजनायें

(1) शिक्षण योजनाओं के द्वारा जीवित प्राणियों को शिक्षित किया जाता है। जब

सामान्य योजनाओ की विषय-वस्तु अमूर्त होती है। जीवित तथा मूर्त विषयों से सम्बन्धित योजनाये अधिक कठिन व जटिल होती है।

(2) शिक्षण योजना ऐसे जीवित प्राणियो से सम्बन्धित होती है जिनमे परिवर्तन की पर्याप्त सम्भावना रहती है। जबकि सामान्य योजना की विषय-वस्तु अजीवित एवं अधिक कारण प्रायः अपरिवर्तित रहती है। इसलिए शिक्षण योजनाओं में परिवर्तन की अधिक व्यवस्था करनी पडती है। दूसरे शब्दों में शिक्षण योजनायें अधिक लोचदार बनाई जाती है।

(3) सामान्य योजनाओं के फलस्वरूप जो कुछ भी निर्माण या उत्पादन कार्य किया जाता है वह सामान्यतया दृश्य होता है जबकि-शिक्षण योजनाओं के फलस्वरूप प्राप्त परिणाम अदृश्य होते है।

(4) सामान्य योजनाओं के क्रियान्वयन के फलस्वरूप उत्पादित तत्त्वों को सरलता से मापा जा सकता है। जबकि शिक्षण योजनाओं के कार्यों को सफलता से मापा नही सकता है।

(5) शैक्षिक उद्देश्य अप्राप्त्यनीय होते हैं। अतः शिक्षण के द्वारा इन उद्देश्यो को कभी भी प्राप्त नही किया जा सकता है। किन्तु सामान्य कार्यों को प्राप्त किया जा सकता है। उदाहरण के लिए बाँध बनाने की योजना, बाँध बन जाने पर समाप्त कर दी जाती है। किन्तु शिक्षण योजना सदैव-सदैव चलती रहती है।

शिक्षण कार्य हेतु योजना

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है शिक्षण कार्य के लिए नियोजन अथवा योजना निर्माण अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण है तथा लाभप्रद होता है शिक्षण के लिए योजना-निर्माण करने से निम्नांकित लाभ है—

(1) शिक्षण की योजना बना लेने से शिक्षण कार्य योजनाबद्ध तरीके से समय एवं विषय-वस्तु के सन्दर्भ में सम्पन्न किया जा सकता है।

(2) योजना निर्माण के द्वारा विषय-वस्तु के सभी खण्डो, प्रकरणों तथा इकाइयों की उपयुक्त एवं आवश्यक महत्त्व किया जा सकता है।

(3) नियोजित शिक्षा से उद्देश्यनिष्ठ या उद्देश्य पर शिक्षण सम्भव है। दूसरे शब्दो में या योजनानुसार शिक्षण से पूर्व निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति अपेक्षाकृत अधिक सरल एवं सम्भव हो जाता है।

(4) योजना बनाकर शिक्षण करने से शिक्षण के सभी बिन्दुओं को समय विषय-वस्तु व्यवहार परिवर्तन तथा पूर्व निर्धारित उद्देश्यों के सन्दर्भ में भार प्रदान किया जा सकता है।

(5) योजना बनाकर शिक्षण करने से शिक्षक को शिक्षण प्रारम्भ करने से यह ज्ञात हो जाता है कि उसे शिक्षण के समय किन-किन सुविधाओं तथा सहायक सामग्री की आवश्यकता पडेगी। इन सबकी उसे पहले से ही व्यवस्था करने में सहूलियत रहती है। इतना ही नही पूर्व मे ही इनका ज्ञान हो जाने से वह इनका कक्षा में प्रयोग भी भली प्रकार कर सकता है।

(6) प्रत्येक सफल अध्यापक किसी न किसी प्रकार की योजना बनाकर पढाते है। उनका शिक्षण सदैव नियोजित होता है। यह बात दूसरी है कि उनकी शिक्षण योजना उनके मस्तिष्क में रहती है अथवा वे लिखकर योजना बनाते है। सफल एवं प्रभावी शिक्षण के लिए भी योजना बनाकर पढाना आवश्यक है।

(7) योजना बनाकर पढाने से समय की न केवल बचत होती है, उसका सदुपयोग भी होता है। शिक्षक की सभी क्रियाओं में समन्वय स्थापित होता है तथा छात्रों की विविध शैक्षिक आवश्यकताओं को सन्तोष प्रदान किया जा सकता है।

शिक्षण योजना के प्रकार

शिक्षण कार्य की योजना जब काल के सन्दर्भ में बनाई जाती है। तब हम उसके सामान्यतः दो रूप देखते हैं—

(1) दीर्घकालीन योजना—1. समीप योजना, 2. मासिक योजना।

(2) अल्पकालीन योजनायें—1. साप्ताहिक योजना, 2. इकाई, 3. दैनिक योजना।

अत्यधिक शिक्षण कार्य भार के कारण अध्यापक के लिए इतनी शिक्षण योजनायें बनाना कठिन हो जाता है। अतः उसे वार्षिक, दैनिक तथा इकाई योजना बनाकर ही काम चला लेना चाहिए। प्रारम्भिक अवस्था में उसे विस्तृत दैनिक योजना बनाकर शिक्षण कार्य करना चाहिए और कालान्तर में दक्षता प्राप्त होने पर उसे दैनिक पाठ योजनाओं के संक्षिप्त लघु रूप से ही काम चलाना चाहिए। वास्तव में देखा जाय तो एक व्यस्त शिक्षक के लिए दैनिक पाठ योजनाओं का लघु रूप ही व्यावहारिक है। क्योंकि वह पाँच-छः कालांशों के लिए प्रतिदिन विस्तृत दैनिक योजनायें नहीं बना सकता है। प्रस्तुत पाठ के आगामी भाग में वार्षिक, इकाई तथा नैतिक पाठ योजनाओं की चर्चा की गई है।

इकाई योजना

इकाई शब्द को शिक्षा जगत में लाने का श्रेय भी हरबर्ट को जाता है। किन्तु इसका व्यापक प्रयोग सन् 1920 के बाद ही हुआ। अब प्रश्न है कि इकाई क्या है। इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए इकाई की नीचे कई एक परिभाषाएँ प्रस्तुत हैं—

रिस्क के अनुसार—इकाई किसी समस्या या योजना से सम्बन्धित सीखने वाली क्रियाओं की समग्रता या एकता को बनाती है।

यासिंग के अनुसार—इकाई अर्थपूर्ण परस्पर सम्बन्धित क्रियाओं की व्यापक शृंखला है जो विकसित होकर बालकों के उद्देश्यों की पूर्ति करती है। जिससे बालक महत्त्वपूर्ण शैक्षिक अनुभव प्राप्त कर सकें और अपने व्यवहारों में वांछित परिवर्तन ला सकें।

हैरप के अनुसार—इकाई किसी विषय का एक बड़ा उपभाग होता है जिसका कोई मूलभूत प्रकरण या सिद्धान्त होता है। इस सिद्धान्त या प्रकरण के अनुसार ही छात्र क्रियाओं का इस प्रकार नियोजन किया जाता है कि उन्हें (छात्रों को) महत्त्वपूर्ण अनुभव प्राप्त हो सके। इन परिभाषाओं से स्पष्ट है कि इकाई-योजना सीखने के या अनुभव प्राप्त करने का यह एकीकृत रूप है। जिसे किसी एक शिक्षण क्रिया द्वारा प्रदान किया जाता है। यह सीखने की वह योजना है जो सीखने के किसी एक महत्त्वपूर्ण बिन्दु पर केन्द्रित होती है।

इकाई योजना के प्रकार

सामान्यतः इकाई योजनायें दो प्रकार की होती हैं—

(1) विषय-वस्तु की इकाई योजना।
(2) अनुभव की इकाई योजना।

विषय वस्तु की इकाई योजनायें पुन: तीन प्रकार की होती है—
(i) पाठ पर आधारित इकाई योजना।
(ii) सूत्र या सिद्धान्त पर आधारित इकाई योजना।
(iii) मॉरीसन इकाई योजना।

मॉरीसन इकाई योजना का विकास मॉरीसन ने किया था। यह योजना वातावरण या संस्कृति के किसी एक पहलू या क्षेत्र से सम्बन्धित होती है। इस प्रकार की इकाई योजनाएँ कला विज्ञान संस्कृति या सामाजिक भौतिक वातावरण के किसी एक तथ्य को लेकर बनाई जाती है।

अनुभव की इकाई योजनायें भी तीन प्रकार की होती है—
(1) उद्देश्य पर आधारित।
(2) रुचि पर आधारित।
(3) आवश्यकता पर आधारित।

इकाई योजना के सोपान

इकाई योजना में कौन-कौन से पद या सोपान रखे जायें इस सम्बन्ध में अलग-अलग मत हैं फिर भी निम्नांकित दो प्रणालियाँ अधिक प्रचलित हैं—

ग्राम्स के सोपान—ग्राम्स तथा आईवर्सन ने इकाई योजना के लिए निम्न सोपान प्रसारित किये हैं—

(1) प्रस्तावना, (2) नियोजन, (3) अनुसंधान, (4) अवबोध।

रिस्क ने इकाई योजना के निम्नांकित पदों की चर्चा की है—

1. उद्देश्यों का चयन।
2. इकाई खण्डों का विभाजन।
3. इकाई खण्डों का विकास।
4. प्रस्तावना।
5. व्यक्तिगत आवश्यकताओं की व्यवस्था।
6. मूल्यांकन।
7. सम्बन्धित पुस्तकों की सूची।

जिस प्रकार से हम किसी एक पाठ के किसी एक खण्ड को किसी एक दिन पढ़ाने के लिए दैनिक योजना बनाते हैं। ठीक उसी प्रकार पूरे पाठ की योजना बनाई जाती है कि पूरे पाठ पढ़ाने के लिए किस-किस दिन या क्या-क्या पढ़ाना है ? कैसे पढाना है ? पढ़ाने के लिए किन-किन उपकरणों की आवश्यकता होगी ? छात्र क्या-क्या क्रियायें करेंगे, अध्यापक क्या-क्या क्रिया करेगा, छात्रों का मूल्यांकन किस प्रकार होगा आदि सभी बातों का इसमें उल्लेख किया जाता है।

इकाई योजना के लाभ

(1) इकाई योजना के द्वारा अधिक प्रभावशाली ढंग से ज्ञान प्राप्त होता है क्योंकि यह बालकों की रुचियों तथा अभिवृत्तियों को प्रमाणित करती है।

(2) इकाई योजना के द्वारा—विषय-वस्तु का संगठन अच्छी प्रकार से होता है।
(3) इकाई योजना बनाने से शिक्षण की समीक्षा अच्छी प्रकार बन जाती है। इससे नियोजित शिक्षण सम्भव है।
(4) इकाई योजना ज्ञान को पूर्ण इकाई मानकर चलती है।
(5) इकाई योजना द्वारा अध्यापक तथा छात्रों की क्रियायें पहले ही सुनिश्चित कर दी जाती है।
(6) इकाई योजनाओं के अनुसार पढ़ाने से बालक वातावरण के साथ समायोजन स्थापित करने की (क्षमता) योग्यता का विकास कर लेते हैं क्योंकि इसमें वातावरण को महत्व दिया जाता है।

इकाई योजना के दोष

(1) इकाई योजना तैयार करना एक कठिन कार्य है।
(2) इकाई योजना के अनुसार पढ़ाने से शिक्षण यन्त्रवत् हो जाता है।
(3) इकाई योजना में सहायक सामग्री तथा अन्य उपकरणों के प्रयोग पर बल दिया जाता है। अत: इसमें अधिक धन की आवश्यकता पड़ती है।

वार्षिक योजना

अध्यापक अपने कार्य का सफल नियोजन उसी समय कर सकता है। जब वह अपने कार्य की व्यवस्थित योजना बना ले। वार्षिक कार्य योजना उसे बताती है कि उसे कब क्या कार्य करना है तथा कौन-कौन से कार्य कब तक समाप्त कर देने हैं। वार्षिक कार्य योजना अध्यापक को निर्देशन देती है तथा अध्यापक का पथ प्रदर्शन करती है। उद्देश्यपूर्ण शिक्षण अध्यापक की सफल योजना पर ही निर्भर है। योजना जितनी अच्छी होगी, अध्यापक उतनी ही सफलता के साथ शिक्षण कार्य कर सकेगा। एक अच्छी योजना में निम्नलिखित विशेषताएँ होती हैं—

(1) अच्छी योजना पूरी तरह से लचीली होती है।
(2) अच्छी योजना व्यापक तथा विस्तृत होती है।
(3) अच्छी योजना सभी कक्षाओं से सम्बन्धित सभी क्रियाओं को सम्मिलित करती है।
(4) अच्छी योजना कक्षा तथा विद्यालय के पास उपलब्ध साधनों को ध्यान में रखकर बनाई जाती है।
(5) अच्छी वार्षिक कार्य-योजना अध्यापक की योग्यता और क्षमता के अनुसार होती है।
(6) अच्छी पाठ-योजना छात्रों के मानसिक व शारीरिक स्तर के अनुकूल होती है।
(7) इनमें व्यक्तिगत विभिन्नताओं का पूरा-पूरा ध्यान रखा जाता है।
(8) ये योजनाएँ अन्य शिक्षकों की योजनाओं के साथ समन्वय रखती हैं।

योजना निर्माण

वार्षिक योजना में शिक्षक वर्ष भर में एक विषय के शिक्षण तथा उससे सम्बन्धित अन्य करणीय कार्यों की रूपरेखा का निर्माण करता है। इस रूपरेखा के बनाते समय अध्यापक को अग्रलिखित बातों को ध्यान में रखना चाहिए—

(1) योजना वास्तविक तथा व्यावहारिक हो इसमें केवल उन्हीं तथ्यों व कार्यों का उल्लेख किया जाये जिन्हें अध्यापक एक वर्ष में पूरा कर सकता है। इस सम्बन्ध में उसे अधिक महत्त्वाकांक्षी होने की आवश्यकता होती है।

(2) उसे अपनी योग्यताओं तथा क्षमताओं के साथ ही साथ छात्रों की क्षमताओं तथा उनकी शारीरिक व मानसिक योग्यताओं को भी ध्यान में रखना चाहिये।

(3) योजना बनाते समय गत वर्ष की योजनाओं का अवलोकन किया जाये। अच्छा रहे यदि वर्तमान योजना पर अपने साथियों के साथ विचार-विमर्श कर लिया जाये।

(4) योजना यथासम्भव लचीली बनाई जाये, जिससे आवश्यकता होने पर उसमें आसानी से परिवर्तन या संशोधन किये जा सकें।

(5) वर्ष की योजना महीनों में बाँटकर बनाई जाय, इससे अध्यापक को ध्यान रहेगा कि किस-किस माह में उसे कौन-कौन से कार्य पूरे करने हैं।

(6) योजना बनाते समय विभागीय नियमों को पूरी तरह से ध्यान में रखा जाये। उदाहरण के लिए, राजस्थान में पूरे शिक्षा-वर्ष को 3 उप-सत्रों में बाँटा गया है—(i) जुलाई से 31 अक्टूबर, (ii) 1 नवम्बर से 28 फरवरी तथा (iii) 1 मार्च से 16 मई। अध्यापक को वार्षिक योजना बनाते समय, विभागीय सत्रीय कार्यक्रमों का भी ध्यान रखना चाहिये जैसे विभाग की ओर से कब प्रथम, द्वितीय, तृतीय परख परीक्षा होगी, कब अर्द्धवार्षिक परीक्षा होगी तथा कब वार्षिक परीक्षा होगी। राजस्थान में अगस्त, अक्टूबर तथा फरवरी में क्रमशः प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय परख होगी। दिसम्बर में अर्द्धवार्षिक तथा अप्रैल-मई में वार्षिक परीक्षाओं की व्यवस्था की जाती है।

(7) वार्षिक-योजना बनाते समय राज्य सरकार के द्वारा अवकाश सूची का भी ध्यान रखना चाहिए, राजस्थान में विभिन्न प्रकार के अवकाश तथा रविवारों को निकालकर करीब 248 कार्य दिवस शिक्षक के पास बचते हैं। इन कार्य दिवसों में से तीनों परख परीक्षाओं अर्द्धवार्षिक तथा वार्षिक परीक्षाओं के लिए तैयारी दिवस निकालकर कुल शिक्षण दिवस ज्ञात किये जा सकते हैं। सामान्यतः विभिन्न परीक्षाओं से सम्बन्धित 30 दिवस होते हैं। इस प्रकार अध्यापक के पास कुल 218 दिवस (240-30) शिक्षण कार्य के लिए बचते हैं। अध्यापक को अपने शिक्षण कार्य भी इन्हीं 218 दिवसों की योजना बनानी चाहिये।

(8) वार्षिक योजना में शिक्षण कार्य तथा अन्य करणीय कार्यों का पृथक्-पृथक् तथा स्पष्ट उल्लेख होना चाहिए। 218 शिक्षक दिवसों में से वार्षिक खेलकूद प्रतियोगिताओं तथा उनके अभ्यास हेतु समय का भी ध्यान रखना चाहिए (आवश्यक है) इन खेलकूद प्रतियोगिताओं के अलावा विद्यालय में कुछ पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं की भी व्यवस्था की जाती है। इन सबके लिए करीब 18 दिन और निकल जाते हैं। इस प्रकार उसके पास करीब 200 दिन पूरे सत्र में शिक्षण कार्य के लिए बचते हैं।

(9) इन 200 शिक्षण दिवसों को निम्न कार्यों में आवंटित करना चाहिये—

(i) विकासात्मक शिक्षण—इसमें अध्यापक पढ़ायेगा। (ii) मौखिक कार्य, (iii) लिखित कार्य, (iv) श्रुति लेख, (v) द्रुत पाठ, (vi) व्याकरण, (vii) रचना (भाषा के लिए केवल), (viii) अभ्यास कार्य, (ix) कमजोरी निराकरण आदि।

इन विभिन्न कार्यों में सर्वाधिक समय प्रथम बिन्दु विकासात्मक शिक्षण के लिए देना है और इसमें भी उसे यह निश्चित करना पड़ेगा कि कितना समय वह ज्ञानात्मक उद्देश्य की पूर्ति हेतु पढ़ाये और वह कितना समय अवबोधात्मक कौशलात्मक या रागात्मक उद्देश्य की प्राप्ति के लिए दे।

प्रत्येक कार्य को सुचारू रूप से सम्पादित करने के लिए योजना की आवश्यकता पडती है।

कक्षा में पढाने के लिए भी योजना की आवश्यकता पडती है। सफल शिक्षण के लिए पाठ योजना नितान्त आवश्यक है। विश्व के सभी सफल शिक्षक योजनाबद्ध रूप से शिक्षण कार्य तथा विषय-वस्तु का प्रस्तुतीकरण करते हैं। प्रत्येक सफल शिक्षक के पास योजना होती है। यह बात दूसरी है कि वे अपनी शिक्षण योजनाएँ कागजों पर न लिखकर अपने मनःपटल पर ही अंकित कर लेते हैं। वे अपनी शिक्षण योजनायें अवश्य रखते हैं। वे जानते हैं या यह उनकी आदत बन गई है कि वे विषय-वस्तु का प्रस्तुतीकरण बडे योजनाबद्ध ढंग से करते हैं। उनका प्रस्तुतीकरण, प्रश्न पूछने का ढंग, व्याख्या, स्पष्टीकरण, शिक्षण क्रियायें आदि सुनिश्चित कार्यक्रम के अनुसार होती है। वे अपने मस्तिष्क में शिक्षण क्रियाओं की एक सुनिश्चित योजना अपने मस्तिष्क में रखते हैं। जहाँ तक प्रारम्भिक विषयों का प्रश्न है। उन्हें अनिवार्य रूप से लिखित पाठ योजना बनानी चाहिये। उसके लिए यह आवश्यक है कि वह सचेतन मन से पाठ-योजना का निर्माण करे, उसका गहन अध्ययन करे तथा उसका अनुसरण करे। उसे अपनी समस्त कक्षा-क्रियाएँ पाठ-योजना के अनुसार संचालित करनी चाहिये। यहाँ यह अवरोध प्रकट किया जाता है कि विद्यालय में जहाँ अध्यापक को एक दिन में सात-सात कालांश शिक्षण कार्य करना पडता है। वहाँ इसके लिये यह असम्भव हो जाता है कि वह इतने सारे कालांश के लिये लिखित में दैनिक पाठ योजना निर्मित करे। उसका यह अन्तर दिया जा सकता है कि प्रारम्भ में वह आठ तक दिन तक तो लिखित रूप में विस्तृत पाठ-योजना बनाये, फिर आठ दस दिन तक संक्षिप्त पाठ-योजना बनाये, तदोपरान्त वह एक कागज के टुकडे पर शिक्षण बिन्दु या अन्य मुख्य क्रियाएँ लिखे यदि उसे यह विश्वास हो जाये कि वह बिना बिन्दुओं के लिखे भी योजनाबद्ध रूप से पढा सकता है तो वह मन में भी पाठ-योजना बना सकता है। जहाँ तक छात्राध्यापकों का प्रश्न है उन्हें तो पाठ-योजना का निर्माण अवश्य ही करना चाहिये। उन्हें पाठ-योजना बनाने की अनेक सुविधाएँ प्राप्त होती हैं। उन्हें तो निर्देशित करने वाले सुयोग्य प्राध्यापक होते हैं। सहायक-सामग्री उपलब्ध होती है। सन्दर्भ के लिये पुरानी पाठ-योजना होती है।

छात्राध्यापकों के सम्बन्ध में एक बात और आवश्यक है कि छात्राध्यापकों को शिक्षण कार्य करते समय पाठ योजनाएँ अपने पास रखनी चाहिये। परम्परा यह है कि छात्राध्यापक कक्षा में पढाते समय पाठ योजना निरीक्षक को देते हैं। यह प्रथा अत्यन्त दोषपूर्ण है। यह ठीक ऐसा ही है जैसे एक इंजीनियर भवन निर्माण का मानचित्र अपने उच्च अधिकारियों को दे दे तथा अपनी स्मृति के (अनुसार) आधार पर ही भवन उसके दरवाजे, खिडकियाँ आदि बनवाये यदि निरीक्षक पाठ योजना की जाँच पहले ही कर लेता है तो उसे कक्षा में पुनः पाठ योजना देखने की आवश्यकता क्या है। निश्चय रूप से पाठ योजनाएँ कक्षा में छात्राध्यापक के पास ही रहनी चाहिये किन्तु छात्राध्यापक को

उद्देश्य	मुख्य बिन्दु	अध्यापक	क्रियाएँ	छात्र क्रियाएँ

बोध प्रश्न
श्यामपट पर सारांश
पुनरावृत्ति प्रश्न
गृह कार्य

उद्देश्य—पाठ पढ़ाने के उद्देश्य छात्रों के व्यवहार में होने वाले परिवर्तन से होते रूप से सम्बन्धित होते हैं। अध्यापक छात्रों के व्यवहार में जो परिवर्तन लाना चाहता है उसी के अनुसार अपने उद्देश्यों का निर्धारण करना चाहिए. छात्रों के व्यवहार में कई तरह से सम्बन्धित परिवर्तन हो सकता है। जैसे ज्ञानवर्धन, आत्मीकरण, योग्यताएँ, कौशल अभिवृत्तियाँ, विश्लेषण, शक्ति तथा रुचि सम्बन्धी फलतः छात्राध्यापक के उद्देश्य भी इन क्षेत्रों से सम्बन्धित हो सकते हैं।

उद्देश्य लिखते समय कक्षाध्यापक को बड़ी सावधानी रखने की आवश्यकता होती है। जो भी उद्देश्य लिखे जायें अत्यन्त स्पष्ट तथा सुनिश्चित भाषा में होने चाहिए।

छात्रों का मानसिक विकास करना या छात्रों के अस्तित्व को विकसित करना अत्यन्त ही अस्पष्ट है एवं अनिश्चित उद्देश्य है। छात्रों को मानसूनी वर्षा की विशेषताएँ बताना एक स्पष्ट तथा सुनिश्चित उद्देश्य है। अध्यापक को इसी प्रकार से उद्देश्यों का स्पष्टीकरण करना चाहिए। उद्देश्य दो प्रकार से लिखे जा सकते हैं। प्रथम तो शिक्षक की भाषा में और द्वितीय छात्र की भाषा में उत्पत्ति के नियमों का ज्ञान प्राप्त करना छात्र की भाषा में है। पाठ योजना में उद्देश्यों को छात्रों की भाषा में लिखना सदैव अच्छा रहता है। इससे कई लाभ हैं. प्रथम तो इससे अध्यापक शिक्षा श्रम तथा पाठ्यक्रम दोनों को ही छात्रों के स्तर से देखता है। द्वितीय छात्र के उद्देश्य विशिष्ट विधि तथा रीतियों एवं प्रविधियों को अपनाने को कहते हैं और अन्त में इस प्रकार लिखे गये उद्देश्य कथन के साथ तारतम्यता स्थापित करते हैं। नीचे उद्देश्य कथन तथा छात्र के उद्देश्यों का एक नमूना प्रस्तुत है—

1. शिक्षक के उद्देश्य तथा उद्देश्य कथन

(अ) उद्देश्य छात्रों को भूमि की विशेषताओं से अवगत कराना।

उद्देश्य कथन—आज हम भूमि की विशेषताओं का अध्ययन करेंगे।

2. छात्र के उद्देश्य तथा उद्देश्य कथन

उद्देश्य—भूमि की विशेषताओं का अध्ययन करना।

उद्देश्य कथन—आज हम भूमि की विशेषताओं का अध्ययन करेंगे।

प्रथम उदाहरण में उद्देश्य के अन्तर्गत अध्यापक छात्रों को कुछ बतलाने का प्रयास करता है। जबकि उद्देश्य कथन के अन्तर्गत (अध्यापक छात्रों को) वह छात्रों के साथ

मिलकर अध्यापन करने की घोषणा करता है। उद्देश्य सम्पूर्ण विषय से सम्बन्धित होते हैं—सामान्य तथा विशिष्ट—सामान्य उद्देश्य सम्पूर्ण विषय से सम्बन्धित होते हैं तथा अपने स्वभाव में अत्यन्त व्यापक होते हैं विशिष्ट उद्देश्य पाठ के उद्देश्य होते हैं तथा स्वभाव में विशिष्ट सकुचित निश्चित होते हैं। इस प्रकार पृथक्-पृथक् पाठ के पृथक्-पृथक् उद्देश्य होते हैं।

(1) पूर्व ज्ञान—नवीन ज्ञान को छात्रों के पूर्व ज्ञान या पूर्वानुभवों में से सम्बन्धित कर देना चाहिए। छात्रों के पूर्व ज्ञान को जाने बिना न तो पाठ योजना ही बन सकती है और न सफलतापूर्वक शिक्षण कार्य ही सम्पादित किया जा सकता है। जिस प्रकार बिना नींव के ज्ञान के शेष भवन खड़ा नहीं किया जा सकता है। ठीक उसी प्रकार बिना पूर्व ज्ञान के ज्ञान पाठ का आगे विकास नहीं किया जा सकता है। किन्हीं-किन्हीं अवस्थाओं में यह सम्भव है कि पाठ या विषय से सम्बन्धित ज्ञान छात्रों को हो ही न, इस स्थिति में नवीन ज्ञान को छात्रों के जीवन से सम्बन्धित कर देना चाहिए।

(2) प्रस्तावना—पाठ योजना में प्रस्तावना का बड़ा महत्त्व है। प्रस्तावना द्वारा अध्यापक निम्न तीनों उद्देश्यों की पूर्ति करता है—

1. छात्रों के पूर्व ज्ञान का पता लगाना।
2. छात्रों के पूर्व ज्ञान तथा नवीन ज्ञान के मध्य सम्बन्ध स्थापित करना।
3. नवीन ज्ञान प्राप्त करने हेतु प्रेरणात्मक तथा प्रभावोत्पादक वातावरण निर्मित करना।

जब नया कालांश प्रारम्भ होता है तो छात्रों के मनःपटल पर उससे पूर्व वाले कालांश में पढ़ाये विषय की घटनायें छायी रहती हैं। प्रस्तावना द्वारा उन घटनाओं को हटाकर छात्रों को नवीन विषयों के ज्ञान को ग्रहण करने हेतु तत्पर किया जाता है। प्रस्तावना प्रश्न, कथन कहानी, चित्र, घटना आदि के वर्णन से जितनी अधिक सम्बन्धित होती है वह उतनी अधिक अच्छी होती है।

(3) उद्देश्य-कथन—प्रस्तावना के उपरान्त उद्देश्य-कथन होता है। उद्देश्य-कथन अत्यन्त ही प्रजातांत्रिक भाषा में करना चाहिये। साधारण तथा उद्देश्य कथन "हमें शब्द से प्रारम्भ करना चाहिये". उद्देश्य कथन आदेशात्मक तथा अधिनायक स्वभाव का नहीं होना चाहिये "मैं तुम्हें राष्ट्रपति के अधिकार पढ़ाऊँगा।" एक त्रुटिपूर्ण उद्देश्य कथन है। इसके स्थान पर कहना चाहिये आज हम राष्ट्रपति के अधिकारों का अध्ययन करेंगे।

(4) प्रस्तुतीकरण—पाठ योजना के इस अंग में छात्रों के सम्मुख नवीन ज्ञान प्रस्तुत किया जाता है। प्रस्तुत करते समय अध्यापक सम्पूर्ण विषय-वस्तु को सुविधानुसार दो अन्वितियों में विभक्त कर सकता है। इसी सोपान के अन्तर्गत अध्यापक विभिन्न शिक्षण पद्धतियों तथा प्रविधियों का प्रयोग करता है। यहीं पर विभिन्न प्रकार की श्रव्य-दृश्य सामग्री का प्रयोग किया जाता है।

(5) प्रश्न करना—पाठ योजना में प्रश्नों की रचना करना भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। अध्यापक को अच्छे तथा सार्थक प्रश्नों की रचना करनी चाहिये। अच्छे तथा सार्थक प्रश्नों के सम्बन्ध में हम शिक्षण रीतियाँ नामक अध्ययन में पर्याप्त अध्ययन कर चुके हैं।

(6) समय-तत्त्व—पाठ योजना का निर्माण करते समय अध्यापक को (अ) उपलब्ध समय को भी ध्यान में रखना चाहिये। पाठ योजना में केवल इतनी ही क्रियायें तथा

विषय-वस्तु सम्मिलित की जाये जिसे अध्यापक निर्धारित समय में पूरा कर सके इतनी विषय-वस्तु न ली जाये कि (अध्यापक के पास) वह अधूरी ही रह जाये और न इतनी कम ही विषय-वस्तु ली जाये कि अध्यापक के पास समय बचे और उसे विषय-वस्तु के अभाव मे कुर्सी पर बैठकर अँगुलियाँ चटकानी पड़ें।

(7) श्यामपट पर कार्य—शिक्षक की पाठ योजना का निर्माण करते समय श्यामपट-कार्य को भी ध्यान में रखना चाहिये। अध्यापक को श्यामपट पर सम्पूर्ण सारांश लिख देना चाहिये फिर उसकी नकल छात्रों से करानी चाहिये जब छात्र नकल कर रहे हों तब अध्यापक को उसका निरीक्षण करना चाहिये।

(8) पुनरावृत्ति—इस सोपान के अन्तर्गत छात्रों द्वारा अर्जित ज्ञान का मूल्यांकन किया जाता है। इस मूल्यांकन के लिए विविध प्रकार के प्रश्नों का सहारा लिया जाता है। प्रश्न ऐसे हो जो सम्पूर्ण पाठ से सम्बन्धित हों।

(9) गृह-कार्य—पाठ योजना में गृह-कार्य का बड़ा महत्त्व है। गृह-कार्य से छात्र अर्जित ज्ञान का प्रयोग करना सीखते हैं। गृह-कार्य देते समय अध्यापक को गृह-कार्य की नीचे लिखी विशेषताओं को ध्यान में रखना चाहिये—

1. गृह-कार्य रोचक हो, 2. गृह-कार्य निश्चित हो, 3. गृह-कार्य चुनौती प्रदान करे, 4. गृह-कार्य अन्य विषयों के गृह-कार्य को ध्यान में रखकर दिया जाय, 5. गृह-कार्य पाठ के उद्देश्यों से सम्बन्धित हो, 6. गृहकार्य का प्रयोगात्मक पक्ष प्रबल हो।

अभ्यास-प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न

1. वाणिज्य-शिक्षण में नियोजन की क्या आवश्यकता है ? यह नियोजन आप किन-किन स्तरों पर कर सकते हैं ? प्रत्येक स्तर का संक्षिप्त परिचय दीजिये।
2. इकाई-योजना क्या होती है ? यह कब व किस प्रकार बनाई जाती है ?
3. 'बैंक' प्रकरण पर चार उपइकाइयों से युक्त एक इकाई योजना बनाइये।
4. पाठ-योजना किसे कहते हैं ? यह क्यों तथा कैसे बनाई जाती है ?
5. वाणिज्य विषय के किसी एक प्रकरण का चयन कर उसे कक्षा XI में पढ़ाने हेतु 40 मिनट की एक विस्तृत पाठ योजना बनाइये।

लघु उत्तरात्मक प्रश्न

1. दैनिक पाठ योजना के विविध सोपानों का उल्लेख कीजिये।
2. 'बैंक के कार्य' प्रकरण पढ़ाने हेतु पाँच प्रस्तावना प्रश्न बनाइये।
3. दैनिक पाठ योजना बनाने के किन्हीं पाँच लाभों का उल्लेख कीजिये।
4. इकाई-योजना के विविध प्रकारों का उल्लेख कीजिए।
5. वाणिज्य-शिक्षण की वार्षिक योजना क्यों बनाई जाती है ?

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. इकाई योजना को शिक्षा जगत में लाने का श्रेय किसको जाता है ?
   (अ) हरबर्ट (ब) रिस्क (स) वासिंग (द) हैरप
2. प्रत्येक कार्य को सुचारु रूप से चलाने के लिए योजना की आवश्यकता पड़ती है-
   (अ) सत्य (ब) असत्य

उत्तर—1. (अ) हरबर्ट, 2. (अ) सत्य।

पुस्तपालन

पाठ-योजना—1

दिनांक—17 अगस्त, 1985 **कक्षा**—IX B
विषय—पुस्तपालन **कालांश**—तृतीय
इकाई—जरनल **अवधि**—40 मिनट
उप-इकाई—जरनल में प्रारम्भिक प्रविष्टियाँ **छात्र संख्या**—38
विद्यालय—विरजानन्द उच्च माध्यमिक विद्यालय, अजमेर

उद्देश्य—
1. **ज्ञानात्मक**—छात्र जरनल में प्रविष्टियाँ करने से सम्बन्धित नियमों का प्रत्यास्मरण (Recall) कर सकेंगे।
2. **अवबोधात्मक**—छात्र विभिन्न प्रकार की प्रविष्टियों, सौदों तथा सौदों के पक्षों में अन्तर कर सकेंगे।
3. **कौशलात्मक**—जरनल में सामान्य सौदों की प्रविष्टियाँ करने में कौशल प्राप्त कर सकेंगे।

विशिष्ट उद्देश्य— छात्र जरनल मे प्रविष्टियाँ करना सीखेंगे।

सहायक सामग्री— कक्षा-कक्ष के सामान्य उपकरण तथा तीन चार्ट जिन पर सामान्य सौदे तथा प्रविष्टियाँ लिखी हुई हैं।

पूर्व-ज्ञान— छात्र जरनल की परिभाषा तथा अर्थ जैसे सैद्धान्तिक पक्षों का अध्ययन कर चुके हैं।

प्रस्तावना—
1. किसी सौदे के लिए कितने व्यक्तियों की आवश्यकता होती है ?
2. इन व्यक्तियों को किस नाम से पुकारते हैं ?
3. व्यापार के क्रेता तथा विक्रेता के मध्य हुये सौदों को प्रारम्भ में किस बही में लिखते हैं ?
4. जरनल में सौदों की प्रविष्टियाँ कैसे की जाती हैं ?

उद्देश्य-कथन— आज हम सब मिलकर यह सीखने के प्रयास करेंगे कि जरनल में प्रविष्टियाँ कैसे की जाती हैं ?

पाठ का विकास— आज के पाठ का विकास एक ही अन्विति में किया जायेगा।

मुख्य बिन्दु	अध्यापक क्रियाएँ	छात्र-क्रियाएँ
1. कुछ लेन-देन	सर्वप्रथम अध्यापक लपेट फलक पर नीचे लिखे सौदों को छात्रों के सम्मुख प्रस्तुत करेगा— 1. व्यापार प्रारम्भ किया 25,000 रु० 2. मोहन से माल उधार खरीदा 5,000 रु०	

6. सातवें सौदे में रोकड़ किस पक्ष में जायेगी ?
7. इन दोनों सौदों की प्रविष्टियाँ की जायेंगी ?

डेबिट पक्ष में।

(i) Cartiage a/c Dr. 200
To Cash 200
(Paid cart freight)
(ii) Cash a/c Dr. 300
To Rent 300
(Received rent)

नियमीकरण—समस्त खर्चों तथा हानियों को डेबिट करो तथा आमदनी तथा लाभों को क्रेडिट करो।

इसके उपरान्त अध्यापक समस्त सौदों की प्रविष्टियों को एक रोल बनाकर प्रदर्शित करेगा।

पुनरावृत्ति प्रश्न—

1. आने वाली वस्तु को जरनल में किस पक्ष में लिखते हैं ?
2. लाभों को किस पक्ष में लिखते हैं ?
3. देनदारों को किस पक्ष में लिखते हैं ?
4. लेनदार किस पक्ष में लिखे जाते हैं ?
5. हानियाँ किस पक्ष में प्रदर्शित की जाती हैं ?

गृह-कार्य—नीचे लिखे सौदों की जरनल में प्रविष्टियाँ करके लाइये—

1. व्यापार में लगायें 10,000 = 00 रु०
2. नगद माल खरीदा 5,000 = 00 रु०
3. उधार माल मोहन से खरीदा 4,000 = 00 रु०
4. किराया दिया 300 = 00 रु०
5. मोहन को दिये 4,000 = 00 रु०
6. श्याम से माल खरीदा 3,000 = 00 रु०

7. मजदूरी दी 600 = 00 रु०
8. किराया आया 600 = 00 रु०
9. नगद माल बेचा 8000 = 00 रु०
10. व्यक्तिगत खर्च हुए 200 = 00 रु०

पाठ-योजना—2

दिनांक—15 अक्टूबर, 1985
कक्षा—IX B
विषय—पुस्तकालय
कालांश—तृतीय
इकाई—बैंक खाता
अवधि—40 मिनट
उप-इकाई—बैंक समाधान विवरण
छात्र संख्या—38
विद्यालय—विरजानन्द उच्च माध्यमिक विद्यालय, अजमेर

उद्देश्य—

ज्ञानात्मक—
1. छात्र पास-बुक की प्रविष्टियों का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
2. छात्र पास-बुक का बैंक खातों से मिलान करना सीखेगा।

अवबोधात्मक—
1. छात्र पास-बुक के बैलेन्स तथा बैंक खाते के बैलेन्स में अन्तर के कारणों का पता लगाना सीखेंगे।
2. छात्र बैंक पास बुक शेष तथा बैंक खातों के शेष मिलाना सीखेगा।

कौशलात्मक— छात्र बैंक समाधान विवरण बनाने में दक्षता का विकास कर सकेंगे।

सहायक सामग्री— सामान्य कक्षापयोगी उपकरण।

पूर्वज्ञान— छात्र तीन कॉलम की रोकड़ बही बनाना चाहते हैं।

प्रस्तावना प्रश्न—
1. व्यापारी अपना अतिरिक्त पैसा कहाँ जमा कराते हैं ?
2. बैंक में खाता खोलने पर बैंक व्यापारी को क्या-क्या देता है ?
3. बैंक पास बुक में क्या लिखा जाता है ?
4. पास-बुक की अन्तिम प्रविष्टि क्या बतलाती है ?
5. कभी-कभी पास-बुक तथा बैंक खाते के शेषों में अन्तर क्यों हो जाता है ?
6. इस अन्तर को समाप्त करने के लिये हम कौन-सा विवरण बनाते हैं ?
7. बैंक समाधान विवरण के विषय में तुम क्या जानते हो ?

उद्देश्य-कथन— आज हम बैंक समाधान विवरण के विषय में अध्ययन करेंगे।

पाठ का विकास— पाठ का विकास दो अन्वितियों में किया जायेगा।

प्रथम अन्विति

मुख्य बिन्दु	अध्यापक क्रियायें	छात्र क्रियायें एवं श्यामपट कार्य
बैंक समाधान विवरण का अर्थ	**विकासात्मक प्रश्न** 1. किसी व्यापारी के चैक-बुक कौन देता है ?	बैंक जिसमें व्यापारी ने खाता खोला है।

	2. बैंक व्यापारी को चैक-बुक के अलावा और कौन-सी किताब देता है ?	पास बुक।
	3. पास बुक में कौन-सी प्रविष्टियाँ की जाती हैं ?	बैंक के ... की लेन-देन की।
	4. बैंक व्यापारी के लेन-देनों का अपने यहाँ किसमें लेखा-जोखा रखता है ?	खाता बही में।
	5. बैंक के खाता शेष तथा पास बुक के शेष में अन्तर आने पर व्यापारी कौन-सा विवरण बनाते हैं ?	बैंक समाधान विव
	6. बैंक समाधान विवरण किसे कहते हैं ?	
	अध्यापक कथन—बैंक में किसी व्यापारी के खाते तथा व्यापारी की पास बुक के शेषों के अन्तरों का मिलान करने के लिए जो ब्यौरा बनाया जाता है वह बैंक समाधान विवरण कहलाता है।	छात्र अपनी अभ्यास पुस्तिका पर लिखें।
बैंक के खाते तथा पास बुक शेष में अन्तर के कारण	**विकास प्रश्न**	
	1. सामान्यतः चैक कितने दिनों के अन्दर भुनाया जा सकता है ?	छः माह के भीतर कभी भी।
	2. किसी लेनदार को चैक देने पर व्यापारी अपनी पुस्तकों में इसकी प्रविष्टि कब करता है ?	तुरन्त ही।
	3. लेनदार यदि तीन माह के बाद चैक को भुगतान हेतु प्रस्तुत करे तो पास बुक तथा बैंक खाते में क्या अन्तर हो जायेगा ?	
	अध्यापक कथन—व्यापारी द्वारा चैक काटने और चैक प्राप्त करने वाले द्वारा चैक को भुगतान के लिए प्रस्तुत न करने पर बैंक पास बुक तथा बैंक खाते के शेषों में अन्तर आ जाता है। इसके लिए यदि पास बुक शेष में ऐसे चैकों की रकम जोड़ दी जाये तो दोनों शेषों का अन्तर समाप्त हो जाता है।	**श्यामपट कार्य** चैक काटना किन् लेनदार द्वारा भुगतान हेतु बैंक में प्रस्तुत न करना।
प्राप्त चैकों की रोकड़ बही में प्रविष्टि किन्तु भुगतान प्राप्त होगा	**विकासात्मक प्रश्न**	
	1. किसी लेनदार से चैक प्राप्त होते ही व्यापारी उसकी प्रविष्टि रोकड़ बही में कब करता है ?	चैक प्राप्त होते ही रोकड़ बही में प्रविष्टि होती है।

PT. SITA RAM SHASTRI LIBRARY Book No. ... BHIWANI

वाणिज्य शिक्षण

रामपाल सिंह

ISBN: 978-81-89994-30-3

₹ 175

Agrawal Publications

Igniting Minds !

ED193